हिंदी साहित्य मे नवीन गवेषणा

महाकवि रसरासि

[रीतिकालीन-उपेक्षित-कवि]

अनुसंधाता
आचार्य उमेश शास्त्री
एम० ए० (हिन्दी संस्कृत)
प्राचार्य
सेठ गो० रा० चमडिया संस्कृत कॉलेज
फतेहपुर (राज०)

प्राक्कथन लेखक
डॉ० सत्येन्द्र
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

देवनागर प्रकाशन, जयपुर

☐ हिन्दी-प्रचार-परिषद् राजस्थान, जयपुर के तत्वावधान में अनुसंधानित

© आचार्य उमेश शास्त्री

१९७२

प्रकाशक देवनागर प्रकाशन,
चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

मूल्य : पच्चीस रुपये मात्र

मुद्रक : एलोरा प्रिण्टस
जयपुर-३

• प्राक्कथन

यह ग्रंथ 'रसरासि' नाम के कवि और उनके काव्य क परिचय देने के लिए लेखक ने परिश्रम पूर्वक प्रस्तुत किया है और यह एक और ज्वलंत प्रमाण है कि हिन्दी के अनेकानेक कवि और लेखक आज भी अंधेरी कोठरियों में बंद पड़े हुए हैं। और कभी-कभी किसी जिज्ञासु या अनुसंधित्सु के हाथों में अनायास ही पड़ जाते हैं। व उनकी चर्चा करके इतिहास के किसी अंधेरे कोने को प्रकाशित कर देते हैं। 'रसरासि' से यों शिवसिंह सेंगर भी परिचित थे। उन्होंने इन पर केवल एक पंक्ति लिखी—

'रसरास कवि सं० १७१५ में ३० इनके शृंगार के सुन्दर कवित्त हैं।"

इनके उपरांत मिश्रबंधु आते हैं। उन्होंने अपने 'मिश्र बंधु-विनोद' में 'रसरासि' का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है —

मिश्रबंधु-विनोद प्रथम भाग पृ० ३१५

क नाम-(२२४) रसरास

रचनाकाल-१६६० के पूर्व

विवरण-इनकी कविता सार-संग्रह में है। साधारण श्रेणी।

द्वितीय भाग-पृ० ७०५

नाम (६५०)

रसरासि' रामनारायण

जयपुर।

ग्रंथ—

(१) कवित्त रत्नमालिका संग्रह खोज (१६०१)(२) फुटकर भाषा।

कविता काल -१८२७

विवरण—यह संग्रह ग्रंथ द होने महाराजा सवाई प्रतापसिंहजी के दीवान सिंघी जीवराज के ८०१ आश्रय में बनाया जिसमे प्राचीन कवियों के छंद और स्वयं इनके अपने १०८ छंद है। कविता इनकी साधारण श्रेणी की है।

चतुर्थ भाग—पृ० १३१

नाम (४४२) रसराशि उपनाम रामनारायण जयपुर

ग्रंथ—(१) कवित्त रत्नमाला

(२) रसिक-पचीसी

विवरण—आप जयपुराधीश महाराजा प्रतापसिंहजी के समकालीन थे।

उदाहरण—

श्री मन्नारायण जू के चरण को सेवक श्री
रामानुज सम्प्रदाय शिष्य पद पायो हो,
रसिक-सभा मे बैठि बालिवे को नात्र मेरे
चोह मोह चाह हरि लाभ लोभ छायो हो

विप्रवरवश 'रामनारायण' नाम नीको
कविता मे छाप रसराशि हेरि लायो हो
सब को सुहायो सखी सास गुन गायो भयो,
मेरो मन भायो सब ही के मन भायो है।

मिश्रबन्धुओ के इन उल्लेखो मे से—
क' के रसरासि कोई अन्य कवि प्रतीत होते हैं, क्योकि इनका रचनाकाल स० १६६० से पूर्व का बताया गया है। शेष दोनो यह जयपुर वाले रसरासि हैं।

इसके बाद 'सरोज-सर्वेक्षण' मे डा० किशोरीलाल गुप्त ने पृ० ३ ६ पर इनका उल्लेख किया है। इनके कथनानुसार कवि का वास्तविक नाम रामनारायण है--रसरास उपनाम है।

यह ब्राह्मण थे और रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव थे। यह जयपुर के ही रहने वाले थे तथा जयपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंह के दीवान जीवराज सिंघी के आश्रित थे। इन्होने स० १८२७ मे एक कवित्त-रत्न-मालिका नामक[1] एक काव्य-सग्रह प्रस्तुत किया था इसमे ईश्वर भक्ति सबधी ६०६ कवित्त हैं। इनमे से १०८ कवित्त तो स्वय रसरासजी के हैं और शेष ८०१ अन्य पूर्ववर्ती या समकालीन कवियो के। एक आशीर्वादात्मक कवित्त से रसरासजी के सबध मे कुछ सूचना मिलती है—

जैपुर सहर सदा सुख सौं सुबस बसौ
सवाई प्रतापसिंह राज करिबौ करौ,
बस थारी जीवराज सङ्क ही दीवान सदा
याही भांति किए जसे दान करिबौ करो,
देखो सुख सपति कलत्र पुत्र मित्रन के
विप्रन के भोजन समाज करिबौ करौ
सनमुख रहो सदा सावरो नृपति याके
द्वार पै गयन्द ठाडे गाज करिबौ करौ।

---

१ खोज रिपोर्ट १६०१। ६३
खोज रिपोर्ट भाग १
खोज रिपोर्ट १६४४। ३२३

रसरासजी का एक लघुग्रंथ 'रसिक–पचीसी' और मिला है, इसका एक अन्य नाम 'रसरासि–पचीसी' भी है। इसमें २६ कवित्त हैं और इसका विषय 'गोपी–प्रेम' है। रचना सरस एवं सुंदर है।

रसिक–सभा में रसरङ्ग बरसाय बे को
रसिक–पचीसी रसरासिहि बनाई है।

पुष्पिका से इनकी जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह का आश्रित होना सिद्ध है।

"इति श्री मन्महाराजाधिराज राज राजेन्द्र सवाई प्रताप सिंह जी देवाज्ञाप्त रसरासि विरचितायां रसिक पचीसी सम्पूर्णम्।"

कवि का रचनाकाल सं० १८२६ है अतः सरोज में दिया सं १७१५ अशुद्ध है।

इन विवरणों से स्पष्ट है कि इस ग्रंथ के पहिले 'रसरसि' का इतना ही परिचय हिन्दी के विद्वानों को ज्ञात था। ये विवरण भी अस्पष्ट, अधूरे और उलटे सीधे हैं। सर्वेक्षणकार शिवसिंह की कमियों को पूर्ण करने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है पर उनका आधार खोज रिपोर्ट (काशी और राजस्थान की) ही रही है। उनके आधार पर कुछ त्रुटि युक्त उल्लेख भी हो गये हैं। इन्होंने पहले तो इन्हें जीवराज सिंघी के आश्रित बताया है। सिंघी सम्भवतः प्रेस की भूल है। जीवराज सिंघी या संघी थे। ये महाराजा प्रतापसिंह के प्रमुख मंत्री थे और नीचे पुष्पिका के आधार पर इनके आश्रयदाता महाराजा प्रतापसिंह बताये गये हैं। इसी प्रकार जो छन्द उद्धृत किया गया है उसमें भी अशुद्धियां है। स्पष्ट है कि सर्वेक्षणकार श्री सरोज ने भी मूल ग्रंथ नहीं देखे।

अतः इस पुस्तक से इस अभाव की पूर्ति हो रही है।

इसके लेखक श्री उमेश शास्त्री ने मूल ग्रथो को देखकर और तद्विषयक अन्य सामग्री का अध्ययन करके रसरासि का और उनकी रचनाओ का परिचय दिया है।

रसरासि की १० कृतिया का परिचय इस ग्रथ मे दिया गया है, किन्तु इन ग्रथा मे वह कवित रत्न मालिका नही है जिसका उल्लेख मिश्रबन्धुओ ने और डा० किशोरीलाल गुप्त ने किया है खोज रिपोर्टों के आधार पर। इसमें ९०६ कवित्त थे और १०८ रसरासि के थे।

वस्तुत विद्वान लेखक श्री शास्त्री ने इस पुस्तक मे उन्ही पुस्तको का परिचय दिया है जो हिन्दी प्रचार परिषद राजस्थान जयपुर के कार्यालय मे उपलब्ध हैं।

पुस्तक के अन्त मे लेखक ने यह सभावना प्रकट की है कि इनके अन्य ग्रथ भी मिल सकते हैं और यह सूचना दी है कि उनकी खोज भी की जा रही हैं।

इस समय भी कवित्त रत्न मालिका, को मिलाकर इनकी ग्यारह रचनायें हो जाती हैं।

एक पुस्तक का पता हमे भी है–वह हे 'रेखता इश्क का दरियाव।' इस प्रकार इनकी १२ कृतिया आज उपलब्ध हैं। महाराजा प्रतापसिंह स्वय भी कवि थ। बृजनिधि' छाप से ये कवितायें रचते थे। इनकी ग्रथावली प्रसिद्ध है प्रकाशित हो चुकी है। इन्होने भी रेखते लिखे हैं। उसी प्रभाव म रसरासि ने ने भी 'रेखता इश्क दरियाव, लिखा होगा।

इस विवरण से विदित होता है कि हमे केवल दो कृतिया का ही पहले पता था। अब इस ग्रथ ने हम रसरासि के सम्बन्ध म अच्छी सामग्री प्रदान कर दी है। विद्वान लेखक श्री शास्त्री ने रसरासि के समय के वातावरण और परिप्रेक्ष्य का भी विशद निरूपण किया है, और उस पृष्ठ भूमि पर इनकी दस कृतियो का यथेष्ट विस्तार पूवक अध्ययन भी दिया है। इस अध्ययन म विविध परम्पराओ से जोडकर और उन परम्पराओं के

विशिष्ट कवियों से तुलना करते हुए रसराशि के व्यक्तित्व को विशेषताओं को स्पष्ट किया है। रसराशि के व्यक्तित्व एव कृतित्व का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया है।

मेरी दृष्टि में लेखक का प्रयत्न अत्यन्त श्लाघनीय है।

डॉ० सत्येन्द्र
आचार्य, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

आत्म-निवेदन

राजस्थान की हिन्दी साहित्य सेवी सस्थानो म हिन्दी-प्रचार-परिषद, जयपुर का अपना विशिष्ट स्थान है। प्रचार प्रसार के दृष्टिकोण से यद्यपि अनेक सस्थायें सक्रिय हैं किन्तु यह सस्थान आत्मविज्ञापन एव विवादग्रस्त विसगतियो स विलग, मौलिक उपलब्धियो को प्राप्त करने के लिए सफलता के साथ आगे बढती रही है। दलबन्दी एव सरकारी एजेन्सियो से दूर रह कर इस सस्था ने मौलिक प्रतिभाओ को हर क्षण प्रोत्साहन देकर सामान्य जन और साहित्यकार" की शृ खला को सम्पृक्त करने मे महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। हिन्दी प्रचार परिषद् की स्थापना १५ नवम्बर १९६१ को स्थानीय साहित्यकारों की प्रेरणा म की गई। यह सस्थान हिन्दी-सस्कृत वाङ्मय के प्रचार प्रसार एव सर्वाङ्गीण समृद्धि तथा नव चेतना का प्रतीक व साहित्यकारो का समन्वय रगमच है। इस सस्था के विभिन्न उद्देश्यो म से एक उद्देश्य यह भी रहा है— अनुसधान गवेषणात्मक प्रवृत्तियो को जन्म देना व उपेक्षित कवियो तथा लेखकों को सामान्य जन मच पर उपस्थित करना।' इस उद्देश्य के अन्तगत परिषद् ने सक्रियता के साथ काय करना प्रारम्भ किया। सस्थान की सधान शाखा ने उपेक्षित प्राचीन साहित्यकारो की अमूल्य कृतियो का सकलन किया है। जब हम सधानित कृतियो को विश्लेषणात्मक दृष्टि स देखते हैं तो हम हमारे अतीत के गौरवमय सास्कृतिक परिवेश मे वलयित किन्तु सृजन के अभिनव स्वर के साथ मौलिक वाङ मय के दशन होते हैं। राज्याश्रय म रहते हुए असख्य साहित्यकारो ने भारती के भडार को बहुमूल्य रत्नो से आपूरित एव समृद्ध किया हैं किन्तु दुर्दैव के वशीभूत होकर ये समय से बहुत पीछे रह गये हैं। युगीन दौड की प्रतिस्पर्धा से विलग होकर आलोचकों की दृष्टि स ओझल होकर रह गये। सस्कृत-साहित्य म आज भी ऐसे अनेक साहित्यकारों का नामाकन होना शेष है जो हजारो वर्ष पूर्व सृजन को गतिमान करते हुए स्वय गतिशून्य रह गये हैं। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य की अनेक कृतिया अपने स्रष्टाओ का नाम छिपाये हुए काल के गत मे पडी हुई हैं हिन्दी प्रचार परिषद् की सधान शाखा ने ... कवियों की कृतियों की गवेषणा की है —

(१) मथुरानाथ शास्त्री
(२) महाकवि रसरासि
(३) व्यास बालाबक्स
(४) चिमनलाल
(५) कृष्णदास
(६) कन्हैयालाल
(७) सतदास एव समकालीन अन्य कवि

इन कवियो की हस्तलिखित ७० पाडुलिपिया परिषद् द्वारा खरीदी गई हैं और इन पर सपादनात्मक काय हो रहा है किन्तु अर्थाभाव के कारण इस काम मे गतिशीलता नही आ पाई है। समय समय पर लेखो का प्रकाशन मात्र किया जा रहा हैं—इनकी कृतियो का प्रकाशन नही हो पा रहा है।

व्यास बालाबक्स मे उपेक्षित-कवि-सकलन मे महाकवि रसरासि की अनेक कृतियों का उल्लेख मिला है। तदुपरात रसरासि की १० कृतियो का पता लगा–जिन सभी का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस पुस्तक मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। महाकवि रसरासि का शुद्ध नाम रसराशि स्वीकृत किया जाता है किन्तु मैंने कवि की कृतियों मे उपलब्ध 'रसरासि' के नाम का उल्लेख यथावत् किया है। वृजभाषा के इस कवि ने अपने नाम के साथ स का ही प्रयोग किया है—अत तदनुरूप को सरक्षित स्थिति मे यथावत् प्रयुक्त करने का पूर्वाग्रह रखा गया है। कवि की कृतियाँ खण्डित अवस्था मे उपलब्ध हुई हैं अत पाठ मे यत्र तत्र गतिभग व शब्द विकृति भी स्वाभाविक हो गई है। यद्यपि विशृ खल पाठो को सुधारने का भी यत्न किया गया है किन्तु मौलिकता का स्पर्श किसी के लिए भी सम्भव नहा हो सकता है।

महाकवि रसरासि जयपुर नरेश सवाई श्री प्रतापसिंह का राज्याश्रित कवि रहा है। इसका उल्लेख कवि ने कृतियो मे यत्र तत्र-सवत्र किया है। श्री प्रतापसिंह स्वय एक अच्छे कवि थे तथा अनेक कृतियां की रचनाकर साहित्यिक अमरता प्राप्त की है। श्री प्रतापसिंह का समय साहित्यिक वातावरण से एक 'सृजन युग' था। इस युग मे अनेक प्रतिभाओ को प्रश्रय मिला और अनेक कृतिया जन सामान्य के समक्ष आई। इस युग के सदर्भ मे हिन्दी साहित्यकारो एव आलोचको का ध्यान भी गया और शोधात्मक प्रवृत्ति ने अनेक तथ्यो को जनसामान्य के सामने प्रस्तुत किया किन्तु आश्चर्य है कि प्रतापसिंह के समकालीन कवियों मे कहीं भी महाकवि रसरासि का

उल्लेख भी नहीं हो सका । या तो यों कहना चाहिये कि आलोचकों की दृष्टि-पथ में रसरासि का नाम ही नहीं आया अथवा रसरासि की कृतियों के अस्तित्व को महत्व नहीं दिया । अस्तित्व का जहां तक प्रश्न है—उसके लिए हम कोई माप निर्धारित नहीं कर सकते हैं क्योंकि— एक शब्द सुप्रयुक्त सम्यग्ज्ञात कामधुग्भवति"—इस मान्यता के अनुसार प्रत्येक कृति का अपना विशिष्ट अस्तित्व एवं महत्व होता है ।

यद्यपि मिश्र बन्धुओं ने मिश्र बन्धु विनोद' में तीन स्थानों पर रसरास एवं रसरासि का उल्लेख किया है । हिन्दी के अन्य दो तीन विद्वानों ने भी इस प्रकार के उल्लेख किये हैं । कुछ विद्वानों ने रसरास को रसरासि के नाम से व्यवहृत करने का प्रयास किया है जबकि 'रसरास' रसरासि से भिन्न हैं । रसरास भी जयपुर के ही कवि हैं और इन्हें भी जयपुर के राजघराने का आश्रय मिला था । रसरास का समय १७ वीं शताब्दी था और रसरासि का १८ वीं शताब्दी । 'रसरासि रामनारायण श्री प्रतापसिंह के आश्रित कवि रहे हैं और राजा से इनका निकटतम सम्बन्ध रहा है । प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कुछ लोग इन्हें जीवराज सिंघी के आश्रित मानते हैं किन्तु इस शोध प्रबन्ध में विवेचित कृतियों में कहीं पर भी 'जीवराज' का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है । साथ ही वंश प्रशंसा' नामक कृति में कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि उसका आश्रयदाता सवाई प्रतापसिंह है । यद्यपि इसी समय 'रसराज' नामक भी कवि हुए हैं उनका उल्लेख सम्भवतः हो गया हो । दो-तीन स्थानों पर इनका जो उल्लेख हुआ है—वह कवित्त रत्न मालिका के आधार पर हुआ है । कवित्त रत्न मालिका' कवि रसरासि की स्वयं की कृति नहीं है अपितु प्राचीन अथवा समकालिक कवियों के कवित्तों का संकलन मात्र है । विद्वान् सर्वेक्षण कर्ताओं की धारणा है कि ६०६ कवित्तों के इस संकलन में कवि रसरासि के १०८ कवित्त हैं । हिन्दी-प्रचार परिषद् राजस्थान के तत्वावधान में मेरे द्वारा खोज की गई पाडुलिपियों में कवित्त रत्न मालिका नाम की कोई कृति उपलब्ध नहीं हुई और न ही पुष्पिकाओं में इस प्रकार का उल्लेख मिला है । मेरी धारणा यह है कि 'रसरासि कवित्त शतक' को ही कवि रत्न मालिका' में किसी संकलनकर्ता ने उल्लिखित किया है । क्योंकि कवित्त -रत्न-मालिका' के बहुत से कवित्त रसरासि-कवित्त शतक से साम्यता रखते हैं, अतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि रसरासि ने ही कवित्त रत्न-मालिका' में अपने कवित्तों का संकलन किया हो, यह आधार उपयुक्त सा प्रतीत नहीं होता है—यहाँ यह कहना उपयुक्त होगा कि किसी समकालिक साहित्यानुरागी ने रुचिकर लगने वाले कवित्तों का संकलन किया होगा—और कवित्त रत्न मालिका' के नाम से सम्पादित किया होगा ।

पाठकों के मध्य रसराम, रसरासि एवं रसराज इन तीन नामों से भ्रान्ति

उपस्थित होना स्वाभाविक है अत यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हू कि रसरासि, रसरास और रसराज भिन्न-भिन्न कवि हुए हैं। यद्यपि रसरासि के नाम का उल्लेख अवश्य हुआ है-जिनका हमे प्रामाणिक आधार भी मिल गया है किन्तु रसरासि के समग्र वाङ्मय की खोज नहीं की जा सकी थी। केवल १०८ कवित्तो का जिक्र ही हमे मिलता है। मैं समझता हू जिन १० कृतियो का इस ग्रथ म विवेचन किया गया है-वह खोज-के क्षेत्र मे एक नई उपलब्धि कही जा सकेगी। इन कृतियो मे सदर्भ मे मिश्र बन्धुओ ने भी रसरासि' नामक दो कवियो का उल्लेख किया है। उनमे से पृ स १३१ (भाग-४) पर उल्लिखित रसरासि ही इस प्रबन्ध के रसरासि हैं। डा० किशोरीलाल गुप्त ने रसरासि के स्थान पर रसराम का उल्लेख किया है-यह उपयुक्त नही कहा जा सकता है कवि का उपनाम वस्तुत रसरासि रहा है। इन विद्वानो ने रसरासि नाम के कवि का सकेत अवश्य दिया है किन्तु इनके सृजन का पूर्ण परिचय हम कही भी उपलब्ध नही हो पाता है, मैं समझता हू कि जिन दस कृतियो का उल्लेख व विशद परिचय इस शोध-ग्रथ म दिग्दर्शित करने का प्रयास किया गया है-वह एक नया सूत्र होगा और इससे हम इस कवि के सदर्भ म कुछ और अधिक जानने के लिए आधार मिल सकेगें।

कवि रसरासि न अपने सृजन मे अमूल्य एव नूतन स्वर दिये हैं-जिन्हे हम साहित्यिक दृष्टि से समादृत करते हैं। कवि रसरासि प्रतापसिंह के दरबार मे रहते थे और अपने शासक की आज्ञा से सृजन करते थ स्वय शासक कवि को सृजन के लिए प्रेरणा देते थे-ऐसी स्थिति म भी कवि का नाम जयपुर के इतिहास मे भी उल्लिखित नही हो सका। इसका प्रमुख कारण यह हो सकता है कि कवि आत्म विज्ञापन एव प्रचार प्रसार से विलग रहकर एकान्त साधना सेवी के रूप मे सृजन शील रहा और यश की सभावनाओ स दूर हटकर आत्म-सताप अथवा आत्महितार्थ सृजन करता रहा। आने वाल समय ने कवि को सवदा के लिए विस्मृत सा कर दिया।

कवि रसरासि न आत्म-निवेदन करते हुए स्वय कहा है —

जसे दुरयो बादर प्रकास सविता कर
त्यो हिये माझ दुरयो रसरासि कविता कर।

कवि स्वय को कर्ता न मानकर साधन मात्र मानता है ऐसा कवि कब यश की ओर प्रवृत्त हो सकता था ? कवि रसरासि अपने युगीन साहित्यिक वातावरण म व्याप्त विसगतियो एव विद्रूप स्थितियो से खिन्न था-इसकी अभिव्यक्ति रसरासि-कवित्त शतक के प्रारम्भ मे की है। कवि का मुख्य आराध्य नद नन्दन रहा है अपने

ाराध्य की अनेक लीलाओं का मनोरम चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। परम्पराओं से हटकर अनेक नवीन कल्पनाओं को भी स्थान दिया गया है। श्री कृष्ण के रूप सौंन्दर्य एवं लीला-वर्णन के प्रसंग में भक्ति कालीन कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों के द्वारा विशद् वर्णन प्रस्तुत किया जा चुका है, महाकवि सूरदास ने अपनी दृष्टि में श्रीकृष्ण के अमित सौंदर्य एवं सकल-लीलाओं को बांधकर सूर-सागर में उतार दिया। इसके उपरांत कोई अछूता प्रश्न शेष नहीं रह पाता है किन्तु कवि रसरासि ने कुछ अछूते मानसिक-प्रश्नों का स्पर्श किया है। श्रीकृष्ण के बाल-चरित्र लीलाओं के प्रसंग में-श्रीकृष्ण का राधा से विवाह का प्रस्ताव, श्रीकृष्ण की सहज-स्वभावोक्ति और उसके पश्चात नन्द-यशोदा की स्मृतियों के संसार में निज यौवन के ही गत उद्दाम चित्रों का अवलोकन करना। कवि ने उस हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त करते हुए कहा है-

रसरासि प्रभुजू के वचन विचित्र सुनी
नंद औ जसोदा दोऊ हसे छुए तोरि-तोरि

इस प्रकार के अनेक मर्मस्पर्शी दृश्यों को प्रस्तुत करने में कवि ने किसी सीमा तक सफलता प्राप्त की है। आलंकारिक-युग में जन्मे हुए इस कवि की भी यही मान्यता रही है कि-अलंकारों के अभाव में कविता का सौंदर्य घट जाता है। कवि रसरासि अलंकार शास्त्र 'संगीत शास्त्र' छंद शास्त्र एवं सिद्धान्तों का पूर्णज्ञाता रहा है। कवि रसरासि का पूर्णनाम रामनारायण 'रसरासि' था यह कवि कहां जन्मा' राजपूताने में कब आया, राजा प्रतापसिंह का राज्याश्रय कब प्राप्त किया, इसके वंशज कौन है ? ये सभी प्रश्न अभी भी अपूर्ण हैं। आचार्य श्री सीताराम पारीक की इस संदर्भ में मान्यता है कि-'कवि रसरासि सम्भवतः वृजभूमि के किसी गांव के निवासी रहे होगें जयपुर-नरेशों की उदारता एवं साहित्य-प्रेम से आकृष्ट होकर जयपुर-रियासत के राजा प्रतापसिंह के राज्याश्रित कवि रहे होंगे। रसरासि की उपेक्षा निस्संदेह एक आश्चर्य है—जो सम-सामयिक राजनैतिक दुष्प्रभाव ही हो सकता है। कवि रसरासि की कृतियों के अवलोकन करने पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दी-साहित्य की सृजन-परम्परा में कवि रसरासि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है-जिसे हम आज पाकर गौरव की अनुभूति किये बिना नहीं रह सकते।' सरकारी क्षेत्र से भी अनुरोध है कि इतिहास की अमूल्य-निधियां-ऐसी कृतियों को पर्याप्त संरक्षण प्रदान करे। केवल प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान द्वारा क्रय किया जाना ही पर्याप्त नहीं है अपितु अनुसंधानकर्ताओं एवं प्रकाशकों को प्रोत्साहन दिया जाना अनिवार्य होना चाहिये—तभी राजघरानों में चिर संरक्षित कृतियों का मूल्यांकन सम्भव हो सकता है। राजघरानों

व पोथीखानो मे सुरक्षित बहुमूल्य साहित्य को प्रकाश म लाने पर साहित्यिक-इतिहास म क्रान्तिकारी परिवर्तन सम्भव हो सकते हैं। यह कवि भी जयपुर के राजघराने से सबद्धित रहा है।

हिन्दी-प्रचार-परिषद ने समय समय पर अनेक गोष्ठियो का आयोजन किया -और इन सगोष्ठियो म 'रसरासि एव उनकी कृतियो पर अनेक विद्वानो ने अपने-अपने अभिमत प्रस्तुत किय किन्तु इनके परिचय एव व्यक्तित्व के सदभ में किसी ने कोई नवीन सूत्र प्रस्तुत नही किया। कृतित्व के माध्यम से ही इनके व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण किया जा सका। कतियो के सम्बन्ध म मनीषियो के भिन्न भिन्न मत रहे किन्तु सभी ने इस उपेक्षित कवि की कृतियों को महत्व देते हुए प्रकाशन पर बल दिया। १९६६ म रसरासि के व्यक्तित्व एव कतित्व पर लेखो 'कादम्बरी' एव राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर से प्रकाशित मधुमती आदि पत्रिकाओं म लेखो का प्रकाशन हुआ।

कवि रस रासि की कृतियों म-प्रमुख कृतियां रसिक-पचीसी, रसरासि कवित्त मानक पद राजस्थानी पद आदि रचनायें श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धित हैं, यद्यपि य रचनायें भक्तिमूलक है किन्तु रीतिकालीन परम्पराओ और मान्यताओ से प्रतिबद्ध हैं-इसी कारण मैं कवि रसरासि को रीतिकालीन कवि के रूप में स्वीकार करता हू। इसके अतिरिक्त वश-प्रशसा कवि की अपने आश्रयदाता को प्रशस्तिमूलक कृति है। इसी प्रकार 'ससार-सार-वचनिका एव राम-सनेस' ऐसी कृतिया है-जिनका साहित्यिक दृष्टि स कोई विशिष्ट महत्व नही हैं अपितु मानव-जीवन की मूलभूत समस्या भौतिक उलझना म विलग होकर मोक्ष प्राप्ति एव ईश्वर विधान स सम्बद्धित हैं। यद्यपि इन कृतियो का इस ग्रथ में समावेश करना कोई विशिष्ट उपयोगी कार्य मैं स्वय नहीं समझता हू किन्तु कवि का समस्त कृतित्व प्रस्तुत किये बिना हम उसके पूर्ण व्यक्तित्व एव कृतित्व का मूल्याकन नहीं कर सकते हैं अत आवश्यक था कि हम कृतिकार के सकल व समग्र-सृजन को जन-सामान्य के समक्ष प्रस्तुत करें। दोहा मुक्त मालिका कवि की कृति नहीं है अपितु अपनी रुचि के अनुसार अपने युगीन एव पूर्वकालिक शृगारिक दोहो का सकलन मात्र है कुछ दोहे स्वय कवि के भी हो सकते हैं किन्तु अधिकाश अन्य कवियो द्वारा लिखित हैं। कवि रसरासि ने तो मनोरम लगने वाले दोहो का सकलन-मात्र किया है। यद्यपि इस कृति के प्रारम्भ व अन्त म कवि ने अपने नाम का उल्लेख किया है किन्तु यह उल्लेख सम्भवत सकलन कर्ता के रूप मे किया गया हैं। कवि की समग्र कृतिया के समीक्षण करने के पश्चात ही पाठकगण इसके मूल्याकन को समझ सकगें। मेरा उद्देश्य इस उपेक्षित कवि को जन सामान्य

तक पहुंचाना मात्र था–इस सफलता मे सहयोगी व ध्रुणगो मे आचार्य श्री सीताराम पारीक रेवती रमण शास्त्री, आचार्य श्री रामनिवास शाह रामजीलाल शास्त्री, डा० रामदत्त शर्मा प्रभृति का नामांकन करने को हृदय सहज रूप से स्वीकारता है।

प्राक्कथन के लिए हिन्दी–साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् साहित्य मनीषी राजस्थान विश्वविद्यालय के आचार्य डा० श्री सत्येन्द्र जी का अत्यंत आभारी एवं कृतज्ञ हूँ– जिन्होने मेरी प्रार्थना सहज रूप से प्रथम दर्शन में ही स्वीकार कर ली।

इस कृति के प्रकाशन का श्रेय देवनागर प्रकाशन के श्री पवनचन्द सिंघवी एवं श्री मनमोहन राज को है–जिन्होंने अपने श्रमसाध्य प्रयासो से इस कवि को आपके समक्ष प्रस्तुत करने का दुस्साहस किया है। साथ ही साहित्यकार एवं कलाकार श्री प्रेमचन्द गोस्वामी का आवरण की साज सज्जा के लिए अपना आभार व्यक्त करता हूं।

अन्त मे कवि रसरासि के जीवन–परिचय एवं कृतियो के विश्लेषणात्मक परिचय को प्रस्तुत करता हुआ यह आशा रखता हू कि हिन्दी साहित्य अनुरागी गण इस उपेक्षित कवि का अस्तित्व स्वीकार करते हुए उचित स्थान दे सकेंगे। आने वाला इतिहास अतीत की संस्कृति का संरक्षण प्रदान कर कवि के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित कर सकेगा। शीघ्रतावश जिन त्रुटियों का समावेश मुद्रण मे हो गया है उस असुविधा के लिए पाठक गण मुझे क्षमा कर सकेंगे।

आचार्य उमेश शास्त्री

फतहपुर शेखावटी
नव–वर्ष १६७२



लेखक का सृजन

काव्य

- कण्व क‍न्या (प्रब‍ध का‍य)
- मेनका महाका‍य
- अपराजिता गौतमी (खण्ड का‍य) टूरण्टो विश्व विद्यालय कनाडा द्वारा अभिशसित
- शर्मिष्ठा (चित्र प्रधान का‍य)
- धरती लाल लुटाती (श्रद्धाजलि का‍य)
- नेहो के द्वार पर(कविता सकलन)
- प्रमद्वरा(भाव का‍य)

उप‍यास

- शारदा
- सगीता
- कायर की मौत
- टूटते किनारे
- उ‍मा‍
- माधवी
- अपराधो के प्रतिबिम्ब

शोध

- महाकवि रसरासि
- भारते‍दु युगीन व्यास बालाबक्स
- राजस्थान के हि‍दी महाका‍य
- सजन के क्षेत्र म भ्रा‍म बोअ

अ‍य

- कथा माधुरी
- रसिक–पचीसी (सपादन)
- शृ गार शतकम (कवि नरहरि प्रणीतम्)

स‍पादन

- सस्कृत सुधा(त्र मासिकी)
- केकी (हि‍दी मासिक)

रसरासि का परिचय

प्राचीन काल म कवि आत्मप्रशसा अथवा आत्म परिचय की प्रवृत्ति से असम्पृक्त रहते थे। अपनी कृतियो म आत्मोल्लेख करना भी अहं की सज्ञा मानते थे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण सस्कृत साहित्य है। आज भी अनेक कृतिया अपने निर्माताओं के नाम की प्रतीक्षा म सजग हैं। निर्माताओ के परिचय अथवा जीवन वृत्तान्त की बात करना तो अनिश्चयता भर होगी। हिन्दी साहित्य म भी इस परम्परा को किसी सीमा तक निभाया गया किन्तु कृतिया कृतिकारो के सदभ म मौन नहीं हैं—व अपने माध्यम से कवियो के सदभ म बहुत कुछ कहने मे सक्षम हैं। यद्यपि हम पूण रूप से कृतिया के माध्यम द्वारा कवि का जीवन-वृत्त प्रस्तुत नही कर सकते किन्तु पुनरपि अनुमान द्वारा यथाथ के धरातल तक पहुच सकते हैं। यह स्थिति कवि रसरासि के साथ भी सम्पृक्त है।

किसी भी कवि की जीवनी अथवा देशकाल के सदभ मे हम निम्न तथ्यो पर जानकारी उपलब्ध हो सकती है —

(क) कवि के द्वारा आत्म सम्बन्धित निवेदन।

(ख) कृतियों मे उल्लिखित आत्म विवेचन।

(ग) कृतिया में उपलब्ध आत्म-कथन।

(घ) सम सामयिक कवियो की कृतियो म कवि का उल्लेख।

(ङ) शोध लेखकों द्वारा सधानित-विवेचन।

कवि 'रसरासि' के सदभ म 'कृतियो मे उपलब्ध आत्म-कथन' के माध्यम से हम कुछ कह पाने म समथ होते हैं इसके अतिरिक्त इस कवि के सदभ मे हम कही भी लेशमात्र जिक्र नही मिलता हैं। जयपुर नरेश सवाई श्री प्रताप सिंह के समय म हुआ यह कवि सदा-सवदा से उपक्षित रहा है। तत्कालीन कवियो एव परवर्ती कवियों द्वारा कही भी इस कवि का उल्लेख नही किया गया है।

मुझे इस कवि के संदर्भ में आज से ५ वर्ष पूर्व जानकारी प्राप्त हुई। मैं व्यास बालाबक्स के साहित्य पर शोध कर रहा था तभी एक प्राचीन-पत्र पर रसराशि का उल्लेख मिला और मेरी शोध प्रवृत्ति और अधिक उत्सुक हो उठी। व्यास बालाबक्स के बिखरे हुए साहित्य में रस राशि की कृतियां भी मुझे उपलब्ध हुईं। इन कृतियों को देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि सवाई प्रतापसिंह का समकालीन कवि आज तक उपेक्षित रहा। जिन व्यास बालाबक्स के साहित्य में रसराशि की कृतियां उपलब्ध हुईं उनके संदर्भ में इस प्रकार परिचय मिलता है —

जयपुर के प्रतिष्ठित दाधीच घराने में व्यास बालाबक्स का जन्म पौष कृष्णा १२ संवत् १९०२ में हुआ। आपके पिता व्यास मथुरानाथ षड्शास्त्री अत्यन्त धार्मिक एवं संस्कृत साहित्य के ममज्ञ थे। मथुरानाथजी स्वयं संस्कृत के महान् कवि एवं तत्व विचारक थे। व्यास बालाबक्स पर पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पड़ा। पुराणेतिहास के स्वाध्याय एवं अध्यवसाय के साथ साथ ही इनकी काव्य शक्ति का विकास प्रारम्भ हुआ। आगे चल कर यही कवि नाटककार के रूप में सामने आये। तत्कालीन जयपुर नरेश साहित्य एवं संगीत के परम प्रेमी थे तथा साहित्य क्षेत्र के विकास हेतु उन्होंने नाटकघर की स्थापना की। यद्यपि व्यास बालाबक्स ने राजा रामसिंह के समक्ष नाटक घर के रंगमंच पर अभिनीत करने के लिए अनेक नाटक लिखे, जिनमें सुदामा नाटक भर्तृहरि नाटक, पुरजन नाटक आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। प्राप्त पाण्डुलिपियों के आधार पर व्यास जी का साहित्य इस प्रकार है—

(१) पुरजन नाटक।

(२) भर्तृहरि नाटक।

(३) सुदामा नाटक।

(४) विश्वकर्मा नाटक।

(५) जन्म महोत्सव।

(६) मण्डल पचीसी।

(७) रास पंचाध्यायी का गायन में अनुवाद।

(८) वृजभाषा एवं गुजराती के पद।

(९) पुष्टिमार्गीय वाङ्मय।

(१०) राम बनवास।

(११) उपेक्षित कवि संकलन।

उपेक्षित कवि सकलन—

व्यास बालाबक्स द्वारा सकलित इस सकलन मे तीन कवियो की कृतियो का सकलन है। रसरासि, चिमनलाल और कृष्णदास इन तीन कवियो की कृतियो का सम्पादन कर व्यासजी ने हिन्दी साहित्य की सुरक्षा की है। चिमनलाल जाति म जन थे और इनका एक मात्र अपूर्ण नाटक इस सकलन में है। कृष्णदास पुष्टिमार्गीय थे, इन्होंने कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित फुटकर पद्यो की रचना की है और रसरासि ने विविध कृतियो का सृजन किया है जो इस ग्रन्थ म सम्पादित हैं। स्वय व्यासजी ने भी इन कवियो अथवा कृतियो के सदर्भ मे किसी प्रकार की टिप्पणी का उल्लेख नही किया है।

उपलब्ध कृतियाँ—

इस सकलन मे रसरासि का साहित्य इस प्रकार उपलब्ध होता है —

(१) रसिक-पचीसी।
(२) रसरासि कवित्त शतक।
(३) उत्सव मालिका।
(४) रसिक पद।
(५) फुटकर-कवित्त।
(६) वश प्रशसा।
(७) ससार सार-वचनिका।
(८) कुडलिया।
(९) राग सकेत।
(१०) फुटकर दोहा मुक्त मालिका।

इन कृतियो म कवि रसरासि ने कही पर भी अपने परिचय अथवा जीवन-वृत्त सम्बन्धित वर्णन नही किया है। प्रत्येक कृति के प्रारम्भ मे कवि ने अपने नाम का सकेत देते हुए अपने इष्टदेव की प्रार्थना में अपने आपको समर्पित किया है और इसी प्रकार अन्त मे अपने शासक का उल्लेख किया है। जिसके माध्यम से यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि ये सभी कृतियाँ रसरासि द्वारा ही निर्मित हैं।

रसरासि ने रसिक पचीसी के अन्तिम कवित्त म इस प्रकार आत्म निवेदन किया है।

राधेजू रसिक महारसिक गुव्यदजू के
रस के सदेसन मे भरी रसिकाई है।

रस ही के ऊतरसी ले वृजवासिन के
सुनि सुनि उधो हू रसिकताई पाई है ।
रसिक सुजान महाजान श्री प्रताप
भूपतिन की कृपा त यह बात बनि आई है ।
रसिक सभा मे रस-रङ्ग बरसायवे को
रसिक पचीसी रसरासि हू बनाई है ।।

इससे यह स्वत ही सिद्ध हो जाता है कि रसिक-पचीसी के निर्माता रसरासि है और यह रसरासि जयपुर-नरेश श्री सवाई प्रताप सिंह के आश्रित कवि रहे हैं। प्रताप सिंह की सभा म अनेक रससिद्ध कवि थे । इस सभा मे कविगण अपनी रचनायें सुनाया करते थे । रसरासि सवाई प्रतापसिंह के प्रति अत्यन्त श्रद्धानत थे इसी कारण रसिक पचीसी के अन्त मे इन्होने उद्धृत किया है —

इति श्री मन्महाराजाधिराज राज राजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंहजी दवाज्ञप्त रसरासि विरचितरसिकपचीसीपूर्णतामगात ।।"

कवि के जीवन वृत्त के सदभ म निम्नाङ्कित कवित्तो के माध्यम से बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है। रसरासिकवित्त शतक म स्वय रसरासि न आत्म परिचय इस प्रकार लिखा है —

साधि सहस्नास्य भास्य वेद व्यास सूत्रन के
श्रुति वे स्मृति व्है के समत विचारै है ।
सब ही को सार हरिसरन बताय जिन
कलि के मलिन मूढ जीवनि सतारै है,
सख चक्र माल रसरासि दास छाप दै के
भक्ति के प्रताप शिष्य सगरे सिंगारे हैं
निज सम्प्रदा को धम दृढ करिवे के काज,
श्री जू श्री आचारज ह्व प्रकट पधारै हैं ।१।।
श्री मन्नारायण जू के चरण को सेवक
श्री रामानुज सम्प्रदा को सिस्य पद पायो है
रसिक सभा मे बठि बोलिवे को चाव मेरे
वे हू मोहि चाह ईहि लाभ लोभ छायो है,
विप्रवर वश रामनारायण नाम नी को

कविता मे छाप रसरासि हेरिल्यायो है,
सब को सुहायो लखी लाल गुन गायो भयो
मेरे मन भायो सब ही के मन भायो हैं ॥२॥

इससे यह सिद्ध होता है कि रसरासि कवि का वास्तविक नाम रामनारायण है। रामनारायण कवि का उपनाम रसरासि है। स्वय कवि ने इस तथ्य को स्वीकारा है कि मेरा वास्तविक नाम रामनारायण है किन्तु कविता के क्षेत्र के लिए छाप रूप मे 'रसरासि' नाम को स्वीकारा है। यह परम्परा प्राय अधिकाश कवि सम्प्रदाय म प्रचलित रही है। कविगण अपने बृहद् नाम की अपेक्षा लघु एव आकर्षक नाम का सन्निवेश करना उपयुक्त समझते रहे हैं। साहित्यकार अपने नाम को भी साहित्यिक स्वरूप देकर ही सतोष लेते हैं। भूषण, पद्माकर, तोपनिधि निराला आदि सभी नाम उपनाम है। उपनाम इतने प्रसिद्ध हो जाते हैं कि वास्तविक नाम गौण रह जाते हैं।

रामनारायण रसरासि जाति से विप्र थे। इसका उल्लेख हमे उपरिलिखित पद्य मे प्राप्त हो जाता है। रसरासि के वशज ब्रज भूमि के रहने वाले थे किन्तु जयपुर नरेश की गुणग्राहकता एव उदारता से प्रभावित होकर जयपुर मे रहन लगे थे। इनके माता पिता कौन थे ? क्या करते थे ? वे कब यहाँ आये ? राज्याश्रित कब से हुए ? इन सभी प्रश्नो का उत्तर हमे प्राप्त नही होता है।

रसरासि रामानुज सम्प्रदाय के मतावलम्बी थे। ये अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के पूर्ण समर्थक थे। शख चक्र आदि के लक्षणो से स्वय भी लक्षित रहे हैं। कण्ठ म अपने सम्प्रदाय की विशिष्ट माला धारण करते थ। श्रीमन्नारायण के अत्यन्त दृढ भक्त थे। श्री रसरासि अपने सम्प्रदाय के आचार्यों के प्रति निष्ठावान थे। इनकी कृतियो मे स्थान स्थान पर गुरु भक्ति के प्रति विनय भावना के दर्शन मिलते हैं।[1]

'उत्सव मालिका के प्रारम्भ में रसरासि ने गुरु भक्ति को महत्व देते हुए कृति का श्री गणेश ही गुरु पद वन्दना से किया है।[2]

---

1 निज सम्प्रदा कौ दृढ करिवे के काज
श्री जू श्री यावारज ह्वै प्रगट पधार हैं। र० क० अ०

2 श्री हरि गुरपद कमल को,
वदन करि धरि ध्यान
वरनों उत्सव मालिका,
क्रम क्रम गुन ग्यान ॥ उ० मा०

रसरासि का प्राचाय प्रथवा गुरु किसे कहा जाय इस सदभ मे स्वय कवि स्पष्ट रूप से किसी का भी उल्लेख नही किया है। इस सदभ म हम अनुमान के आधार पर ही किसी निर्णय पर पहुँच पाने मे समथ हो सकते हैं।

रसिक कवित्त शतक' मे कवि ने इस प्रकार उल्लेख किया है —

सब ही को सार हरिसरन बताय जिन-
कलि के मलिन मूढ जीवनिस तारे हैं।

इस आधार पर हम यह कह कि श्री रामनारायण रसरासि के आचार्य श्री हरिसरन थे तो सवथा उपयुक्त नही हो सकता क्योंकि यहा 'हरिसरन' शब्द से भगवान की शरण में जाना यह अथ अभिप्रेय है। कवि दास परम्परा से सम्पृक्त रहा है और यह भी उचित है कि रामानुज सम्प्रदाय म दास शब्द का विशिष्ट महत्व रहता आया है अत इनके आचाय के साथ दास शब्द का होना आवश्यक होना चाहिये। 'हरिशरण' शब्द के साथ कवि ने दास शब्द का प्रयोग नही किया है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि हरिसरन इन के आचाय नही थे।

इसके अतिरिक्त इनके साहित्य मे एक और पद्य मिलता है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्री जगन्नाथ पुडरीक भट्ट इनके आचाय रहे हो।[3]

पुडरीक भट्ट जयपुर राज्याश्रित रहे हैं। यह परिवार जयपुर नरेशो के राजगुरु पद को सुशोभित करता रहा है। यह परिवार सदा से विद्वद समुदाय का अग्रणी रहा है। आज भी इस परिवार के सदस्यो का जयपुर विद्वद् घराने से सम्बन्ध है। इस परिवार मे साहित्य, न्याय तन्त्रशास्त्र एव कमकाण्ड प्रभृति के विद्वान हुए हैं। इस परिवार के सदभ म अनेक किंवदतिया भी प्रचलित हैं। जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह के समय म भी पुडरीक भट्ट का अस्तित्व गौरवशाली था। श्री

---

3 सवत अगरह स अधिक पचासवें की
फागुन सुकल एकादसी छवि छाई है।
ताही सम पुडरीक भट्ट जगनाथ जू को
करिके प्रनाम पोथी मस्तक चढाई है।
रसरासि भागवत चित्र विचित्रन मे
हरिके चरित्रन मे लगनी लगाई है।
माघव तनय महाजान श्री प्रताप भूप
कानन की सुनी कथा आंखिन दिखाई है।

जगन्नाथ भट्ट कवि रसरासि के साम्प्रदायिक गुरु तो नहीं हो सकते (यहा साम्प्रदायिक से मेरा अर्थ रामानुज साम्प्रदाय से है) किन्तु विद्यागुरू अथवा साहित्यिक आचार्य अवश्य रहे होंगे–तभी तो कवि रसरासि ने इतने सम्मान के साथ इनका नामोल्लेख किया है। इस तथ्य के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि रसरासि के आचार्य श्री जगन्नाथ पुण्डरीक भट्ट थे अथवा कवि इनसे अत्यधिक प्रभावित था।

सहृदय कवि —

कवि का सहृदय होना अनिवार्य गुण है। रसिक-व्यक्तियों के मध्य कवि बैठ कर परमानन्द की अनुभूति करता है। अरसिक व्यक्तियों का सम्पर्क अथवा एन जीवों के मध्य साहित्य चर्चा अत्यन्त पीड़ाजनक होती है। स्वयं भवभूति ने इस पीड़ा की अनुभूत करते हुए लिखा है —

'अरसिकेषु कवित्व निवेदनम्
मालिख मालिख, मालिख।

'रसरासि' जैसा नाम से ही विदित है कि रस के ग्राहक थे। यह कवि स्वभावतः रसवाद का समर्थक रहा है, रसिक प्राणियों के साथ बैठकर जीवन जीने में निरान्त आनन्द का अनुभव करते थे। रसिकों के संग स्मरण में हमेशा रसलीन रहते थे।[4]

रसिकों के प्रेमी रसरासि सहृदय हृदय व्यक्तियों के प्रति अत्यधिक निष्ठावान थे। ऐसे व्यक्तियों के प्रति विनय की भावना से ओतप्रोत रहते थे। 'उत्सव मालिका' के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण करते हुए स्वयं कवि ने रसिकों के प्रति विनय से अविचल भावना का प्रदर्शन करते हुए रसिक जनों को नमन कर उदात्त भावना का दिग्दर्शन

---

4 विमुख सुरेश हू से गढ़े जिहू नर होहि–
हौं तो तिहू और की पवन तें टरत हौं,
हरिपद पकज पराग रसलीन निहे–
दूर हीतें देखि महामोद सो भरत हौं,
एमी रसरासि बढ परयो है सुभाव मेरो
रसिकन सग सदा रङ्ग सो ररत हौं,
शोभा सुधासिधु दीनबन्धु रघुनन्दन जू के
चरन सरन परयो कविता करत हैं।

—रसिक कवित्त 'शतक'

किया है।[5] कवि इस तथ्य से परिचित है रस ग्राही ही कवि की कोमल भावनाओं का समादर कर सकता है सुकुमार भावों को श्रद्धा दे सकता है चमत्कृत अर्थों का ग्राहक हो सकता है अरसिक व्यक्ति नहीं।

रसरासि के साहित्यिक उपपाद्य भी रसिक-शिरोमणि रासबिहारी हैं। रसिक पचीसी के अन्त में स्वयं कवि ने अपने आराध्य दम्पती को रस में परिपूर्ण पाया है। कवि की राधा यदि रसिक है तो उनके चित चोर गोविन्द महारसिक हैं। एक दूसरे के सदेशों में अत्यन्त रस भरा हुआ है। स्वयं रसरासि का आश्रयदाता नरेश सवाई प्रतापसिंह रसिक शिरोमणि एवं रसिक सज्जनों के प्रति श्रद्धालु है। सवाई प्रतापसिंह की राज्यसभा भी रसिकों से परिपूर्ण हैं। वहां प्रत्येक व्यक्ति सहृदय हृदय है। ऐसी रसिक सभा में रस उरस को निस्यून करने के लिए कवि रस रासि ने रस से परिपूर्ण रसिक पचीसी का निर्माण किया था।[6]

स्वयं उद्धव रसिक पचीसी में गोपियों के रस रङ्ग को निरखकर उद्वेलित हो उठते हैं। रस रासि श्री कृष्ण की कथा रसिकों ने ही गाई है—यह कहना रस की महत्ता को प्रतिपादित करता है।[7]

---

5 रसिकन को सिर नाय के हिय धरि दम्पति रूप।
करत रसिक रसरासि की उरसव माल अनूप॥

—उरसव मालिका

6 राधेजू रसिक महारसिक गुविंदजू के
रसके सदेसन में भरी रसिकाई है।
रसिक सुजान महाजान की प्रताप भूपतिन की
कृपा तें यह बात बनि आई है।
रसिक सभाम इस रङ्ग बरसायवे को
रसिक-पचीसी रसरासि हू बनाई है।
रसही को उतरसी ले वृन्दावासिन ने
सुनि सुनि रसिक ताई पाई है।

— रसिक पचीसी

7 आयो हो इहालें तो लों निरखत आयो
सङ्ग जोरी रसरङ्ग बोरी मोरे मन भाई है।
अवयों अवलें रुखि आंपे अकुलाई परे
देवें कहा गोरी विन कोरी श्यामताई है।
तुम अरु व तो सदा रहनि हि लेई मिल

इन सभी तथ्यो को प्रस्तुत करने पर यह स्वत सिद्ध हो जाता है कि कवि काव्य के आत्मभूत तत्व से पूर्ण सम्पृक्त था। रसरासि को सदा रसिको के मध्य बठने का अवसर प्राप्त हुआ। स्वय कवि रसिक व्यक्तियो का रसिक था।

धार्मिकता—

हमारी भारतीय सस्कृति विविध धर्मों से बधी हुई रहती आइ है। यहाँ का प्रत्येक सामाजिक किसी न किसी धम से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रतिबद्ध रहा है। कवि गरा भी धार्मिक भावना से सदा सम्पृक्त रहा है। कालिदास, मयूर, जगन्नाथ आदि सभी कवि किसी न किसी इष्ट के प्रति निष्ठावान रहते हुए सम्प्रदाय विशेष से आबद्ध रहे हैं। हिन्दी साहित्य मे भी सूर-तुलसी आदि सभी कवि अपने मुख्य आराध्य के प्रति पूर्वाग्रही रहे हैं।[8] तुलसीदास अपने राम के प्रति पूर्ण दृढ होकर जगत् को राममय देखते हैं।[9] महा कवि सूरदास भी अपने अनन्य आराध्य कृष्ण के प्रति निष्ठावान हैं।[10] राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवतक श्री हितहरिवश राधा

सो तौ रसरासि कथा रसिकन गाई है।
कहा मन भाई यह सावर कन्हाई
कहा भाय छिपि रह इहा राधे को छिपाई है।
—रसिक पचीसी

8, सियाराम मय सब जग जानी।
करौ प्रनाम जोरि जुग पानी॥ —तुलसी
नाम रूप दुइ ईस उपाधी।
अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
नाम रूप गति अकथ कहानी।
समुझत सुखदन परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी। —तुलसी

9 जब तुम मदनमोहन करि टेरो
यह सुनि क घर जाऊ।
हौं तौ तेरे घर को ढाढी
सूरदास मेरो नाऊ॥ —सूरदास

10 रहौ कोउ काहू मनहि दिए।
मेरे प्राननाथ श्री श्यामा सपथ करौं तिन छिए।
—हित हरिवश

के अनन्य भक्त थे।[11] श्री गदाधर भट्ट भी राधा के ही पूर्ण भक्त थे। इस प्रकार हम देखते है कि विविध सम्प्रदायो ने साहित्य सृजन मे महान् योगदान दिया है। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल तो इसी भावना मे प्रेरित रहा है।

कवि रसरासि रामानुज सम्प्रदाय के शिष्य थे। रामानुज सम्प्रदाय के सदभ मे स्व रामचन्द्र शुक्ल न हिन्दी साहित्य के इतिहास म उल्लेख किया है [12] 'जगत्प्रसिद्ध स्वामी शकराचाय जी न जिस अद्व तवाद का निरूपण किया था वह भक्ति के सनिवेश के उपयुक्त न था पर भक्ति के सम्यक प्रसार के लिए जसे दृढ आधार की आवश्यकता थी, वसा इस आधार स्वामी रामानुजाचाय जी (स १०७३) ने खडा किया। उनके विशिष्टाद्व तवाद के अनुसार चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म के ही अ श जगत के सारे प्राणी है जो उसी से उत्पन्न हात है और उसी मे लीन होत हैं। अत इन जीवो के लिए उद्धार का माग यही है, कि व भक्ति द्वारा उस अ शी का सामीप्य लाभ करने का यत्न करें। रामानुज जी की शिष्य परम्परा देश म बराबर फलती गई और जनता भक्तिमाग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। रामानुजजी के श्री सम्प्रदाय मे विष्णु या नारायण की उपासना है। इस सम्प्रदाय म अनेक अच्छे साधु महात्मा बराबर होते रहे है।

तत्वत रामानुजाचाय के मतावलम्बी होने पर भी अपनी उपासना पद्धति का रामानन्दजी न विशेष रूप रखा। कहत हैं कि रामानन्द जी ने भारतवष का पय टन कर अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया।[13]

कवि रसरासि ने अपने सन्थ म स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि वह रामानुज सम्प्रदाय का शिष्य है। कवि न अपने सम्प्रदाय के सभी चि ह अर्थात शङ्ख चक्र आदि अपनी देह पर गुदवाय और नियमानुसार अपने गुरू से दीक्षा ग्रहण कर माला धारण की थी। कवि न अपने सम्प्रदाय को दृढ करने के लिए जन्म लिया था। अपने आचाय के आगमन के निमित्त कवि कहता है–[14] रामनुज सम्प्रदाय को सफल ■ सबल

---

11 जयति श्री राधिके, सकल सुख-साधिके,
तरनि-मनि नित्य नवतन किशोरी।

—गदाधर भट्ट

12 हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल पृ 114

13 वही पृ 116

14 श्री मन्नारायण जू के चरण को सेवक
श्री रामानुज सम्प्रदा को सिप्य पद पायो है।

—रसरासि

बनाने के लिए ही श्री आचार्य जी ने इस धरा पर जन्म लिया है। रामानुज सम्प्रदाय राम भक्ति शाखा की परम्परा में आलोचकों द्वारा स्वीकृत किया गया है। तुलसी आदि कवियों की तरह रसरासि कवि भी राममक्ति शाखा की परम्परा में गिनने योग्य हैं।

[15]कवि रघुनाथ के अनन्य भक्त हैं। अन्य देवी देवताओं की अपेक्षा वे अपने आराध्य को सर्वोपरि मान्यता देते हैं। अन्य देवताओं के सदर्भ में उनकी मान्यता है कि अन्य का महत्व क्षणभगुर है, शाश्वत नहीं। श्री राम चन्द्र के साथ उनके अनुज श्री लक्ष्मण एव जानकी के अस्तित्व को स्वीकारते हैं। वीर वेश में रघुवंशियों का दर्शन कर कवि का मन श्रद्धानत हो जाता है।-[16] कवि का राम साधारण मानव नहीं और न तुलसी दास की तरह केवल मर्यादा निष्ठ ही अपितु त्रिभुवन का आराध्य सृष्टि का नियन्ता एव सार्वभौमिक सर्वोपरि ईश्वर है जिसके आगे महादेव जैसा व्यक्तित्व भी सदा सर्वदा श्रद्धा से नत रहता है। कवि ने शिव को सेवक रूप में दर्शाते हुए अपने आराध्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि सिद्ध किया है।[17]

---

15 तीनो काल तीनो लोक तीनो ताप दूरि करें
मूरि है प्रभाव जाके गुन गन गाये को।
पावन प्रताप दाप दले दुष्ट दोपिन के
दानव दहन कारी बान जाके हाथ को।
छत्र धारी राम की दुहाई कलिकाल हू मे
छाई रसरासि है निवास साचे साथ को।
औरन के राज की बड़ाई दिन च्यार ही लौं
अविचल राज महाराजा रघुनाथ को।

16 सोहन किसोर गोरे सावरे कुवर दोऊ
कसें कटि भाथा मुनि कौसिक के सग हैं।
दोऊन के रूप माऊ होडसी परत देखि
आवें चकचौंधी अति कोमल सु अग हैं।
दोऊ चाप बान लिए आए हैं अनग मनों
तोरि हैं धनुष एई ज्यसे जोरजग हैं।
रसरासि प्रभु की निकाई सुनि जानकी के
नैनन में लाज छाई मन में उमग हैं॥

17 राम चन्द्र जू के चन्द्र चूडजू की भक्ति सग
चन्द्र चूड जू के मुख रामचन्द्र आठो जाम।

कवि रसरासि किसी भी प्रकार के पूवग्रह ग्रथवा दुराग्रह से ग्रसित नही हैं। श्री राम के अतिरिक्त अन्य देवी देवताम्रा को क्षणभगुर की मान्यता देते हुए भी भारतीय सस्कृति एव सस्कारो स विमुक्त नही हो सके।[18] पावन पुण्य सलिला भागीरथी के माहात्म्य का गान करते हुए कहते हैं कि गगा का जल चर ग्रचर सभी के पापो का विनाशक है इस पवित्र जल म सभी स्नान करत हैं। स्वय रसरासि कहता है कि मुझ जस पातकी के उद्धार के लिए भागीरथी तीनो लोक मे निर्बाध गति स प्रवाहित हो रही है। कवि ने गगा का महत्व विविध पदो म दिग्दर्शित किया है। गगा के साथ जगन्नियन्ता शिव के गौरव को प्रतिपादित किया है। गौरवशालिनी गगा शिव के सिर पर ग्रर्धांगिनी गौरी के साथ शोभित होती रहती है।

कवि ने राम एव शिव के ग्रतिरिक्त श्री कृष्ण के बाल स्वरूप का चित्रण भी ग्रत्यधिक मनोरजक शली मे ग्रभिव्यजित किया है।[19] कवि का सावरा कन्हैया

एतो धरें गगा प्रसादी बीलपत्र धरें राम कहे
रामेश्वर इश्वर कहत राम।
ग्रापस मे एसी रसरासि है प्रणमि
सेवक सेव्य सखा सो हे तन गौरे श्याम।
एक ग्रधिकाई भूप रूप रघुराई
यह जोगी है जुगाग्नी महा मृत्यु जय जाकी नाम।।

—रसरासि

18 पावन प्रवाह देखें दोष दुख दाह होत
हिय मे उग्राह होत पातक नसन हैं।
न्हान कियें ध्यान कियें जा को जलपान
कियें पुण्य ग्रनेक देवलोक मे हसत हैं।
रस रासि मो से महा ग्रधम उधारिवे को
देव धुनी धारा तीनों लोक मे लसत हैं।
सदा शिव सगा सोहे गौरि ग्ररधगा
देखो गगा गुन राशि ईश सीस प वसत है। र क श

19 जोई ढिग जाय जा की जाति पाँति खोय डारे
माथे पर मोर के पखौ याल धरत हैं।
सावरो सो ग्र ग कर गायन के सग करें
तन को त्रिभग करें धूरि धूसरत हैं।

कवि अपने सिर पर मयूर पंख धारण करता है। कालिन्दी के कूल पर लहरों से केलि करता हुआ रासलीला का क्रम रचता रहता है। कवि का मुख्य प्रतिपाद्य भी श्री कृष्ण है। यद्यपि स्वयं रामानुज सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को दृढ़ करने की बात करता है किन्तु नंदिनी वृजराज शिरोमणि माधव की रासलीलाओं में पूर्णरूपेण निमज्जित है। कवि सम्प्रदाय विशेष से प्रतिबद्ध होकर भी सृजन के क्षेत्र में पूर्णतः सहजरूपेण मुक्त है। इसका यह भी कारण हो सकता है कि राज्य में कृष्ण-भक्ति आन्दोलन तीव्र गति पर था।–[20] कवि केवल कृष्ण को ही श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता है अपितु कृष्ण प्रिया राधा के सौंदर्य को भी श्रद्धा की दृष्टि से देखता हुआ विनयावनत है।

श्री वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय पुष्टि मार्ग का भी सम्मान करता है। श्री कृष्ण की रासलीला भूमि वृज क्षेत्र रहा था–अतः कवि रसरासि गोकुलपति के प्रति सहज रूप से सम्मान की भावना रखता रहा है।[21] श्री गोकुलेश को गुरु स्वीकारता हुआ पद—पंकजों में श्रद्धा के साथ अपना सिर झुकाता है। गंगा जल में स्नान कर गायत्री मंत्र का मनन करते हुए गोपीचन्दन भाल पर अंकित कर पूर्णभक्त के रूप में अपने आपको व्यक्त करता है। श्रीमद्भगवतगीता के तात्त्विक विवेचन से भी कवि पूर्ण परिचित है। गीता के ज्ञान के महत्व के प्रति अपनी प्रीति अभिव्यक्त करता है। अपने आराध्य को अनेक रूपों में देखते हुए उसके विभिन्न नामों को इस प्रकार

रसरासि कबहू गवाक्ष नजीक लके
कबहू नचायत के त्यौन वितरत है।
कबहू भुजग हव के सीस प चढाय राख
जमुना को जल इन्द्र जाल सौं करत है॥ र० क० श०

20 पंकज प्रफुल्ल सोई सुन्दर मुखारविन्द
चंचल ये मीन सोई अंखिया उमगनी।
सोहत सिवार सो वो वासर अंक मार महा
करत कटाछि वक बीची भ्रुव भगिनी।
चक्रवाक बसत लसत सोई पीन कुच
रसरासि प्रभु घनश्याम अंग संगनी।
भूमि हरियारी सोई ओढि रहि सारी
देखो सावरी सखी है किधौं जमुना तरंगनी॥ र० क० श०

21 गाय लरे गोब्यंद गरुड़गामी गोकुलेश
गुरुपद पंकज सो सीसहि छुवायत।

कवि रसरासि किसी भी प्रकार के पूर्वग्रह अथवा दुराग्रह से ग्रसित नहीं हैं। श्री राम के अतिरिक्त अन्य देवी देवताओं की क्षणभंगुर की मान्यता देते हुए भी भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों से विमुक्त नहीं हो सके।[18] पावन पुण्य सलिला भागीरथी के माहात्म्य का गान करते हुए कहते हैं कि गंगा का जल चर अचर सभी के पापों का विनाशक है, इस पवित्र जल में सभी स्नान करते हैं। स्वयं रसरासि कहता है कि मुझ जैसे पातकी के उद्धार के लिए भागीरथी तीनों लोक में निर्बाध गति से प्रवाहित हो रही है। कवि ने गंगा का महत्व विविध पदों में दिग्दर्शित किया है। गंगा के साथ जगनियन्ता शिव के गौरव को प्रतिपादित किया है। गौरवशालिनी गंगा शिव के सिर पर अर्धांगिनी गौरी के साथ शोभित होती रहती है।

कवि ने राम एवं शिव के अतिरिक्त श्री कृष्ण के बाल स्वरूप का चित्रण भी अत्यधिक मनोरंजक शैली में अभिव्यंजित किया है।[19] कवि का सांवरा कन्हैया

एनी धरें गंगा प्रसादी बीलपत्र धरें राम कहे
रामेश्वर ईश्वर कहत राम।
आपस में ऐसी रसरासि है प्रणनि
सेवक सेव्य सखा सो हु तन गोरे श्याम।
एक अधिकाई भूप रूप रघुराई
यह जोगी है जुगादी महा मृत्युंजय जाको नाम।।

—रसरासि

18 पावन प्रवाह देखें दोष दुख दाह होत
हिय में उछाह होत पातक नसत हैं।
न्हान किये ध्यान किये जा को जलपान
किये पुरुषा अनेक देवलोक में हँसत हैं।
रस रासि मो से महा अधम उधारिबे को
देव धुनी धारा तीनों लोक मे लसत हैं।
सदा शिव संगा सोहे गौरि अरधंगा
देखो गंगा गुन राशि ईश सीस पै बसत है। र क श

19 जोई ढिग जाय जा की जाति पाति खोय डारे
माथे पर मोर के पखौ धाल धरत हैं।
सांवरो सौ अंग कर गायन के संग कर
तन को त्रिभंग कर धूरि धूसरत हैं।

कवि अपने सिर पर मयूर पंख धारण करता है। कालिन्दी के कूल पर लहरों से केलि करता हुआ रासलीला का क्रम रचता रहता है। कवि का मुख्य प्रतिपाद्य भी श्री कृष्ण है। यद्यपि स्वयं रामानुज सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को दृढ़ करने की बात करता है किन्तु ललिनी वृजराज शिरोमणि माधव को रासलीलाओं में पूर्णरूपेण निमज्जित है। कवि सम्प्रदाय विशेष से प्रतिबद्ध होकर भी सृजन के क्षेत्र में पूर्णतः सहजरूपेण मुक्त है। इसका यह भी कारण हो सकता है कि राज्य में कृष्ण-भक्ति आन्दोलन तीव्र गति पर था।–[20] कवि केवल कृष्ण को ही श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता है अपितु कृष्ण प्रिया राधा के सौंदर्य को भी श्रद्धा की दृष्टि से देखता हुआ विनयावनत है।

श्री वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय पुष्टि मार्ग का भी सम्मान करता है। श्री कृष्ण की रासलीला भूमि वृज क्षेत्र रहा था—अतः कवि रसरासि गोकुलपति के प्रति सहज रूपसे सम्मान की भावना रखता रहा है।[21] श्री गोकुलेश को गुरु स्वीकारता हुआ पद—पंकजों में श्रद्धा के साथ अपना सिर झुकाता है। गंगा जल में स्नान कर गायत्री मंत्र का मनन करते हुए गोपीचन्दन भाल पर अंकित कर पूर्णभक्त के रूप में अपने आपको व्यक्त करता है। श्रीमद्भगवतगीता के तात्त्विक विवेचन से भी कवि पूर्ण परिचित है। गीता के ज्ञान के महत्व के प्रति अपनी प्रीति अभिव्यक्त करता है। अपने आराध्य को अनेक रूपों में देखते हुए उसके विभिन्न नामों को इस प्रकार

रसरासि कबहू गवावत नजीक सके
कबहू नचावत के ध्यान वितरत है।
कबहू भुजंग हुव कै सीस पै चढाब धार
जमुना को जल इन्द्र जाल सौं करत है॥ र० क० म०

20 पंकज प्रफुल्ल सोई सुंदर मुखारविंद
चंचल ये मीन सोई अंखिया उमगनी।
सोहत सिवार सो वो बासर भ्रंग भार महा
करत कटांछि वक बीची भ्रुव भगिनी।
पंत्रवारे बसन लसत सोई पीन कुच
रसरासि प्रभु घनश्याम अंग संगनी।
भूमि हरियारी सोई ओढि रहि सारी
देखो सांवरी सखी है किधौं जमुना तरंगनी॥ र० क० म०

21 गाय तरे गोब्यंद गरुड़गामी गोकुलेश
गुरुपद पंकज सो सीसहि छवायक।

प्रकट करता है। [22] रघुनन्दन श्रीराम को रमानाथ रगनाथ, वृजनाथ, वशीधर, वेत्र घर, चक्रघर, नरदेव हरदव, बलदव विश्वम्भर देव आदि को देखता है। उसका आराध्य विभिन्न नामो स अभिव्यजित होने पर भी रसिक शिरोमणि ही रहता है।

वह अपने आराध्य को निरूप म देखने पर भी सतुष्ट नही है। कवि सम्प्रदाय विशेष सम्बद्ध होने पर भी अनुबद्धता का प्रतिपालन नही करना चाहता है। वह अपने आपको वष्णव या शैव ही नही कहलाना चाहता है। वह तो पूर्णत मुक्त है बघनो से परे है अत जगद् कल्याणी मा शक्ति की आराधना स कसे विलग हो सकता है [23] कवि ने अपने फुटकर पदो मे शक्ति के विविध रूपो का अवलोकन किया है। वह सौम्य से लेकर रौद्र रूपो तक देवी के दर्शन कर सका है। बालरूप से लेकर अन्नपूर्णा के वृद्ध रूप तक को देख चुका था। कवि रसरासि ने शक्ति के लिए ब्राह्मी, वराही व्याघ्री वामनी कालिका कल्याणी आनन्दी, अन्नपूर्णा, जालपा श्यामा, रमा राधा आदि शब्दो का प्रयोग किया है।

न्हायल सरीर को सुरराजू के नीर
निज गायत्री को जापि गोपीचन्दन लगायल।
लायल रे गल्न की श्री गोमती सिलासो
प्रीति हिये रसरासि गीता ग्यान सरसायल।
छायल रे गोरज चराय लरे गायन की
श्री गुपिन्दगीत को तू सुनिल कि गायल ।। र० क० शा०

22 रमानाथ रामनाथ रगनाथ जगन्नाथ
जदुकुलनाथ वृजनाथ बनवारी है।
बशीधर वेत्रधर वाहन विचित्र धर
गदाधर चक्रधर गोबधन धारी है।
नरदेव हरदव बलदेव वासुदव
विश्वम्भरदेव मधुसूदन मुरारी है।
मोहनमुकुद नन्दनन्दवृजचन्द श्री गुव्यद
रसराशि राधारसिक बिहारी है।
—फुटकर कवित्त रसरासि।

23 ब्राह्मी वराही व्याघ्री वामनी विराटी बौद्धी
वाक्वानी बाला वृद्धा विंध्याचल वासनी।
कालिका कराली कृष्णा कोपनी कृपालवती
कोलनी कपालनी कल्याणी कमलासनी।

कवि ने अपने आराध्य की प्रियतमा को अनेक प्रकारों के साथ देखा है। नरदेव नारि के प्रभाव ■ अपूर्ण है तब भला कवि का आराध्य विविध रूपों में पाथ वध का अनुभव कैसे कर सकता था ? अत कवि ने अपने नारायण के साथ शक्ति को अनेक रूपों में परिलक्षित किया है।

अत हम यह कह सकते हैं कि रसरासि रामानुज सम्प्रदाय से प्रतिबद्ध होते हुए भी रूढ़ नहीं था। वह अनेकेश्वरवाद व एकेश्वरवाद की प्रमुखता को स्वीकार करता था।

आश्रय दाता—

साहित्य का राज्याश्रय से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। संस्कृत वाङ्मय के विकास का मूल कारण ही राज्याश्रय ही रहा है। संस्कृत साहित्य में जिस अतुलित वैभव के दर्शन होते हैं-वह जन जीवन की सम्पन्नता एवं समृद्धि का द्योतक है। इस समृद्धि के दिग्दर्शन का मूल राज्याश्रय ही है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल और रीतिकाल के अधिकांश कवि राज्याश्रित थे। राज्य से समृद्धि एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करते हुए इन कवियों ने अपने सृजन में अपरिमित सुख शांति एवं वैभव का साम्राज्य समर्पित किया है।

साहित्यकार जन जीवन का अध्येता होता है। वह अपने समसामयिक युग का द्रष्टा कहलाता है। कवि सभी तरह से समृद्ध होते हुए भी आर्थिक दृष्टि से दीन होता है। उसे अपना समस्त जीवन आर्थिक विषमताओं के मध्य व्यतीत करना होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि कवि जन्म से ही निर्धन अथवा अकमण्य होता है अपितु वह अपनी विशाल उदारता के कारण इन परिस्थितियों को सतत आमन्त्रित करता है। अत कवियों पर परिवार भार बन जाता है और वह उपेक्षित भाव ■ परिवार को देखता हुआ अपनेआप में हीन भावना को जन्म दे बैठता है। इसी कारण अनेक भावुकहृदय संघर्षों के मध्य ही टूट जाते हैं कुछ विरले ही जीवन में सफल हो पाते हैं। कवि के लिए आर्थिक परिस्थितियों से मुक्त होने के लिए एक ही मार्ग था-वह था राज्याश्रय। प्राचीन काल में शासक गण भी कविजन गुण ग्राही थे। अपनी सभा में विद्वानों एवं साहित्य विशारदों को एकत्रित करने की स्पर्धा थी। शासक-गण विद्वद समुदाय के कारण अपने गौरव को सरक्षित समझते थे। राज्य सभा में कविगण नित नई रचनायें सुनाकर राज्य सभा एवं जन समुदाय को आल्हादित

आनन्दी अमदी अन्नपूर्णा अपर्णा अम्बा
ईश्वरी अनादि माया आदि अनुशासनी।
आलपा सालपा सिला स्वाहा स्वधा
श्यामा रमा राधा रसरासि ज ज देवी दुखनासनी ॥ छं० ८० ॥

करते थे तथा अर्थ एव यश की उपलब्धि किया करते थे। आचार्य मम्मट ने भी लिखा है —

"काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

कालिदासादि सस्कृत साहित्यकारो को राज्याश्रय मिला। इसी प्रकार चदवरदाई आदि साहित्यकारो को अपने शासको का प्रश्रय मिला। रीतिकाल मे केशव बिहारी, मतिराम चिन्तामणि, भूषण, पदमाकर आदि सभी कवियो ने राज्याश्रय में रहकर सृजन किया। रीतिकालीन साहित्य-सृजन की मुख्य प्रेरणा का श्रेय शासकों को ही है।[24]

रसरासि जयपुर नरेश सवाई श्री प्रतापसिंह के आश्रित थे। रीतिकालीन कवि प्राय राज्याश्रित रह कर ही सृजन म सहायक सिद्ध हुए। जयपुर का राजघराना साहित्य सेवियो के हित सदा सकल्पशील रहा है।

जयपुर से पूर्व इस राज्य की राजधानी यहाँ से ६ मील उत्तर की ओर आमेर थी। आमेर के राजा कछवाहा वशज कहलात रह हैं। आमेर की सर्वप्रथम स्थापना करने वाले श्री ईशदेवजी कहलाते हैं-ऐसी मान्यता है। इस वश परम्परा मे श्रीमानसिंह (१५६६-१६१४) ऐतिहासिक व्यक्ति हुए हैं इनके शौर्य एव साहस के सदर्भ में स्वय बिहारी ने लिखा है।[25]

मानसिंह वीर ही नही अपितु महान उदार एव कविगणगुणग्राही थे। एक कवीश्वर ने अपनी परिस्थितियो एव आर्थिक विषमताओ से दुखी होकर राजा

---

24 भली आजु कलि करत हो छत्रसाल महाराज।
जह भगवत गीता पढी तह कवि पढत नेवाज॥
हि सा इ पृ २५१

25 महाराज मानसिंह पूरब पठान मारे
शोणित की सरिता अजो न सिमटत है।
सुकवि बिहारी अजों उठत कबध कूदि
अजो लग रणतें रणाई ना मिटत है।
अजो लो धहेलें पेशावनतें चौंक चौंक
सची मघवा की छतिया तें लिपटत हैं।
अजो लो ओढ है कपाली आली आली खालें
अजो लग काली मुख लाली ना छूटत हैं।

मानसिंह के नाम एक हुण्डी कवित्त रूप में लिखकर भेजदी[26]

राजा मानसिंह तो रसिक-जनो के प्रति श्रद्धानत ही थे। उन्होंने शीघ्र ही उस हुण्डी का भुगतान कर दिया किन्तु साथ ही एक दोहा लिख कर भिजवा दिया जो उनके उदार हृदय का प्रतीक है।[27]

इसी वंश परम्परा में आगे चलकर जयपुर की राजगद्दी पर श्री जयसिंह आसीन हुए। सवाई जयसिंह अत्यन्त चतुर, वीर एवं कविप्रेमी थे। डा० राजकुमारी कौल ने 'राजस्थान के राजघरानों की हिन्दी सेवा' नामक कृति में जयसिंह के संदर्भ में इस प्रकार उल्लेख किया है।[28]

अपने पूर्वजों की साहित्य प्रेरणा की परम्परा को महाराज जयसिंह ने ही स्थायित्व प्रदान किया। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बिहारीलाल महाराज जयसिंह के आश्रित कवि थे। सतसई उन्ही महाराज की काव्यप्रियता के उज्ज्वल प्रमाण है। यद्यपि एक अपवाद यह भी प्रचलित है कि सतसई की वास्तविक रचना बिहारी ने नही वरन उनकी पत्नी ने की थी। परन्तु इसमे कोई तथ्य मालूम नही होता। जयसिंह का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य की एक महानतम कृति की रचना के लिए उत्तरदायी हैं और उनकी यह सेवा स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

बिहारी एवं जयसिंह के संदर्भ में एक किंवदन्ती भी प्रचलित है। कहा जाता है कि मिर्जा जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने लीन रहते थे कि राज्य के कार्य देखने के लिए भी राज्य सभा में नही आते थे। सभी सामन्त एवं सरदार अत्यन्त परेशान थे किन्तु किसी का भी साहस नही था कि राजा के निकट जाकर

---

26 सिद्ध श्री मानसिंह कीरत विशुद्धमई
जो लौं करो राज जोलों भूमि लिखेनी है।
रावरी कुशल हम सिसुन समेत चाहें
घरी घरी पल पल यहां हू सुचैनो है।
हुण्डी एक तुम पर कीनी हैं हजार की सो
कवित्त की रासो मान साह जोग देनी है।
पहुंचे परिमान मानवंश के सपूत
मान रोक गिन देनी जस लिख देनी है।

27 इत हम महाराज, उत आप कविराज।
हुण्डी लिखी हजार की, नेक न आई लाज॥

28 राजस्थान के राजघरानों की हिन्दी सेवा—पृष्ठ स १४८

कुछ कह सके। सरदारो की सलाह से बिहारी ने एक दोहा लिखकर महाराज के पास किसी भी प्रकार पहुचा दिया। वह दोहा इस प्रकार है —

नही पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सो बध्यो, आगे कौन हवाल॥

कहते हैं कि इस दोहे से मिर्जा जयसिंह अत्यन्त प्रभावित हुए और तभी से कवि बिहारी का अत्यधिक सम्मान करने लगे। स्वय मिर्जा राजा जयसिंह ने कवि को इस प्रकार अन्य दोहे बनाने की आज्ञा दी और बिहारी ने बिहारी सतसई का निर्माण किया। जयपुर के राजघराने की प्रेरणा पाकर कवि ने हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि म महान योगदान दिया-जिसमे कछवाहा वश चिर स्मरणीय रहेगा।

इस वशानुक्रम मे सवाई जयसिंह द्वितीय सिंहासनारूढ हुए। वतमान जयपुर नगर के निर्माता यही थे। सवाई जयसिंह स्वय सस्कृत हिन्दी एव फारसी के विद्वान थ। इन्होने सस्कृत के प्रचार प्रसार एव विकास के लिए अ यधिक काय किया। इनके राज्य मे अनेक सस्कृत के विद्वान सृजन रत रह। इनके पश्चात ईश्वरसिंह राजा बने। श्री ईश्वरसिंह क पश्चात् इनके भाई श्री माधवसिंह ने शासन भार सभाला। माधवसिंह की मृत्यु के उपरा त पृथ्वीसिंह राज्य गददी पर विराजमान हुए। इनकी अल्पायु म ही मृत्यु हो जाने के कारण जयपुर की राजगद्दी पर इनके छोटे भाई राजा प्रतापसिंह आसीन हुए।

इतिहासविद् राजा प्रतापसिंह का शासत काल सन १७६४ से १८०३ तक मानते हैं। राजा प्रतापसिंह जयपुर राजघराने के अत्यन्त लोकप्रिय महान व्यक्तित्व के धनी एव हिन्दी साहित्य सेवी के रूप में विख्यात हुए हैं। यह राजा वीर एव श्रृगार को एक साथ रखने वाला व्यक्तित्व था। मराठा के साथ युद्ध म विजयघोष करता हुआ अपने शौय का परिचय देने म सक्षम हुआ है दूसरी आर रसिको की सभा म बठकर रसपान करने वाले रसिको म भी अग्रणी रहा है। इन दोनो पक्षो के अतिरिक्त भगवदभक्ति मे रत रह कर इन्होने अपने आराध्य की जो प्रशस्त सेवा की है वह उल्लेखनीय है।

इनके शौय के सदभ म नाथूराम कविने अपनी लेखिनी से जो वणन किया है-इससे स्वत सिद्ध है कि राजा प्रताप अपने नाम को सायक करते थे।[29] डा० राजकुमारी कौल ने लिखा है—

---

29 इतें हिंदनाथ श्री प्रताप कर थान भाले
उते माथ साथ मिले आसमान मीर से।

"महाराज प्रतापसिंह जी (सन् 1764 ई०-1803) का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य के लिए बड़ा उपयोगी और महत्वपूर्ण है। वह केवल आश्रयदाता ही नहीं वरन् स्वयं उच्च कोटि के कवि थे और कविता में ब्रजनिधि उपनाम से कविता करते थे।"

राजा प्रतापसिंह का साहित्यिक दृष्टि कोण से ब्रजनिधि उपनाम था। राजा कृष्ण भक्ति शाखा के अनुगामी थे। इनके आराध्य श्री गोविन्ददेव थे। राजा प्रताप की साहित्यिक प्रतिभा उच्चकोटि की थी। हिन्दी साहित्य में इन्होंने अनेक रचनायें देकर एक नई शृंखला को जोड़ने का सफल यत्न किया था। इनकी निम्नांकित रचनायें उपलब्ध होती हैं —

(1) प्रीतिलता।
(2) सनेह संग्राम।
(3) फाग रंग।
(4) प्रेम प्रकाश।
(5) मुरली बिहार।
(6) रमक-जमक बतीसी।
(7) सुहाग रैनि।
(8) रंग चौपड़।
(9) प्रीति पचीसी।
(10) प्रेम पंथ।
(11) बृज शृंगार।
(12) श्री बृजनिधि मुक्तावली।
(13) बृजनिधि-पद-संग्रह।
(14) हरिपद-संग्रह।
(15) रेखता संग्रह।
(16) रास का रेखता।

महा घोर बीर जुद्ध ऊँची करने न लागे,
कूँचि करने न लागे कायर अधीर से।
कटिगे कटीले जेते रावत हठीले रुके
सटिगे सदल के पटेल मुख पीर से।
मारे खड्गधारे इन सुभटन के ठट्ट परे
मूड मरहट्टन के खेत मे मतीर से॥

(17) विरह सलिता।

(18) स्नेह बहार।

(19) दुख हरण वेलि ग्रादि।

श्री वृजनिधि समथ साहित्यकार थे। इनकी प्रतिभा बहुमुखी प्रवृत्त होती हुई रस सागर मे निमज्जित होती रही है। कवि की राधा विविध भाव मुद्राओ के साथ रसिको के समक्ष प्रकट होती है। कवि हृदय राधा का अनन्य भक्त है उसकी अन्तश्चेतना स्वत कह उठती है —

भोर ही उठि सुमिरिए वृषभान की किशोरी।
बाधा हर राधा सुख-मगल निधि गौरी।
वठि उठि सुभग सेज नागरि अलवेली।
दम्पति मुख छवि निहारि हरषहि सहेली।
बन विहार करन चलें दीय गर बाही।
यह स्वरूप सदा बसो बृजनिधि हिय माही ।।

वृषभानु किशोरी की कुज केलि का चित्र अति रमणीय रूप से प्रस्तुत किया है —

मेरी स्वामिनि सुख-कारिनी।
राजति नवल निकु ज भवन मे प्रीतम सग बिहारिनि।
उठी उनीदी सुभग सेज पर श्याम-भुजा उर धारिनी।
सो छवि सरस बसी ब्रजनिधि' उर कृपा कटाक्ष निहारिनि ।।

राधा के अनुपम सौन्दर्य का चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है —

राधे सुदरता की सीवा।
मन मोहन को हू मन मोह्यो निरखि करत अध ग्रीवा।
चितवनि चलनि हसनि प्यारी की देखे बिन क्यो जीवा।
ब्रजनिधि की ग्रभिलाष निरतर रूप सुधा रस पीवा ।।

नायिका मिथ्यावादी नायक की छलना पकड लेती है और फिर उसे किस प्रकार उपालम्भ देती है —

प्यारे तुम्हारी चाल बडी ग्रजब ग्रनूठी
हमसे बनाग्रो वात बस झूठी झूठी।
चाकरी तुम्हारी यह तुम्ह ही बने कहते,
हो कुछ न चलती हो चाल ग्रपूठी।

हरचद वात वनी कैसे मैं एक न मानूँ,
निज दस्त मैं सभानो, यह किसको य गूठी।
इस यार यहाँ रहे थे सा साँच बनायो
लूटी थी गूरी किमरी पिया भर भर मूठी।
मुनकर दिया जवाब विहँसि व्रजनिधि प्यारे।
मुभको तो प्यारी एक तू ही बस व्रज रूठी॥

कवि व्रजनिधि व्रजभाषा के ही श्रेष्ठ कवि नहीं थे अपितु उर्दू के भी अच्छे जानकार थे। इश्क की मुश्किलों का जिक्र करते हुए कहते हैं—

इश्क ग्राहि था फन करें गाहन दाहन प्रान।
आपन म मामूल का मोम सुपारी पान।

व्रजनिधि की समस्त कृतियाँ अपने आराध्य की प्रेम लीलाओं से आपूरित हैं। विविध मनोभावों का समायोजन मरयधिक कुशलता के साथ किया गया है। कृतियों में सहज भावना का तीव्र गति के दर्शन सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। कवि का संस्कृत, व्रजभाषा एवं उर्दू तीनों ही भाषाओं पर समान अधिकार था। इसके अतिरिक्त राजस्थानी एवं पजाबी शब्दों की भी बहुतायत है।

श्री प्रतापसिंह व्रजनिधि स्वय तो कवि थे ही किन्तु अपनी सभा में अनेक रससिद्ध कवीश्वरों को एकत्रित कर रखा था। डा० राजकुमारी कौल ने इस सदर्भ मे लिखा है—

'व्रजनिधि स्वय ही कवि नही थे, वह शान से गुजारी और कवियो का आदर करने वाले राजा थे। इनके आत्मोहन से वद्यक का ग्रन्थ प्रताप सागर' ज्योतिष का 'प्रताप मार्तण्ड' धर्मशास्त्र का प्रतापार्क आदि कई ग्रन्थ बने। सगीत सम्बन्धी राधा गोविन्द सगीत सार 'राम रत्नाकर, 'स्वर सागर' एवं व्रज प्रकाश की रचना भी इन्हीं के समय में हुई। फारसी के दीवाने हाफिज और आइने-अकबरी का हिन्दी में अनुवाद भी इनकी आज्ञा से हुआ। इसके अतिरिक्त अमृतराम कृत 'अमृत प्रकाश पद-ग्रन्थ बख्तेश कवि का टकसाली पदों का सग्रह, एवं रावधामूरामजी एवं महाकवि गणपतिजी भारती गुसाईं रसपुञ्जजी, रसराजजी, चतुर शिरोमणि जी आदि अनेक कवियों के पद सग्रह बने। महाराज ने कई हजारो का भी सग्रह करवाया था जिनमें प्रताप वीर हजारा' और प्रताप सिंगार हजारा प्रसिद्ध हैं।

जयपुर राजघराने में अनेक कवियों को प्रश्रय मिला। कुछ प्रमुख कवि इस प्रकार हैं अमृतराय, कुलपति मिश्र, चतुरशिरोमणि, जगदीश पद्माकर, बखतज,

बिहारीलाल, मथुराजी, रसराजजी, रसपुजजी गुसाई, श्री कृष्ण, शम्भुराम, घासीराम रसरासि, पुंडरीक भट्टपरिवार, गोस्वामी परिवार, व्यास बालावक्स आदि।

रसरासि श्री प्रतापसिंह के राज्याश्रित थे। अपनी कृतियो में स्थान-स्थान पर श्री प्रतापसिंह का उल्लेख किया है। कवि ने प्रत्येक रचना का सृजन राजा की आज्ञा से ही किया है। वंश प्रशंसा में राजा प्रताप के वंश का वर्णन करते हुए विशद् विवेचन प्रस्तुत किया है।

रसरासि ने रसिक पचीसी के अन्त में इस प्रकार उल्लेख किया है—

इति श्री मन्महाराजाधिराज राज राजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंहजी देवाज्ञप्त रसरासि विरचित रसिक पचीसी पूर्णतामगात्।[30]

कवि ने अपनी कृति 'वंश प्रशंसा' में जयपुर नरेश के संदर्भ में बहुत कुछ लिखा है। जयपुर के निर्माता सवाई जयसिंह युद्धवीर एवं धीर थे—कवि की धारणा है कि उनकी बड़ाई करना शब्दों से परे है। उनके वंशज माधवसिंह भी ऐतिहासिक व्यक्ति रहे हैं—उनके पुत्र श्री प्रतापसिंह थे।

समर धीरजयसाह भये नर नार सवाई।
जिन कीन्हे बहु जग्य कहाँ कहि करौं बडाई।।
तैसे ही सब भांति नृपति माधव मन मोह्यो।
रामचन्द्र की पाट गट सब ही विधि सोह्यो।।
अब हस वंश अवतंस नृप श्री प्रताप रवि जगमगत,
डगमगत मगमगत अद्भुत मनिज जन कमल सरस पगत।।

श्री प्रतापसिंह अपने वंश में कुलभूषण के समान थे। उनका प्रताप सूर्य की भांति जगमगाता था। श्री प्रताप के लिए कवि रसरासि की मान्यता है कि वे कोमल एवं कठोर दोनों ही प्रकृति के थे। शत्रुओं के हृदय उनके नाम से प्रकम्पित हो उठते थे और विद्वज्जन उनके साथ बैठकर रसास्वादन करते थे। श्री प्रतापसिंह का कोप मध्यान्ह के दिनकर के समान प्रचण्ड था। सौम्य की दृष्टि को देखते हुए कवि ने चन्द्रमा से तुलना की है। अर्जुन के तुल्य पराक्रमी प्रताप सदैव हरिभक्ति में रत रहता था।

श्री माधो को नंद चंद सो आनंद कारी।
रिपुवंश मध्यान्ह भानु सो अति भारी।

---

[30] राजस्थान के राजघराना की हिन्दी सेवा—पृ ११६

रूपवत रिझवार मार सौं मन को मोहत ।
अर्जुन सौरन धीर वीरता मुख पर सोहत ।
चित चौज मोज को भोज सो विक्रम सा विक्रम-करन ।
हरि भक्त भूप प्रथिराज मौ नृप प्रताप असरन-सरन ॥

श्री प्रतापसिंह का समकालीन एवं राज्याश्रित कवि रसरासि अपने आश्रयदाता के प्रति गहरी निष्ठा रखता था । यश प्रशंसा में श्री प्रतापसिंह के सम्बन्ध में यशोगान किया है । यद्यपि यह सत्य है कि राजा के व्यक्तित्व को उभारने में अतिशयता द्योतित होती है । कामदेव के तुल्य सौंदर्य, रवि के सदृश ओजस्वी, अर्जुन के समान वीर एवं रणविशारद विक्रम के तुल्य पराक्रमी भोज के समान उदारचेता एवं रसिक प्रिय तथा पृथ्वीराज की तरह अशरणों का शरणदाता था । यद्यपि यह सत्य है कि राजा प्रताप एक श्रेष्ठ कवि उदारचेता एवं शूरवीर व्यक्तित्व था किन्तु कवि ने निज आश्रयदाता का गौरवपूर्ण वर्णन करते समय जो कुछ लिखा है—उसमें अतिशयता अभिव्यंजित होती है ।

श्री प्रतापसिंह 'ब्रजनिधि' उपनाम से काव्य सर्जन किया करते थे—इस तथ्य उद्घाटन रसरासि ने भी अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है—

ब्रजनिधि की धरि छाप आप
प्रभु सुजस बनावत ।
लली लाल गुन कलित ललित
अतुलित छवि पावत ॥

राजा प्रतापसिंह की साहित्यिक विशेषता यह रही कि उन्होंने अपने सृजन का आधार श्री कृष्ण को स्वीकारा । नंदनंदन एवं राधा के रासमय जीवन को रस भरे चित्र कुशलता के साथ अंकित करने में सफल हुए ।

कवि रसरासि का कहना है कि महाराजा केवल साहित्यकार ही नहीं थे अपितु संगीत के भी अच्छे जानकार थे । संगीत शास्त्र का इन्हें शास्त्रीय ज्ञान था ।

सप्तक रूप विभाग भेद राग के जानत ।
अलंकार के अंग व्यंग रसको पहिचानत ।

काव्य के तात्विक विवेचन से भी पूर्ण परिचित थे । अपने साहित्य में व्यंजना को प्रमुखतया महत्व देते थे । कूरमवंशी सवाई श्री प्रतापसिंह का यश सर्वत्र व्याप्त था । वे सभी के साथ समान व्यवहार करते थे । कवि का कहना है कि इनके शासन काल में प्रजा सुख शान्ति से जीवन यापन करती थी—

कूरम सवाई श्री प्रतापसिंह भूप तेरी
सुनि के दुहाई प्रजा पाई सुचताई है ।
भाइन को भाई सेवकन को सुहाई
दुष्ट दापिन के हिये लोन राई सी लगाई है ।
तेज की तताई ता के संग सरसाई त्योंही
जस की जुहाई रसरासि अधिकाई है ।
राजनीति छाई चोर चुगल नसक खाई
ऐसी वकुराई तोहि दई रघुराई ह ।।

राजा प्रतापसिंह से कवि रसरासि के घनिष्ठ सम्बन्ध रहे होंगे—तभी तो राजा उन्हें सृजन के लिए प्रेरणा देता रहा है ।

कवि ने ससार सार वचनिका म इस प्रकार उल्लेख किया है—

'सो तो ससारी जीवन सों बने नहीं या त उनकी सद्गति क निमित्त श्री मन्महाराधिराज राजराजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंहजी शुभ चिंतक रसरासि को आज्ञाकरी काल ज्ञान के लक्षलक्षन की वचनिका करी यह सबको सुखदायक है ।'

"श्री मन्महाराजा श्री राजराजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंह जू की आग्या से यह ससार सार वचनिका प्रगट करि के श्री हुरजू के निजर करी सवत अगरह स इक्यावन । फागुन सुदि तीजि सूयवार को मुकाम सवाई जै नगर ।'

इन सभी तथ्यो स यह निष्कष निकलता है कि कवि रामनारायण रसरासि सवाई प्रतापसिंह के राज्याश्रित कवि थे । कवि और प्रतापसिंह के मधुर सम्ब ध थे । राजा की आज्ञा प्राप्त कर कवि सजन किया करता था । व्रजनिधि की प्रेरणा प्राप्त कर कवि ने साहित्य निर्माण किया । कवि के वाङ्मय का पूण प्रभाव रसरासि की रचनाओ पर पूणत है किन्तु आश्चय यह है कि स्वय व्रजनिधि न अपनी रचनाओ म कहीं भी इनका उल्लेख नही किया ।

डा॰ राजकुमारी कौल ने राजस्थान के राजघरानो की हिन्दी सेवा नामक शोध प्रबन्ध म जयपुर नरेश राज्याश्रित कवियो म कहीं भी रसरासि का उल्लेख नहीं किया । न अन्यत्र ही कहीं इसका उल्लेख हम मिल पाता है । इसका प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि कवि प्रचार प्रसार से विलग रह कर मौन सजन में रत रहा हो अन्यथा किसी ईर्ष्याजनक प्रवृत्ति का शिकार हुआ हो अथवा किसी नाम या उपनाम से व्यवहृत हुआ हो ।

मय निर्धारण—

कवि रसरासि के निश्चित समय के सदर्भ मे हम उनकी कृतियो के माध्यम ही विदित होता है—इसके अतिरिक्त साक्ष्य उपलब्ध नही होते हैं। यह तो नश्चित ही है कि कवि रसरासि का अस्तित्व जयपुर नरेश सवाई श्री प्रतापसिंह समय म था। इतिहासकारो ने राजा प्रताप का समय सन् १७६४ से १८०३ ाना है।

रसरासि किस सवत् अथवा किस तिथि को उत्पन्न हुए ? इस सदर्भ मे कुछ ही कहा जा सकता है किन्तु यह सत्य है कि रस रासि कवि राजा प्रताप के राज्याश्रित ही नही अपितु समवयस्क भी था।[31]

(१) उत्सव मालिका म जिस तिथि का सकेत किया है वह सन् १७८१ के संनिकट है। इसी तिथि को कवि ने उत्सव मालिका की रचना पूरी की। यश प्रशसा मे कवि ने यत्र तत्र सन् सवत् का उल्लेख किया है-उससे यह विदित होता है कि रसरासि का समय १७५० से १८०० तक रहा होगा।

सन् १७८६ म सिंधिया ने जयपुर की ओर धावा करने का इरादा किया था—राजा प्रताप ने उस समय अपरिमित शौर्य का वातावरण बना दिया था—जिससे हमारा कवि पूर्णत परिचित था।[32]

---

31 सवत ससि गिरि दृग सुखि भादो सुदि सुख धाम।
सोमवार तिथ अष्टमी गू थी उत्सव दाम ॥
यह माला मन मोहनी काटत भव दुख पासि।
महा प्रेम रस सों भरी करि रसिक रसरासि ॥
—उत्सव मालिका

32 घन सुदि द्वज को सवाई श्री प्रताप भूप
चाप चोज मोजन के गर बरसाये हैं।
तखत सवार ह्व के फुहारे छूटत जहाँ
हौद पर बाढे रसरासि छवि छाये हैं।
एक ओर नटी नाचे छटा की छटी सी
अ क तीनो ओर सेवक सिगारे मन भाये हैं।
जल म सभा की प्रति बिम्ब झलकत
मनो भूतल के देवी देखिन को आये हैं ॥
—यश प्रसशा। ८

रसरासि ने यश प्रसशा का निर्माण कर राजा प्रतापसिंह को स० १८२० में फागुन शुक्ल ११ को भेंट की थी। यह पुस्तक अपने काय गुरू भट्ट जगन्नाथ को दिखाई थी उसके पश्चात् राजा प्रताप को समर्पित की थी। इससे यह तो निश्चित हो जाता है कि कवि रसरासि सवन १ ५० तक जीवित थे।[33]

कवि रसरासि के समक्ष सवाई प्रतापसिंह जी की माता (माजी) का देहावसान हो गया था। इस सदभ मे कवि ने उल्लेख किया है-अगहन मास में द्वादसी के दिन प्रात काल माजी ने अपने पार्थिव देह का परित्याग कर अपने पति श्री माधवसिंह के सन्निकट स्थान प्राप्त कर लिया था।

कवि रसरासि ने राजा प्रतापसिंह के जीवन काल की समस्त घटनाओं का वर्णन किया है।

स० १८५० के पश्चात किसी तिथि या सवत् का उल्लेख नही मिलता है।

कवि सवाई प्रतापसिंह के परवर्ती राजाओ के सदभ मे किसी भी प्रकार का उल्लेख नही किया है।

कवि ने राजा प्रताप की माता के देहावसान के सदभ में बहुत कुछ लिखा है।

कवि ने राजा प्रताप के देहावसान का कही भी उल्लेख नही किया है।[34]

---

33 सवत अठारह स अधिक पचासवें की
फागुन सुक्ल एकादसी छवि छाई है।
ताही समैं पुडरीक भट्ट जगन्नाथ जू को
करि क प्रणाम पोथी मस्तक चढाई है।
रस रासि भागवत वित्रन विचित्रन मे
हरि के चरित्र मे लगनि लगाई है।
माधव-तनय महाजान श्री प्रताप भूप
कानन की सुनी कथा आखिन दिखाई है।
—यश प्रसशा—८

34 अगहन मास अपनायो श्याम श्री मुख सों
ताहू माग हरि ही को वासर सुहायो है।
निराहार वृत करि धरि हरि ध्यान हिय
द्वादसी के भोर भूल देह बिसरायो है।
भानु दक्खिनानन के जाकी दस अ श रहे
सोई दस गात इरय येन में बनायो है।

इन सभी तथ्यों से यह निश्चित हो जाता है कि कवि रस रासि का देहावसान राजा प्रतापसिंह से पूर्व ही होगया था। अतः कवि का समय सन् १७५० से १८०० के मध्य रहा है।

पाण्डित्य—

रीति कालीन युग में प्रायः सभी कवि संस्कृत एवं अन्यान्य भाषाओं के ज्ञाता एवं विविध शास्त्रों के ममज्ञ होते थे। राजा प्रतापसिंह स्वयं अनेक शास्त्रों के ज्ञाता एवं बहु भाषा विद् थे। कवि रसरासि भी संस्कृत, ब्रजभाषा, फारसी, राजस्थानी एवं पंजाबी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। ज्योतिष, तन्त्रशास्त्र, संगीत एवं काव्य विधाओं का ज्ञान कवि को था। कवि रस रासि प्रतिभाशाली एवं कलाविद् थे।

रस रासि ने पंजाबी शब्दों का जिस खूबी से प्रयोग किया है—इसकी झलक हमें इस पद में प्राप्त होती है—

साडे ड तोसा यलडा मिजमान।
मिझमानी की करां बारा फेरा,
प्राण जीव जिवावा दरसन पा वायें हीं सुख गुजरात।
मनमोहन रसरासि दी प्यारी सग दी आन,
हसी सब वर्से नाले नाले करा गुलामी ग्यान।
सहयणी मे तुरुनू की की प्रथा
साडे सजणनू भाए मिला की उसी दरसन नू रुपा।
बेक दरो दीनाल मुहबत रैंणादि हाडे घया
तो भी उस रसरासि कु भर परवारि फेरि जीनया॥

इस प्रकार अनेक पदों में पंजाबी शब्दों का व्यापक प्रयोग मिलता है।

जैसे—

(i) मेडा दिल वे कदरो दे दोस्त।
(ii) आपडे या साडी दरदी बे दरदी।

राजस्थानी भाषा के संदर्भ में भी कवि को पूर्ण ज्ञान था। कवि ने राजस्थानी भाषा में कुछ पद लिखे हैं।

पाय उत्तरायन को वासना शरीर तजि
माजी प्रभु माधव को निज पद पायो है।

—यश प्रसंशा—१२

जैसे—

काना जी म्हानें कुंजा में ले चालो ।
म्हे तो राज रै काध चढि चालस्या पग म छै छालो ।
रिमझिम रिमझिम मेह वरस मारग ■ ग्रालो ।
भीजेली म्हारी सुरग चुनडी दीजे राज दुसालो ।
× × ×
म्हारै लारैं लाग्या लाग्या काईं ग्रावैं छो ।
देखैली म्हारी सासू नणद घर मे राडि मचावो छो ।

राजस्थानी भाषा म दुढारी बोली के शब्दो का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है । कवि रस रासि जयपुर म रहते थे और जयपुर की बोली दुढारी बोली रही है । इस बोली मे भी अनेक व्यक्तियो द्वारा सृजन किया गया है ।

कवि रस रासि का साहित्य राजस्थानी अथवा पजाबी या बृजभाषा तक ही सीमित नही था । फारसी शब्दो का प्रयोग भी बहुत हुआ है । अत हम कह सकते हैं कि रस रासि फारसी जबान के भी अच्छे ज्ञाता थ ।

तेरे मिलन के चाव से प्यारा हुवा है प्यारी ।
क्या खूब खुली है गोसू ही सजीलि सारी ।
चश्मा मे सुरमा देंन की कसक्न मे कजाकारी ।
भोहो के कसने हसूनें मे करता है जुलम जारी ।
बालो के भार लक की लचकन प वारी वारी ।
चलि चलि मचलि नै मडिने को तुझ सो भी न्याज न्यारी ।
उस्की अदा कुँ देखि के दिल हो गावे करारी ।
रसरासि बसी वाले सो तू करि जरूर यारी ।

फारसी शब्दो का प्रयोग रसरासि की प्रत्येक कृति मे हमे उपलब्ध होता है । रसरासि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थ । शब्द भडार प्रचुर मात्रा म था ।

सगीत शास्त्र के ज्ञाता—

रसरासि केवल काव्य निर्माण की सीमा तक ही प्रतिबद्ध नहीं थे अपितु सगीत शास्त्र के भी पडित थे । बृजनिधि की सभा मे अनेक सगीत शास्त्री अपनी स्वर साधना का शास्त्रीय ज्ञान प्रकट करते थे । स्वय रसरासि ने सगीत शास्त्र की कृति मे इस प्रकार उल्लेख किया हैं—

मध्यम स्वर कुरज को जानियें ।
निषाद स्वर हस्ती को जानियें ।

पचम स्वर कोकिल को जानियैं ।
धेवत सुर दादुर को जानियैं ।

राजा प्रतापसिंह की आज्ञा से कवि रसरासि ने सगीत शास्त्र की शास्त्रीय कृति की रचना की थी। स्वर परिभाषा, स्वर भेद राग रागिनी का शास्त्रीय ज्ञान आदि विषयो पर कवि ने कुशलता के साथ लिखा है। अत यह सिद्ध हो जाता है कि कवि का सगीत शास्त्रीय ज्ञान पूणता के साथ था।

कवि रस रासि छद शास्त्र का भी पडित रहा होगा। अपनी कृतियो में हिंदी के विविध छन्दो का निर्वाह सफलता के साथ किया है।

तत्र शास्त्र एव आगम के सन्दभ म कवि को अच्छा ज्ञान था।

जसे—

तीन भाग करि च्यार तजि रह्यो वृद्ध करि देऊ।
दृग निधि जुगरिप तत्व गुन रस ससि सुभरि लेऊ ॥

और भी—

निज इच्छा के आक मे तीस जोरि करि डारि
शेष च्यारि को भाग दे लब्ध अ क निरधारो।
रह एक द्वै तीन पुनि तीन करौ यह क्रम जानि
छवें तेरहे बार हे अ क वृद्धि कर वानि।
लब्ध अ क को अधिक करि इह क्रम सो भरि लेहू।
गुन सरदिक वहुर्‌यो कला सूर सक्र ससि गेहू ॥
सागर तेरह रुद्र वसु दृग दशन अरु वेद।
तिथ सु अ क घर लेहु भरि सुगम यत्र को भेद ॥

उत्सवादि की तिथि नक्षत्रादि का ज्ञान कवि को सम्यक्तया था। कवि ने उत्सव मालिका मे स्थान स्थान पर इनका विवेचन किया है—

भादो सुदि एकादसी जसुदा पूज्यौ घाट।
नदराय जू दान दे किये अज्ञानी भाट ॥
भादो की सुदि द्वादसी श्री वावन अवतार।
इद्र काज करि वलि छल्यो आप रहे गहि द्वार ॥

उजियारी आसोज की दसमी मगल रूप।
बिजै करी रघुनाथ जू करि कपि कटक-अनूप ।।

श्री रसरासि को बारह मास के उत्सवादिको का सम्यक्तया ज्ञान था। कवि के साहित्य पर रीति कालीन कवियो का पूण प्रभाव दिखाई देता है। भक्ति सम्बन्धित पदो पर सुर एव अष्टछाप के कवियो सा साम्य दिखाई देता है। कही कही पर उक्ति वैचित्र्य के दशन सुलभ होते हैं।

कवि रसरासि एक विद्वान सहृदय कवि थे जिन्ह अनेक भाषाओ का ज्ञान था। पुराणेतिहास ज्योतिष एव सगीत शास्त्रो की अच्छी जानकारी थी।



रसिक-पचीसी

रसिक-पचीसी कवि रसरासि की एक छोटी सी कृति है। इसम कुल मिलाकर २६ कवित्त हैं। रसरासि सकलन की यह प्रथम कृति है। कवि रसरासि ने इस कृति का शीर्षक जो 'रसिक पचीसी' निर्धारित किया है वह सर्वथा उपयुक्त है। २५ कवितो म विषय का प्रतिपादन किया है और छब्बीसवें में कवि ने अपने एव अपने आश्रयदाता सवाई प्रतापसिंह के सदभ मे रसिकता का सरस चित्र प्रतिपादित किया है।

इस कृति म रसिक शिरोमणि रासविहारी गोपीवल्लभ क रसमय जीवन एव गोपिया के हृदय की उत्कट वेदना का सफल चित्रण हुआ है।

श्रीमद्भागवत के दसम स्कन्ध म गोपिया के विरह का सरस चित्र महर्षि व्यास द्वैपायन न उतारा है। इसी की प्रेरणा के फल-स्वरूप सस्कृत एव हिन्दी कवियो ने श्रीकृष्ण एव गोपियो के प्रेम एव रासलीला के हृदय भावप्रवणता के साथ प्रदर्शित किये हैं। महाकवि सूरदास एव अष्टछाप के विविध कवियो ने कृष्ण की लीलाओं का आधेय मानकर साहित्य मे नूतन क्षितिज जन्म दिये हैं।

रीतिकाल म साहित्य का मूल विषय ही श्रीकृष्ण की रास लीला एव नारी का नख सिख वणन मात्र रह गया था। कवि केशव घनानन्द, बिहारी, मतिराम, चिन्तामणि रत्नाकर, पद्माकर आदि ने रस भीगे अनेक कवित्त एव दोहों का सजन कर रीतिकाल को समृद्ध किया है।

भक्तिकाल म कवियो ने गोपी विरह म श्री कृष्ण द्वारा भेजे गये उद्धव को लेकर गोपियो के सुमधुर एव सरस-सवाद को भ्रमरगीत नाम से अभिसंज्ञित किया है। निगु ण उपासना की शिक्षा प्रसारित करने वाले उद्धव क प्रति गोपियो के हृदय म उपालम्भ एव उपहास की भावना जन्म ले लेती है। गोपियाँ उद्धव को 'भ्रमर' के माध्यम से फटकारती है। यह वणन अभिव्यजनात्मक है। उक्ति-वैचित्र्य एव वाग्वदग्ध्य के माध्यम से निगु ण ब्रह्म का उपहास करते हुए श्री कृष्ण के सरस प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है।

भक्तिकाल में जहाँ प्रतीक के माध्यम से उद्धव को प्रताड़ित किया है–वहीं रीतिकाल में अभिधा के माध्यम से किया गया है।

रसरासि ने रसिक पचीसी में किसी भी प्रतीक को माध्यम नहीं बनाया है, अपितु अभिधा के माध्यम से उद्धव का उपहास किया है। फिर भी हम रसिक-पचीसी को भ्रमरगीत की श्रेणी में रखते हुए इस पर विचार करेंगे।

हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भ्रमरगीत प्रसंग के संदर्भ में श्री रतनलाल वश्य ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—[1]

हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत परम्परा का विकास श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध के सैंतालीसवें अध्याय से हुआ है जहाँ गोपियाँ कृष्ण के प्रिय ज्ञानी सखा दूत उद्धव के सामने अत्यधिक प्रेम-विह्वल होकर लोक मर्यादा का भी तिरस्कार कर कृष्ण की चर्चा में विनिमग्न होती हैं। कहा जाता है कि एक गोपी किसी भौंरे को अपने निकट गुनगुनाते देख कर उसे कृष्ण का भेजा हुआ दूत मान कर कहने लगी कि 'हे धूर्त बन्धु मधुकर। तुम हमारे चरण न छुओ तुम्हारी मूछों पर सौत के वक्ष स्थल पर विहार करने वाली माला का कुंकुम लगा है। मधुपति कृष्ण ही यादवों की सभा में उपहास कराने वाले इस प्रसाद को धारण करें। हम इसे नहीं चाहते। तुम्हारी और कृष्ण की बन्धुता ठीक ही है क्योंकि जैसे तुम सुमनों का रस लेकर उन्हें छोड़ जाते हो वैसे ही एक बार मोहिनी अधर सुधा पिलाकर वे भी एकाएक हमको छोड़ कर चले गये हैं।"

हिन्दी साहित्य में 'भ्रमर-गीत' को लेकर अनेक कवियों ने रचनायें की हैं। सभी कृतियों में या तो उद्धवको स्पष्ट रूप से कहा गया है कि तुम जिस निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की शिक्षा देने आये हो वह व्यर्थ है। रस के वातावरण में जीने वाली साकार श्रीकृष्ण के प्रेम में पगी गोपियाँ उसके प्रेम में विकल हैं।

कुछ कवियों ने उद्धव को अभिधा के माध्यम से न कह कर प्रतीक रूप में उपहास दिया है। भ्रमर को प्रतीक बना कर गोपियाँ निराकार निर्गुण ब्रह्म के संदर्भ में अनेक तर्क प्रस्तुत करती हैं।

कुछ आलोचकों की भ्रमर के संदर्भ में विभिन्न मान्यतायें हैं जिनके संदर्भ में श्री रतनलाल वश्य ने अपना मत इस प्रकार दिया है :—

'कुछ लोग इसी प्रसंग को इस रूप में कहते सुने जाते हैं कि राधा के चरण को कमल समझ कर एक भौंरा उसमें आ लिपटा और उन्हें कष्ट देने लगा। उसे

१–भ्रमरगीत–पृ स ८

दूर करते हुए राधा अथवा अन्य गोपियों ने उस भौंरे पर डाल कर अन्योक्ति के रूप मे कृष्ण को उद्धव की ओर उन्मुख होकर जो उपालम्भ दिये हैं व भ्रमर गीत" के नाम से काव्य म अभिहित किये गये हैं।"[2]

भ्रमर गीत सम्बन्धित् काव्यो मे मूल कथानक इस प्रकार रहा है कि श्री कृष्ण अक्रूर के साथ मधुपुरी चले आते हैं। बृज भूमि मे चेतन अचेतन विकल हो उठता है। गोपियाँ श्री कृष्ण के विरह म अपनी सुध-बुध खो बठती हैं। श्री कृष्ण भी मधुपुरी म रस उत्पीडन की अनुभूति करते हैं और अपने परम प्रिय मित्र उद्धव को बृजभूमि म जाने को कहते हैं। श्री कृष्ण गोपियो के हृदय म निराकार ब्रह्म का अस्तित्व स्थापित करना चाहते हैं। इस काय के लिए वे उद्धव को दायित्व सौंपते हैं। उद्धव सम्प्रदाय के बीज मन्त्र को समझाने के लिए गोकुल ग्राम पहुच जाते हैं। श्री कृष्ण के परम प्रिय मित्र उद्धव को देखकर सम्पूर्ण गोकुल ग्राम फिर एक बार आनन्दित हो उठता है। गोकुल की गोपवधूटियों के मानस में आशा का संचार हो उठता है। उनके मन का सकल्प उद्धव के संदेश को सुनने के लिए व्यग्र हो उठता है उद्धव के मुख से साकार ब्रह्म की आलोचना एव निराकार का महत्व सुन कर गोपियों का हृदय पीडित हो उठता है और व उद्धव को खरी-खोटी सुनाती हैं। उद्धव मथुरा लौट जात हैं।[3] इस कथा को हम इस प्रकार तीन भागो मे विभक्त कर सकते है —

(क) कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज भेजना।

(ख) उद्धव गोपी सवाद एव उद्धव द्वारा ज्ञानोपदेश।

(ग) उद्धव के निगु ण ज्ञान का अवसान एव भक्ति रस से प्रभावित हो मथुरा लौटना।

हिन्दी साहित्य म भ्रमर गीत परम्परा मे सूरदास का सर्वोपरि स्थान रहा आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है —

'सूर सागर का सबस मम स्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है जिसमें गोपियों की वचन वक्रता अत्यन्त मनोहारिणी है। ऐसा सुन्दर उपालभ काव्य कहीं नही मिलता है। उद्धव तो अपने निगु ण ब्रह्म ज्ञान और योग कथा द्वारा गोपियों को प्रेम से विरत करना चाहते हैं और गोपिया उन्हें कभी पेट भर बनाती हैं कभी

2 भ्रमरगीत–पृ स ८

3 भ्रमरगीत पृ स १६

4 हि सा इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृ १२०

उनसे अपनी विवशता और दीनता का निवेदन करती हैं। उद्धव के बहुत बकने पर वे कहती हैं—

उधो ! तुम अपनो जतन करो।
हित की कहत कुहित की लाग, किन व काज टरो /
जाय करो उपचार आपनो, हम जो कहति हैं जी की ।।
कछू कहत कछु व कहि डारत, धुन देखियत नहीं नीकी ।।

इस भ्रमरगीत का महत्व एक बात म और बढ गया है। भक्त शिरोमणि सूर ने इसमे सगुणोपासना का निरूपण बडे ही मार्मिक ढग स हृदय की अनुभूति के आधार पर तर्क-पद्धति पर नही किया है।

रसिक पचीसी का कवि रसरासि भी इसी परम्परा का निर्वाह करने वाला कवि है। रसिक पचीसी का उद्धव भी मथुरा से गोकुल ग्राम इसी लक्ष्य को लेकर आता है। जब गोपियों की स्मृति श्री कृष्ण के मानस-पटल पर अपना रेखा-चित्र बनाने लगती है तो नन्द नन्दन अपने परम प्रिय मित्र उद्धव से इस प्रकार कहते हैं—

परम पवित्र तुम मित्र हो हमारे उधो !
अन्तर विथा की कथा मेरी सुनी लीजियै।
वृज की वे बाला जपें मेरी जप माला
बढी विरह की ज्वाला ता मे तन मन छीजियै।
मेरो विसवाप मेरी आस रसरासि
मेरे मिलिवे की प्यास जाति समाधान कीजियै।
प्रीति सो प्रतीति सा लिखी है रस रीतिन सो
पत्रिका हमारी प्रानप्यारिन को दीजियै।

श्री कृष्ण उद्धव को एक पत्रिका लिख कर देते है–जो गोपियो के नाम है। वे गोपियो के हृदय की पीडा को अनुभूत करते हुए उद्धव से उन्हे आश्वस्त करने के लिए कहते हैं। सूरदास भी अपने उद्धव से यही कहते हैं कि वृज भूमि म जाकर सभी को मेरा सस्पृह निवेदन करना और फिर मेरा सदेश सुनाना। गोपियो एव *राधा से कहना कि आज भी श्री कृष्ण तुम्हारे ही साथ है तुमसे विरक्त नहीं है।*[5]

---

5 पहिले करि परनाम नद सो समाचार सब दीजो।
और वहा वृषभानु गोप सो जाय सकल सुधि लीजो ।।
श्रीदामा आदिक सब ग्वालन मेरे हुतो, भेटियो।
सुख सदेस सुनाय हमारो गोपिन को दुख मेटियो।

—रसिक-पचीसी"

रसरासि और सूर के श्रीकृष्ण मे यह अ तर है कि सूर का श्रीकृष्ण सम्पूर्ण गोकुल के जनजीवन को आश्वस्त करने के लिए सकल्पशील है और रसरासि का श्रीकृष्ण गोकुल की केवल गोपवधूटियो के लिए चिन्तित है।

हरि गोकुल के नाम से ही प्रेम विह्वल हो उठते हैं। वे कभी भी व्रजवासियों से असम्पृक्त नहा हो सकते हैं। गोकुल का वातावरण एव घटनायें उनके हृदय का आन्दोलित कर उठती हैं।[6]

स्मृतियों क वातावरण म उद्वेलित होकर उद्धव को गोकुल ग्राम जाने के लए कहते हैं। उनका कहना है कि गोपिया विरह मे दग्ध हो रही हैं। व मेरे अभाव म सन्तप्त जीवन जी रही हैं, जिस प्रकार जल के बिना मीन नही रह सकती प्रकार मेरे बिना गोपिया भी नहीं जी सकती हैं।[7]

मन्त्री इक बन बसत हमारो ताहि मिले सचु पाइयो।
सावधान ह्वै मेरे तो ताही माथ नवाइयो।
सुन्दर परम किशोर वयक्रम चचल नयन बिशाल।
कर मुरली सिर मोर पख पीताम्बर उर बन माल॥
जनि डरियो तुम सघन बनन में ब्रजदेवी रखवार।
वृन्दावन सो बसत निरतर कबहू न होत नियार॥
उद्धव प्रति सब कही स्याम जू अपने मन की प्रीति।
सूरदास किरपा करि पठए यहै सकल ब्रज रीति॥

—सूरदास

6 हरि गोकुल की प्रीति चलाई।
सुनहु उपगसुत मोहिं न विसरत ब्रजवासी सुखदाई।
यह चित्त होत जाऊ मैं अब ही, यहा नही मन लागत।
गोप सुग्वाल गाय बन चारत अति दुख पायो त्यागत।
कहँ माखन चोरी ? कह जसुमति पूत जैंव करि प्रेम।
सूर श्याम के वचन सहित सुनि व्यापत आपन नेम।

7 उद्धव ! वेगि ही ब्रज जाहु।
सुरति सदेश सुनाय' भेटो बल्लभिन को दाहु।
काम पावक तूलमय तन विरह स्वास समीर।
भसम नाहिन होन पावत लोचनन के नीर।
अजो लौं यहि भाँति ह्वै है कछुक सजग सरीर।
इनते पर बिनु समाधाने क्यो ‹ तय धीर।

हे उद्धव ! तुम गोकुल जाने से पूर्व मेरा एक संदेशा ले जाओ, प्रथम तो गोकुलवासियों से क्षेम कुशल की वार्ता करना और उसके पश्चात तुम उन विरह दग्ध गोपियों को मेरा संदेशा सुनाना।[8]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर सागर का श्रीकृष्ण अत्यन्त भावुक एवं उदारचेता है उद्धव को विस्तार से अपनी बात समझाता है जबकि रत्नाकर का श्रीकृष्ण एक ही कवित्त मे उद्धव से अपनी मनोव्यथा को व्यक्त कर उसे गोकुल जाने के लिए प्रेरित करता है।

रत्नाकर कवि ने भी गोपियों की विरह वेदना से माधव को उत्पीडित बताया है। रत्नाकर के कृष्ण के पास गोपियों की उत्कट पीड़ा को व्यक्त करने के लिए शब्द भी नहीं हैं–जिससे स्वतः सिद्ध हो जाता है कि गोकुलपति के हृदय में गोपियों के प्रति निस्सीम प्रेम-भावना सजग थी। श्रीकृष्ण जब उद्धव को गोकुल ग्राम भेजते हैं तब उसे अपना संदेश सुनाते हैं। श्रीकृष्ण इतने प्रेमविभोर एवं विकल हो उठते हैं कि अपनी मनोभावना को पूर्ण रूपेण व्यक्त नहीं कर पाते हैं। उद्धव कुछ उनके मुख से सुन पाता है और कुछ उनकी हिचकियों से ही अनुमान लगा लेता है।[9]

इन सभी अभिव्यक्तियों का मूल उद्गम श्रीमद्भागवत पुराण हैं। भागवत का श्रीकृष्ण भी गोपियों की स्मृति में विकल है। उसे अतीत की मधुरिम स्मृतियां सजगता के साथ कचोटने लगती है। उनके मन का संशय कह उठता है कि न जाने गोप वल्लभायें मेरे बिना किस प्रकार अपना जीवन धारण करती होंगी? अतः

कहौं कहा बनाय तुमसों सखा साधु प्रवीन।
सूर सुमति विचारिए क्यों जिय जल बिनु मीन॥

8 सुनियें एक संदेशो ऊधव तुम गोकुल को जात।
ता पाछे तुम कहियो उनसों एक हमारी बात॥

9 विरह व्यथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रवीन सुकवीन सों।
कहै रत्नाकर बुझावन लगे ज्यों स्याम।
उधौं कौं कहन हेतु ब्रज जुवतीन सो।
गहबरि आयौ गरो भभरि अचानक त्यौं
प्रेम परयो चपल चुचाय पुतरीन सों।
नकु कही बैननि अनेक कही नैननि सों
रही-सही सोहू कहि दीनी हिचकीन सों।

—"रत्नाकर"

हे उद्धव! तुम शीघ्र ही गोकुल ग्राम जाकर उन विरहदग्धाग्रो को ग्राश्वस्त करो ।[10]

श्रीकृष्ण का उद्धव रसिक शिरोमणि के मानस की स्थिति से पूर्ण परिचित हो जाता है । श्रीकृष्ण के विकल हृदय की सुकुमार भावनाओ को सहेजते हुए श्रीकृष्ण का पावन सदेश लेकर गोकुल ग्राम जाने को प्रस्तुत हो जाता है ।

रसरासि का रसिक बिहारी श्रीकृष्ण उद्धव को अपनी मानसिक व्यथा को व्यक्त करते हुए गोपियो के हित सदेश देताहै । श्री कृष्ण उद्धव के माध्यम से गोपियो को कहलाते हैं कि जिस प्रकार तुम सभी मेरे प्रति तन मन एव धन से समर्पित थी उसी प्रकार मनसा वाचा एव कर्मणा तुम निराकार ब्रह्म की उपासना मे रत हो जाग्रो । मैं स्वय सकल ब्रह्ममय हू मुझमे अनादि अनन्त सभी समाहित है । तुम मेरे निगुण रूप मे अपने आप को समर्पित कर मुक्ति-पद प्राप्त कर लागी ।

मोहि तुम दीनो तन मन धन प्राण जसे
वैसे ही समाधि सधि ध्यान धरि ध्यावौगी ।
अलख अरूप घट घट को निवासी मोहि जानि
अविनासी जोग जुगति जगावौगी ।
प्राणायाम आसन असन ध्यान धारना ते
ब्रह्म को प्रकास रसरासि दरसावौगी ।
ऐसे चित लावौगी तो सुख मे समावौगी
मुक्ति पद पावौगी हमारे ढिंग आवौगी ॥

सूरदास का श्रीकृष्ण भी उद्धव से यह कहता है कि-हे उद्धव! तुम निराकार साधना के अगों से पूर्व परिचित हो । अतः गोपियो को जो विरह तप्त ॥ अपने प्राणो को छोडे हुए हैं-उनको निराकार की उपासना का मत्र देकर उनका उद्धार करो ! हे मित्र! तुम शीघ्र ही उन गोपियो को यह समझादो कि ब्रह्म के बिना मुक्ति नही है ।[11]

---

10 मयि ता प्रेयसा प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रिय ।
स्मरन्त्योऽङ्ग ! विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्य विह्वला ॥
धारयन्त्यति कृच्छ्रेण प्राय प्राणान कथाचन ।
प्रत्यागमन सन्देशवल्लभ्यो मे मदात्मिका ।

—श्री मद्भागवत

11 उद्धव ! यह मन निस्चय जानो ।
मन क्रम बचन मैं तुम्हे पठावत ब्रज को तुरत पलानो ।
पूरन ब्रह्म, सकल, अविनाशी ताके तुम हो ज्ञाता ।

गीता मे भी भगवान ने कहा है सभी जीव प्रकृति से विमुग्ध होते हैं अत उनको मेरी ओर प्रवृत्त करो।[12]

सभी कम मुझे समर्पित कर साधना के माग की ओर प्रवृत्त होना ही श्रेयस्कर है।

श्रीकृष्ण का सदेश लेकर उद्धव गोपियो के पास जाते हैं। उनकी क्षेम वार्ता के पश्चात उन्हें सदेश सुनाते हैं। गोपियाँ निराकार ब्रह्म की उपासना-सदेश को सुनकर पीडित हो उठती हैंऔर उद्धव को कोमना-प्रारम्भ कर देती हैं। गोपियो को यह विश्वास नही होता है कि उनके रसिक-शिरोमणि ने यह सदेश भेजा है अपितु वे सारा दोष उद्धव एव कुब्जा पर डालते हुए कहती है--

कौन की लिखी है पाती कौन ये पगई
तुम कौन हो कहाँ ते आये काके मिजमान हौ।
का की पहिचानि रसरासि वा निरजन सो
कौन सीखे ज्ञान कहा भूले अवसान हौ।
कौन साधे पौन अरु मौन धरि बैठे कौन
काके नन श्रौन भये अजहुँ अजान हौ।
अब हम जानी तुम हौ दीवान कूबरी
कपछ करि आये हौ पै मछर समान हौ।

अन्य ब्रज भाषा के कवि भी गोपियो के मुख से उद्धव को कुब्जा का दूत मानते हुए मनोरम व्यग्य प्रस्तुत करते हैं। नारिगत ईर्ष्या जाग्रत हो उठती है। उनकी मान्यता है कि श्रीकृष्ण को कुब्जा ने अपने प्रेम पाश म बाध लिया है और

रेख, न रूप, जाति, कुल नाही जाके नहिं पितु माता।
यह मत द गोपिन कह आवहु बिरह नदी ये भासति।
सूर तुरत यह जाय कहौ तुम ब्रह्म बिना नहिं भ्रासति ॥
—सूरदास

12 'प्रकृतेगुणसमूढा सज्जन्ते गुणकमसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दाकृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥
—गीता

'मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीनिममो भूत्वा युद्धस्व विगतज्वर ॥
—गीता

कुब्जा के सकेत से ही उद्धव हमको निराकार ब्रह्म की उपासना देने आये है–क्योंकि वह अपने प्रेम के मध्य हम बाधा मानती हैं। अत गोपियाँ उद्धव को उसके निराकार ब्रह्म क सदभ मे अनेक प्रश्न पूछ बठती हैं।[13]

रसरासि की गोपिया उद्धव के सदभ म अपनी भावनाओ को व्यक्त करती हुई कहती है–श्रीकृष्ण हाथ जोडे कुब्जा की सेवा मे अनुदिन रहता है, उसी के सकेतो पर सारे काम करता है, उसी क आदेश से याय अ याय करता है, उमी के कारण हमे प्रम योग मे हटाकर योगिक साधना म प्रवृत्त करना चाहता है यह उद्धव भी उसी कु जा का मुसाहिब है —

हाथ जोरे हाजर हुजूर मे रहत जाकी
 मरजी को राखे वात भाषे इकरगीजू।
वाही को हुकम पाय करत अ याय-न्याय
 भयो रसरासि वाकी प्रीति को प्रसगीजू।
या ही तें वियोग माहि जोगराज रोग हमे
 सोग दै पगयो आप सग अरधगीजू।

---

13 कुबिजा को नाम सुनत विरह अमल बूडी।
रिसनि नारि महरि उठी क्रोध मध्य बूडी॥
आवन की आस मिटी, अरध सब स्वासा।
कुबिजा नपदासी, हुम सब करी निरासा।

बड वै कु जा भलो कियो।
सुनि सुनि समाचार ऊधो मा कछुक सिरात हियो।
जाको गुन गति नाम रूप हरि हारयो फिरि न दियो।
तिन अपनो मन हरत म जान्यो हँसि हँसि लोग जियो।
सूर तनिक चदन चढाय तन, ब्रजपति वस्य कियो।
और सकल नागरि नारिन को, दासी दाव लियो॥

उधो ! जाहु तुम्ह हम जाने।
स्याम तुम्हे हया नाहि पठाए, तुम हो बीच भुलाने॥
निगु ण कौन देश को वासी।
मधुकर हसि समुझाय सौह द बूझति साच न हांसी।
को है जनक, जननि को कहियत कौन नारि को दासी।
कसो बरन, भेप है कसो केहि रस में अभिलासी॥

अब हम जानी लिखी वाके मनमानी
उँहा साहिब है कूबरी मुसाहिब निभगीजू ।।

उद्धव के आने पर गोकुल ग्राम में सर्वत्र यह चर्चा फैल जाती है कि श्रीकृष्ण का संदेश लेकर उनका मित्र आया है और वह प्रेम योग में निराकार उपासना को भर देना चाहता है। उद्धव के स्वरूप का चित्रण भी रमणीयता के साथ किया गया है कि उद्धव अपने साथ सेली सींगी माला, मृगछाला झोली, डंडा आदि सभी साधन लाया है। वह उद्धव रथ पर चढ़कर ब्रजभूमि में अनर्थ करने आया है। हमें संयम, नियम योग साधना के मार्ग सिखाना चाहता है। यह हमारी मानसिक भावनाओं का अनादर करता हुआ हमें प्रेम मार्ग से विचलित करने के लिए ब्रह्म की निराकार सत्ता को दिखाना चाहता है। यह कूबरी के द्वारा भेजा हुआ दूत है —

आयौ आयौ भयौ ऊधौ आय ब्रजमंडल में
राग में कुराग जोग कौ कुगीत गायौ है।
सेली सींगी माला मृगछाला झोली डंडा
मूंदरी भसम मुद्रा स्वांग लै दिखायौ है।
संजम नियम ध्यान धारना द्रढावत है
ब्रह्म को 'प्रकास रसरासि दरसायौ है।
कूबरी प पढि आयौ पंज करि कढि आयौ
रथ चढि आयौ अनरथ गढि ल्यायौ है ।।

गोपियाँ उद्धव के निराकार मार्ग से संत्रस्त होकर उसे व्यंग्य वचनों से आन्दोलित कर देती हैं। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं आज का दिन सौभाग्य सूचक है कि हम विकल विरहव्यथाओं के प्रति श्रीकृष्ण का ध्यान आकर्षित तो हुआ।

हमारे प्रणयी श्रीकृष्ण अपने जीवन में अति व्यस्त रहते हुए हमारे प्रति इतने स्मृतिवान् हैं-यह क्या कम सौभाग्यजनक है? रसरासि की गोपियाँ उद्धव से इस प्रकार कहती हैं-

भली भई सुधि आई हमारी कन्हाई जू को
भलो दूत आयो सबहिन मान्यो भूरि भाग।
अब ये संदेस में करन उपदेस लागे
जाने लागे कोइल से भले बनि आये काग।
रूप के उपासी रसरासि बृजवासी
कैसे होत वे उदासी लगी जिनकी निसक लाग।

देखोरी अनीत बात आधरे या उद्धव की
लगावर जोग वेलि प्रेम को कटाय वाग ॥

आज तक तो हमारे प्रणयी श्री कृष्ण हमारे साथ रास रचाने मे ही श्रेय समझते थे किन्तु अब वे निरञ्ज निराकार की उपासना का सन्देस भेजने लगे हैं।[14] किन्तु यह क्या कम है कि हमारे प्रणयी हम विरहदग्धाओं का इस प्रकार याद तो करते हैं। हम तो हमारे नदनन्दन के प्रति प्रेमासक्त हैं उसके रस मे निमज्जित हैं, निराकार की बातें हम कसे अच्छी लग सकती हैं। गोपियाँ अपनी सखियो के साथ आपस मे वार्तालाप करती हुई कहती हैं कि आज उद्धव के अनीतिपूर्ण आचरण को देखो। यह प्रेम का लहलहाता उद्यान कटाकर हमारे मन म योग साधना की लता को लगाना चाहता ह। असम्भव के हित सम्भव का मूलोच्छेदन करने के लिए प्रयत्नशील है।[15] महाकवि नन्ददास की गोपिया भी उद्धव का समझाती हुई कहती है कि जिस वृक्ष का तुम आरोपण करना चाहते हो उसके बीज हमारे मानस धरातल पर नही जम सकते हैं। रसरासि की गोपिया निष्ठुर मुरारि के प्रति कहती हैं—

जाकी कखि जायो ताको कैद करवाय आयो
घाय करि मारी नारि निठुर मुरारी है।
और वृजनारी तिन्ह मिलि मिलिमारी
फेरिअ मिल ह्वै मारी जो मिलेगी ताहिमारी है।
एरी सुनि लेरी चेरी तेरी सो कहत है
री तुझ रसरासि आखें असुवन ढारी है।
परी य पुकारी है तू फरि न सभारो हरी
नारि मारिवे की तो कन्हैया तरवारी है॥

---

14 कहन स्याम सदेस एक मैं तुम प आयो।
कहन समय सकेत कहू अवसर नही पायो।
सोचत मन म रह्यो कब पाऊँ इक ठाऊँ।
कहि सदेस नदलाल को बऊरि मधुपुरी जाऊँ।
सुनो ब्रजनागरी।

15 जो उनक गुन नाहिं और गुन भए कहा तें ?
बीज बिना तरू जम मोहिं तुम कहो कहा तें।
वा गुन की परछांह री माया दरपन बीच।
गुन तें गुन न्यारे भए, अमल वारिजल कीच।
सखा सुनु स्याम के।
— नन्ददास

रसराशि ने श्रीकृष्ण को नारियों के साथ निर्मोही सिद्ध किया है। गोपियाँ कहती हैं कि कन्हैया तो स्वभावत ही निर्मोही है। जिसकी कुक्षि से उत्पन्न हुआ उस देवकी को कंस की कारागार मे बन्द करवा आया फिर जिस पूतना को धाय बनाकर उसका स्तनपान किया उसे भी मार दिया—अत हमारा नन्दवर तो निसगत ही निष्ठुर है। इस निष्ठुर मुरारि ने व्रजभूमि म अनेक गोपवधूटियो को अपनी मोहिनी मूरति की शक्ति से मार गिराया किन्तु इन सभी से भी यह तृप्त नही अपितु इसकी अतृप्त आकाक्षा भविष्य म भी अनेक नारियो को मारने के लिए लालायित है। हम गोपाङ्गनायें उस मुरारि के प्रणय म विरह कातर हो नयनो से अश्रु धारायें बहा रही हैं। उसके नाम की रटन हमारे अधरो से दूर ही नही हो रही हैं किन्तु वह हृदयहीन बनवारी घायल करने के पश्चात् सभालने का नाम ही नही लेता है अत स्वत सिद्ध हो जाता है कि निष्ठुर कन्हैया नारियो को आहत करने के लिए तीखी तलवार के सदृश है।

गोपियाँ अपनी ओर से ही श्रीकृष्ण पर आरोप नही लगाना चाहती है अपितु उसी की जीवन घटनाओ का उल्लेख करते हुए उसकी वृत्तियो का विवेचन करती हुई सिद्ध करना चाहती हैं कि बनवारी कितना निष्ठुर है —

दस ही दिना को भयो नयो जसधारी
जिन मारि डारि नारी, ऐसो निठुर निहार्‌यो है।
वछा मार्‌यौ वका मारयौ अजगर हू को मार्‌यौ
खरहू को मारि, हय हू को मारि डार्‌यो है।
मनी माहि फूल्यो, फूल्यो फूल्यो रसरासि
इहा आतो व्रत कीन्हो सो तौ सब ही विसार्‌यौ है।
मामा मारिवे को पाप प्रकट उतारिवे को
कूवरी त्रिवणी ता मे तन का पखार्‌यो है।

गोपिया श्रीकृष्ण के द्वारा भेजे हुए सदेस के सदभ मे उद्धव से कहती हैं कि हमने तो योग साधना को प्रारम्भ म ही स्वीकार कर लिया था। जिसकी तुम आज शिक्षा देने आये हो—उसके लक्षण क्या तुम्हे हमारी देह में नही दिखाई देते ? जिस दिन से अक्रूर हमारे प्राण वल्लभ गिरिधर नागर को हमसे छीन कर ले गये—उसी दिन से प्रिय-वियोग मे हमारी देह न सभी यौगिक तत्वो को स्वभावत ही धारण कर लिया है —देखो ! सभी ता तत्व हैं।—

वसन मलीन बन वन तन छीन डोले
मोन ही सो बोल बेनी जटा पद पायौ है।

आगे जाम जागी रहैं, ध्यान ही सो लागि
देखो भूख प्यास भागी मन सून्य मे समायो है।
बिरह दवाग्नि दू गी धूनि धधकाय राखि
एक रस एक रसरासि दरसायो है।
उधौ अब आय कहा जोग ते सुनायो
इहां सावरें सिधायौ तब ही तें जोग छायो है।

न हमारे शरीर को शृंगार की चाह है और न ही हमारे मन को कुछ भाता हैं। गोपिया न मलिन वस्त्र धारण कर रखे हैं–यह विरक्ति का सूचक है। तपस्या मे तन छीज रहा है, मौन व्रत धारण किये हुए हैं, ध्यान मे सदा रत रहती हैं, शून्य म चित्त स्थिर है विरह की दावाग्नि म तन–मन जला जा रहा है सभी तरह से हम उनके बनाये हुए माग पर पूव स ही आसक्त हैं। सूरदास ने भी गोपियो की विरहावस्था का चित्रण करत हुए कृशगात का सजीव चित्र उपस्थित किया है।[16]

गोपिया के लिए प्रेममाग ही सवस्व है। वे प्रेममाग म अन्य सभी मार्गों का समाहित कर लेना चाहती हैं। व साधारण स्थिति पर जीने के लिए कटिबद्ध हैं, प्रेम क महत्व को समझती हैं। कवयित्री मीरा न प्रेम के महत्व को समझते हुए अपने आपको नटवर के प्रति समर्पित कर दिया था[1] रसराशि की गोपिया प्रेम के अस्तित्व को सुरक्षित रखत हुए उद्धव से विनयपूर्वक कहतीं हैं –

व्याकुल विकल महा विरही विचारे बौरे
अलबल बोले ताकी चूक माफ कीजे अब।
काहू भांति चाह प्राण प्यारे को हमारे
बृज स्याही झिलमिलि जल जमुनानो पीजे अब।
पाती हूँ मे माया बौ जरूर मजबूर लिखो
उधौ रसरासि काई को से जाय दीजे अब।
विनती हमारी करो सावर बिहारी सो
तिहारी भारी भरी हैं जिवाय जसलीज अब।

उधो ! इतनी कहियो जाय।
अति कृसगात भई हैं तुम बिनु बहुत दुखारी गाय।
जल समूह बरसत अ खियन तें हूँकत लीने नाव।
जहाँ जहाँ गोदोहन करत हूढत सोइ सोइ ठांव।
परति पछार खाय तेहि थल अति व्याकुल ह्वै दीन।
मानहु सूर काढ़ि डारे हैं बारि मध्य ते मीन॥

श्री कृष्ण के सामीप्य के लिए वे सब कुछ त्यागने के लिए सकल्पशील हैं। उद्धव से अनुनय करती हुई कहती हैं कि तुम किसी भी प्रकार से हमारे परम प्रिय को वृज भूमि मे ले आओ। हम विश्वास से कहती हैं कि साँवरे की इच्छानुसार आचरण करेंगी। श्री कृष्ण स्वय हमसे मिलने के इच्छुक हैं उन्होंने पत्रिका म इसका उल्लेख किया है। आज तक जो कुछ हमसे अपराध हुआ उसके लिए हम क्षमा-याचना करती हैं, भविष्य म हम किसी प्रकार का अपराध नहीं करेंगी, सम्मिलित रूप से रहेंगी और श्री कृष्ण के साथ यमुना नदी के तट पर बैठकर शीतल जल से हमारी तृषा को शान्त करेंगी। मीरा भी यही कहती है।[51]

हम गोपियाँ प्राण वल्लभ के विरह म अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं। उनके अभाव म हमारा जीना अत्यन्त दुलभ है। हम नहीं रसिक शिरोमणि के कारण आहत हैं, उसी के आने पर हम जीवन मिल सकता है अत हे उद्धव! तुम श्रीकृष्ण से जाकर निवेदन करो कि वे वृजभूमि म आकर हमें प्राण दान देकर अक्षुण्ण कीर्ति लाभ प्राप्त करें। अन्यथा अपयश के भागी होंगे।

रसराशि की गोपियाँ प्रेम रस से आपूरित हैं, प्रणय की दीवानी हैं, प्रेम मार्ग पर चलने के लिए सकल्पशील हैं, वे योग-मार्ग की बात सुन कर भी यही कहना चाहती हैं कि श्रीकृष्ण के आने पर हम सब कुछ स्वीकार कर लेंगी। हमारे प्राणनाथ जो कुछ कहेंगे-हम वैसा ही करेंगी। हमने तो निराकार उपासना के लिए कभी विचारा भी नहीं है, हम हमारे रसिक को कैसे भूल सकती हैं।[52]

---

51 प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे
मने लागी कटारी प्रेमनी।
जल जमुना भो भरवा गयो ता
हती गागर माथ हेमनी रे।
काचे ते तातणे कीए बाधी
जम खेंचे तेम तमनी रे।
मीरा कहे निरधर-नागर
शामली सुरत शुभ एमनी रे॥
— मीरा

52 जोग की जुगति सीखा भसम अधारि मुद्रा
ग्यान उपदेश सुनि सुनि मन मे डरें।
कहाँ हम सब ही सयानी रास रसन कीं,
स्याम अग-सगन को पानी धन क्या करें।

रसरासि के आश्रयदाता जयपुर नरेश सवाई श्रीप्रतापसिंह वृजनिधि ने भी भ्रमर गीत परम्परा के संदर्भ में एक छोटीसी कृति की रचना की जिसका नाम प्रीति पचीसी रखा। श्री वृजनिधिकी गोपियाँ भी प्रेम राग में रंगी हुई हैं, वे भी निराकार के नाम से भयभीत हो जाती हैं। विरह की अग्नि में जलते हुए उन्हें उद्धव के वाक्य तपन में अनुभूत होते हैं।[52] श्री कृष्ण को निष्ठुर की संज्ञा देते हुए कहती हैं कि वह निर्मोही है किन्तु हम तो उसके रूपरस से मुग्ध हैं उसके वियोग में जीवन सहा धारण कर सकती हैं। वह हमें त्याग सकता है किंतु हम उसके बिना नहीं जी सकती हैं।[53]

वृजनिधि और रसरासि की गोपियाँ एक ही धरातल पर खड़ी हुई अपने आराध्य के प्रति आसक्त हैं। दोनों ही प्रेमपथ की अनन्य उपासिकायें हैं और सहज जीवन के लिए बाध्य हैं। रसरासि की गोपियाँ सामान्य जीवन जीनेवाली नारियाँ हैं जो व्यंग्य वचन नहीं जानती हैं। ये तो हर बात अभिधा के माध्यम से ही कहती हैं। हृदय की पीड़ा को सब के समक्ष रखने में तनिक भी नहीं हिचकिचाती हैं, उन्होंने श्री कृष्ण से प्रेम किया है और प्रेम में उन्होंने क्या नहीं किया ?

पति हू ते पिता हू ते मुसि मुसि त्याग त्याग
सर्वस्व हमारो हम सौंप्यो तन मन प्राण।
कुलहू की संपति समेटि हम भेंट भई
सोभ सो लपटिलई करि के सुजस गान।
अब रसरासि उधो लेके वह लौटि गयो
कहैं बिन रहे कैसे सुनो तुम देके कान।
भयो हो सगाती सो तो निकस्यो मेवाती
देखो थाती दाबि छाति तर पोतो में पगयो ज्ञान॥

तुम तो हो नेमी हम प्रेमी वृजनिधि के हैं।
कागद समट लेहू देगि अंखियाँ जरें।
आगि हू लगाती आती छाती हहराती यह
प्रानघाती कानी असी पाती न कहा करे।
—प्रीति पचीसी''

53 निपट अटपटी राह मन मोहन के मोहकि।
व तो वेपरवाह सीख बानि निर्मोह की॥
—प्रेम पोथ''

गोकुल की वृजाङ्गनाओं पति, ने पिता आदि सभी से चोरी छुपके सब कुछ लाकर अपने प्रणयी को समर्पित कर दिया । वे अपने स्नेही के प्रति तन मन धन से समर्पित हो गई । कुल मर्यादा की दीवारों को तोड कर नटवर के रूप लोभ म आसक्त होती हुई मुरलीधर के गीतो मे सुध बुध खोती रही । जिसको इन्होने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया जिसके आश्रय पर ये जी रही हैं वही गोपीवल्लभ आज सम्बन्ध विच्छेद कर मधुपुरी लौट गया, उसके विरह म ये प्रमासक्त गोपियाँ किस प्रकार प्राण धारण करें ? जो कल तक सयानी था वही आज मेयानी हो गया- तिस पर भी निराकार ब्रह्म के अस्तित्व की स्थापना । श्री गदाधरभट्ट की गोपियाँ भी श्याम के रूप -रग मे पूरी तरह डूबी हुई हैं ।[20] रस शिरोमणि की मनोहर मूर्ति को देखकर सब कुछ लुटाकर उसके हाथो बिक गई है, किन्तु उनका भी स्वप्न एक पल मे ही विखण्डित हो गया ।

रसिक-पचीसी की गोपिया अपने प्रियतम के प्रेम मे इतनी आसक्त हैं कि उसे देखने के लिए निरन्तर आँखें खोले हुए प्रतीक्षा रत हैं । वे प्रभात पर खडी हो कर अपने प्रेमी का निहारती रहती हैं उन्हीं आखो स जिनसे कभी नटवर के मोहन रूप रस का आस्वादन किया था। उनका मन मोहन के सौदय म आसक्त रहा है, आज भी उनका मन उस मदनाभिराम सौन्दय म निमज्जित है प्रेम की मृदुल डोरी से बधा हुआ-वही मन योग साधना के माग पर कसे अवतरित हो सकता है,

लोचन हमारे सदा रहत उघारे कहो कैसे
रह मूदें जिन रूप रस चाख्यौ है ।
मनहू हमारी मान काहू सो करत वारी
कैसे मनमाने जोग भोग भरि राख्यौ है ।
काहू हू हमारे रसरासि रीझे तानन सो
कौन सुने ग्यान इन गान अभिलाख्यौ है ।
रसिक सभा की तेरे कसक न लागी
यात खीर माहि मूसर सो मुक्ति पद नाख्यौ है ।

गोपियाँ कहती है हे उद्धव ! तुम प्रेम को क्या पहचान सकते हो ? तुमने कभी प्रेम किया ही नहीं तुमने कभी मुरली के निनाद मे माधुय का आस्वादन ही

---

20 सखी हौं स्याम रग रगी ।
देखि बिकाय गई वह मूरति, सूरत माहि पगी ।
सग हुतो अपनो सपनो सो सोइ रही रस खोई ।
—गदाधर भट्ट—

नहीं किया। तुम अरसिक व्यक्ति हो। तुम्हारा रसिकों की सभा से क्या सम्बन्ध ? तुम सम्भवतः रसिका के राग से ईर्ष्या रखते हो तुम्हारा ईर्ष्यालु मन हमारे प्रणय सम्बन्धों को सहन नहीं कर सका इसी लिए तो तुमने हमारी प्रणयखोर में मूसल की तरह मुक्ति पद डाल दिए हैं।

सूरदास की गोपियाँ भी रूपमुग्ध हैं वे उद्धव को स्पष्ट रूप से कह देती हैं हमारे पास दस बीस मन नहीं है एक था वह श्याम के साथ चला गया—अब तुम्हारी बात सुनने के लिए दूसरा मन कहां से लायें। निराकार ब्रह्म की सत्ता को अस्वीकार करने के लिए सूर की गोपियों ने उद्धव को बहुत छकाया है। सूरदास ने गोपियों के नयनों में श्याम को बसते हुए देखा है।[21]

रसरासि की गोपियाँ भी उद्धव के निराकारी ईश से कभी सहमत नहीं हैं। उनकी मान्यता है कि वे अपने प्रीतम के अतिरिक्त इस असीम संसार में किसी अन्य को नहीं जानतीं हैं। वे तो यहां तक कह देती हैं कि यदुनाथ अथवा द्वारकानाथ कौन है ? हम नहीं जानती हैं कौन वसुदेव का पुत्र है—यह भी हमें नहीं विदित है।

ऊधौ कहि को है जदुनाथ द्वारका को नाथ
कौन वसुदेव कौन पूत सुखदाई है।
कौन है निरंजन अलख अविनासी कौन
ब्रह्म हू कहाव कौन जाकी जोति छाई है।
ईन सों हमरी कहौ कासो पहिचानि
जानि याते रसरासि वाते मन में न भाई है।
प्रीतम हमारो मोर मुकुट लकुट वारो
नंद को दुलारो स्याम सुंदर कन्हाई है।

जब भला वे वसुदेव के पुत्र यदुनाथ अथवा द्वारका के नाथ को नहीं जानती हैं तो वे उस अलख अविनाशी अनन्त निराकारी स्वरूप ब्रह्म को कैसे जान सकती हैं। वे स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर देती हैं कि हमारा किसी भी निराकारी से सम्बन्ध नहीं

---

21 नना भए अनाथ हमारे।
मदन गुपाल वहाँ तें सजनी, सुनियत दूरि सिधारे।
वे हरि जल, हम मीन बापुरी कैसे जियहिं नियारे।
हम चातक चकोर स्यामल घन वदन सुधानिधि प्यारे।
मधुपुर बसत आस दरसन की, नैन जोइ मग हारे।
सूरज स्याम करी पिय ऐसी, मृतक हते पुनि मारे।।

है। हम तो केवल हमारे आराध्य से सम्पृक्त हैं। हमारा प्रीतम मोरमुकुट को धारण करने वाला नदनदन है जिसकी सुदरता निराली है।

कविवर रसखानि ने भी नटवर की सुदरता का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है। स्वय सूरदास ने कृष्ण के निस्सीम सौदय का अनुपम चित्र प्रस्तुत किया है। वे कहते है कि–'जिन गोपाल मेरो प्रन राख्यो मेटि वेद की कानि।' स्वय गोपियो ने अपने प्रियतम के अभिराम रूप का वणन किया है।[22]

हे उद्धव! यदि तुम हमारे प्रीतम नटवर के रूप को नही जानते हो तो हम उसके स्वरूप को बतादें। हमारा कन्हैया ब्रज भूमि की गली २ मे खेलता रहता है सिर पर सुदर सा मोर मुकुट दिये मुरली बजाता रहता है —

खरक मे खोरिन मे खेलिबे की गैरन मे
मोर को मुकुट दिये मुरली बजावै है।
चटक मटक भरयो हाथ मे लकुट लै के
पीत पट कटि बाघ लटक सा जावै है।
जमुना के तट वशीवट के निकट रसरासि
नटवर वेष बछरा चरावै है।
चित को चुरावै मुरि मुरि मुसकाव।
देखो साथ साथ आवै है ये हाथ नही आव है ॥

रसरासि की गोपियों का रसिक सव यापी है। मनोहर रूप धारण किये ब्रज की गलियो, कु जो मे गोपियो के साथ रास रचाता है, मुरली के मधुर स्वर म ललनाओ के मानस का मुग्ध करता रहता है वह नटवर वशधारी वशीवट के निकट गोवत्स चराता रहता है। हे उद्धव! हमारा रसिक चित चोर है मन्द मद मुस्कान बिखराता रहता है, वह हमारे साथ भी है और हाथ भी नही आता है। यहाँ रस रासि ने सीधे साध श दो मे गोपियों के मुख स अत्यन्त महत्वपूण बात कहला दी है। वह रसिक ब्रह्ममय है गोपियो के साथ खेलता रहता है फिर भी उन्ह तृप्त नहीं होने देता। उनके मानस मे प्रेमयोग की अतृप्त भावना को चिर जागृत रखना चाहता है।

---

22 रेख न रूप, बरन जाके नहि ताको हमैं बतावत।
अपनी कहो, दरस एस को तुम कबहू हो पावत?
मुरली अधर धरत है सो, पुनि गाधन वन वन चारत?
नन विसाल भौंह बकट करि देख्यो कबहू निहारत?
तन त्रिभग करि, नटवर वपु धरि, पीताम्बर तहि सोहत?
सूर श्याम ज्यो देत हमैं सुख त्यों तुम को सोऊ मोहत?

ईश्वर की सत्ता का सत्यचित्र रसरासि के शब्दो म स्वतः ही उभर कर आया है। सूरदास एव कृष्णदास के पदो मे श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का सरस चित्र सामने आया है।[23]

गोपिया कृष्ण के वियोग म बहुत सरल हो गई हैं। अब तो वे कृष्ण की हर आज्ञा को मानने के लिए स्वत ही प्रस्तुत है—

एक बेर फेरि बृजमडल मे आवो काह
अब सब सूधी भई मान हू न करगी।
दान दूँ मे नेक कहू न झगरेगी और
माखन-मलाई हू छिपाय कै न धरगी,
नई प्रान प्यारी हू की बानि हम मनि लैहे
बाकी ह्वै रहेगी रसरासि वासो डरेंगी।
दोऊ कर जोरि कोरि कोरि चाइन सो
दौरि दौरि कूबरी के पाइन मे परगी।

गोपिया का मान सीमायें तोडने के लिए प्रस्तुत हैं ये स्वत ही दधि माखन दान करती रहगी, कभी भी श्रीकृष्ण से किसी भी बात पर विवाद न करेंगी और दधि माखन की मटकियाँ भी छिपाकर नही रखेंगी। यहा तक वे प्रस्तुत हैं कि यदि रसिक शिरोमणि अपनी नवेली प्राण प्यारी कुब्जा के साथ रास विलास करेंगे तो उनके मानस मे किसी भी प्रकार की ईर्ष्या उत्पन्न नही होगी अपितु गोपियाँ नई प्राणप्यारी की दासिया बन कर रहेगी, रहगी ही नही अपितु उससे हर क्षण भयभीत रहगी कि उसके मन मे किसी प्रकार का आघात न हो। हे उद्धव! हम सत्य कहती

---

23 मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी! जदपि नदनदनहि नाना भाँति नचावति।
राखति एक पाय ठाढ करि अति अधिकार जनावति।
आपुनि पौढि अधर सज्जा पर करपल्लव सौं पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोप नासा पुट हम पर कोपि कँपावति॥
—सूरदास

मो मन गिरिधर छवि पै अटक्यो।
ललित त्रिभग चाल पै चलिकै, चिबुक चारु गडि ठटक्यो।
सजल श्याम घर बरन लीन ह्वै, फिरि चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास किए प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो।
—कृष्णदास

हैं कि नई महारानी के प्रति दोनों हाथ जोड कर सेवा मे रहेंगी। दौड दौडकर कूबरी रानी के चरणों में गिरगी। रसरासि की गोपियाँ उद्धव को कूबरी का मुसाहिब समझती है अत वे उद्धव को आश्वस्त कर देना चाहती है कि उसकी महारानी का हम किसी भी प्रकार का कष्ट नही होन देंगी, वे नि शक होकर यहाँ आयें।

रसरासि की गोपियाँ सहज भावना के साथ श्री कृष्ण की महत्ता को प्रदर्शित करते हुए उद्धव को कचोटती हैं मधुपुरी और गोकुल म कहाँ साम्यता ? नगर एव ग्राम मे तुलना का प्रश्न कहो ?

कहा हम गोकुल के गोपी गोप ग्वाल बाल
चचल चवाई चोर त्यो कठोर ही के है।
कहाँ वे कमल दल नेन कमला के नाथ
एक साथ खाय खारे खाट मीठे फीके हैं।
तीनो लोक माहि धन्य धन्य बृजवासी गयेजो
वन मुकति रसरासि प्रान पी के हैं।
उधो जू हमारे इहाँ दोउ हाथ लडवा है
आवैंत ऊनि के जो न आवें त ऊनी के है ॥

श्री कृष्ण कमला पति है उन्हे सभी व्यजन एक साथ खाने की अनुभूति है, हम गोकुल ग्राम क ग्रामीणजन चचल, धूत चोर एव निष्ठुर हैं। यहाँ रसरासि की गोपियो ने व्यजना को अपनाया है व सारे गोकुल को धूत से अभिव्यजित कर श्री कृष्ण की धूतता, बाल चोरियाँ, एव चचलता के सदभ मे स्पष्ट रूप से कह रही हैं। अत मे फिर सहज भावना के अनुसार गोपियाँ कह उठती हैं हे उद्धव ! कृष्ण आयें तो ठीक और न आयें तो ठीक हम तो उन्ही के अनुराग मे रमी हुई उन्ही को समर्पित हैं।

उद्धव जो निराकार ब्रह्म की महत्ता को प्रतिपादित करने आये थे वे गोपियो के सहज योग को देख कर अपने आप को भी विस्मृत कर बठे। गोपियो के मधुर एव सरल वचनो से प्रभावित होकर तथा उनके उत्कट प्रेम को देख कर अपने आप को नही रोक सके और गोपियो के समक्ष पराजित हो उठे—

उधौ अकुलाय धायपाय गहे गोपिन के
धन्य धन्य तुम बडी बढ भागी हो।
आगे जा म नन्द को नवेलो रसरासि तुम
घेरि राख्यौ पास वाके अग सग लागी हो।
तिहार दरस ही सो नीरस सरस होत
कहिय कहाँ लो जस प्रेम रस पागी हो।

लोक लाज त्यागी सदा जोग ही मे जागी
तुम भरम सो भागी, सावरे सो अनुरागी हौ ।

उद्धव ने गोपियो से कहा-तुम अत्यन्त भाग्य शालिनी हो श्री कृष्ण के प्रति सहज एव आत्मिक प्रणय से प्रतिबद्ध होकर उनकी भक्ति मे अपने आपको समर्पित किये हुए हो। सांसारिक मोहपाश का जो भ्रम है-तुम उसे तोडकर आत्मिक-प्रेम में तन्मय हो। सासारिक मर्यादाओं को त्याग कर तुम अपने अराध्य के प्रति समर्पित हो तुम्हारा प्रेम-योग वस्तुत स्तुत्य है। तुमने अपने अग अग मे नन्द नन्दन को समा रखा है, तुम्हारी देह एव आत्मा के अणु अणु मे श्याम की सुन्दर छवि समाई हुई है, तुम सभी स्वय श्याममय हो रही हो। तुम्हारे योग को देखकर नीरस भी सरस हो उठते हैं तुम धन्य हो ।

उद्धव गोकुल की गोपाङ्गनाओ के आत्मिक प्रेम को देखकर निराकार उपासना के महत्व को भूल जाता है-उसका हृदय कहता है —इधर सम्पूर्ण गोकुल ग्राम श्री कृष्ण के विरह मे विकल है और उधर स्वय श्यामसुन्दर वियोग मे विकल हैं —

इतें बृजवासिन को विरह वियाग
उत माधो के विरह उधो अति अकुलायो है ।
दोऊ ओर दोऊ सुखवारी नागर से
जसे तसे रसरासि रोम रोम विष छायो है ।
राधेकृष्ण, राधेकृष्ण एक रट लागि रह्यो
रोवत हसत, पुलाकित छवि पायो है ।
छकनि छकायो वाको चित चिकनायो
देखि कान्ह को सुहायो, दौरि गरे सो लगायो है ।।

सम्पूर्ण वातावरण रोते हसते हुए राधेकृष्ण की रटन में तल्लीन है। उद्धव मधुपुरी जाकर श्री कृष्ण का दृढ आलिंगन करता हुआ स्वय रो पड़ता है। श्री कृष्ण के समक्ष गोकुल का सम्पूर्ण वातावरण प्रस्तुत करता हुआ गोपियों के मन्द अनुराग भरे हृदय की चर्चा करता है। उद्धव श्री कृष्ण से निवेदन करते हैं-हे गोपी वल्लभ! तुम्हारे हृदय मे यह कहा से निष्ठुरता आगई है? तुम यहाँ मधुरी में बैठ कर विकल भावनाओं को बहलाने के लिए आतुर हो रहे हो और उधर सम्पूर्ण गोकुल ग्राम तुम्हारे विरह में आकुल होकर विकलता का भान कर रहा है। जल के अभाव में मछली जिस प्रकार तड़पती रहती है ठीक उसी प्रकार बृजवासी तुम्हारे अभाव में तड़प रहे हैं। उनके हृदय मे किसी प्रकार की विकृति नहीं हैं। वे किसी स्वार्थ से नहीं बंधे हुए हैं और न किसी भी लोभ से आबद्ध है। उनका भावुक-हृदय ~

सक्त एवं समर्पित हैं। वृजभूमि का सकल परिवार अपने ब्रह्म के प्रति विकल है। हे केशव ! तुम वृजभूमि में जाकर उनकी विकल आत्मा को आश्वस्त करो।

आयौ हा इहाँ लो तोलो निरखत आयौ
सग जोरी रसरङ्ग वोरी मोरे मन भाई है ।
अब ज्या अकेले देखि आखे अकुलाई
पर देखे कहा गोरो बिन कोरी स्याम ताई है ।
तुम अरु वे तो सदा रहत हिलेई मिले,
सो तो रसरासि कथा रसिकन गाई है ।
यहा मन आई यह सावरे कहाई
उहो आय छिपि रहे, इहा राधे को छिपाई है ।

राधे के बिना तुम्हारा यह श्याम वर्ण अधूरा है। एक-दूसरे का अभाव अपूर्णता का द्योतक है क्योंकि कृष्ण और राधा तो एक-दूसरे के पूरक हैं। तुम और राधा तो एक दूसरे से सदा सम्पृक्त रहे हो। आज तक तुम्हारे मन में यह बात कहा से आ गई तुम मधुपुरी में छिपे बैठे हो और राधे को वहा छिपा रखा है।

कवि ने अद्वैतवाद के सिद्धान्तों को सफलता के साथ लक्षित किया है।

यद्यपि रसिक पचीसी एक छोटी सी कृति है किन्तु कवि ने इसमें गोपियों के हृदय की भावनाओं का समुचित प्रवेश कराया है। अद्वैतवाद के सिद्धान्तों की सुरक्षा करते हुए कवि ने यह सिद्ध कर दिया कि भक्ति मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। साकार उपासना ही सर्वथा उचित है। भ्रमरगीत की परम्परा का निर्वाह करते हुए अनेक कवियों ने प्रेममय भक्तियोग के महत्व को प्रतिष्ठापित किया है।

डा० सत्येन्द्र ने 'कल्लोलिनी की भूमिका में उल्लेख किया है –' सूरदास का वियोगावस्था का वर्णन भी विशद और पूर्ण है। इसमें भी भ्रमरगीत प्रमुख है। वियोग में मुखर गोपिकाएं अपने हृदय की समस्त पीडित भावनाओं को उच्छ्वास की भाँति उद्धव से बात करते हुए भ्रमर को सम्बोधित करके उद्घाटित कर देती है।

जगन्नाथदास रत्नाकर ने भी लिखा है —

ढोग जायौ ढरकि परकि उर सोग जायौ
जोग जायौ सरकि सकप करिवयानि त ।
कहै रत्नाकर' न लेखते प्रपच ऐ ठि
वठि धरा लेखते कहूँ धौ नखियानि त ।
रहते अदख नाहि वेप वह देखत हूँ,
देखत हमारी जान मोर पखियानि त ।

उधौ ब्रह्मज्ञान कौ बखान करते ना नैकु,
देख लेते कान्ह जौ हमारी अखियानि तें ॥

रत्नाकर ने गोपियों के माध्यम से भक्तिकालीन भक्ति को बौद्धिकता से अभिमंडित करने की चेष्टा की थी। कवि रसरासि ने रत्नाकर की तरह बौद्धिकता का प्रदर्शन नहीं किया अपितु हृदय की भावनाओं की कोमल अनुभूति का स्पर्श किया है।

सत्यनारायण 'कविरत्न' की गोपियों ने अपने प्रिय को उपालम्भ देते हुए कहा है —

मोहन अजहुँ दया हिय लावौ।
मौन-मुहर कब लौं टूटैगी अरे ! न और सतावौ।
खबर बसतहू की कछु तुम कौ, विरद बानि बिसराई।
ऐसी फूलि रही सरसों सी, तब नयनन मे छाई।
अचल भये सब सचल देखिये, सरि से अश्रु बहावै।
सूरज पियरे परे मोह बस चिन्तित दौरे जावे।

कवि के हृदय में अन्तर्वेदना की उत्तप्त भावनाओं का अथाह समुद्र लहराता रहा है। कविरत्न के पदों में करुणा सहज रूप से उभर कर आई है।

कवि रसरासि की रसिक पचीसी में व्यंग्यात्मक भावों के साथ उपालम्भ की अभिव्यक्ति सफल रूप से हुई है। कवि ने अपनी सरस भावनाओं को ब्रज माधुरी में व्यक्त करते हुए रसिकों के हृदय को आप्लावित किया है।

रसरासि-कवित्त-शतक

रसरासि कवित्त शतक एक छोटी सी रचना है। जैसा कि नाम से ही विदित है कि यह शतक है-इसमें कवि रसरासि निर्मित १०१ कवित्तों का संकलन है। अन्तिम कवित्त में कवि ने विनय भावना प्रदर्शित करते हुए कृति समाप्ति की सूचना दी है। कवि स्वयं को श्री कृष्ण के प्रति समर्पित करता हुआ कहता है —

हो तो मंद छंद रस भेद को न जानो
कनु जाना ब्रजचंद जा के हार गुंज को गरै।
मुरली बजावै गाव चाह बरसावै
तीखे नैनन नचाय मुसकाय फूल से झरै।
रंगीलो छबीलो छकयो वै लरिक वार सदा
लाडिली के संग अंग उमगि भर ढरै।
जैसे दुरयो बादर प्रकास सविता कर
त्यो हिये माझ दुर्यो रसरासि कविता करै॥

कवि अपने आप का मंद बुद्धि स्वीकारता हुआ कहता है-मैं साहित्यशास्त्र का कोई महान् पंडित नहीं हूँ और न छंद शास्त्र का विशिष्ट ज्ञाता ही, रस के भेदों से भी अपरिचित हूँ-मैं तो केवल श्रीकृष्ण के उस रमणीय रूप से परिचित हूँ-मैं बंसीवट के निकट-कालिंदी कूल पर मुरली के मधुर निनाद में मेरी आत्मा मुग्ध हो जाती है उसकी मृदु मुस्कान में पुष्प अपना हास बिखेर देते हैं।

मैं कवि हूँ अथवा सृजन शील हूँ-यह अहं मुझ में लेशमात्र भी नहीं है मैं स्वयं कुछ भी नहीं हूँ मैं कर्ता हूँ-यह भी उचित नहीं है अपितु मेरी अन्तश्चेतना के भीतर से कोई अज्ञात शक्ति मुझे प्रेरित करती हुई सृजन शील है। कवि का आशय निरूपण है कि जिस प्रकार नभ में बादलों की ओट में छिपा हुआ सूर्य अपने प्रकाश से जगत् को आलोकित करता है—उसी प्रकार मुझ में-अर्थात् मेरे अन्तर्मन में बैठा हुआ ईश्वर स्वयं कविता की रचना करता है।

कवि अपने आराध्य के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है, वह स्वयं को कर्ता न मानता हुआ कर्ता का करण मानता है–वह स्वयं तो एक माध्यम मात्र है–जिसके माध्यम से जगन्नियन्ता सृजनशील है।

साहित्य के मूल प्रयोजन का चरम लक्ष्य भी मुक्ति है–और वह मुक्ति समर्पण के माध्यम से स्वतः हो जाती है। कवि की विनय भावना का एक अच्छा उदाहरण है।

रसरासि की धारणा है कि कवि के लिए नैतिकता आवश्यक धर्म है। कवि समाज का द्रष्टा एवं स्रष्टा है उसके हाथ में सांस्कृतिक-चेतना का सूत्र है वह परिवर्तन के मंत्र फूंकने में सिद्धहस्त है। यदि कवि ही नैतिकता के पथ पर नहीं चल सकेगा तो वह राष्ट्र एवं समाज की चिर संचित निधि की सुरक्षा करने के लिए कभी भी वचन बद्ध नहीं हो सकता है। कवि समाज में भी कवियों के नाम से कैसी विसंगति है इसका उल्लेख करते हुए रसरासि ने लिखा है —

कलि के कितेक नर अति मति कूर भये
पूरि अभिमान सीख साखि के कवित्त छंद ।
अरिबे को आवें क्यों हूँ समुभिन पावें
भूठ उक्ति बहरावें मूढ महामति मंद ।
कवि रसरासि देखो इत पै अचम्भो एक,
एक ओर और और एक ओर वे अकेले स्यंद ।
मोरे गुन मुंदी होत मुंदी होत चंद्रिका लौं
फुंदी ज्यों उडत तक रहत सुदीप मंद ।।

रसरासि का कहना है कि इस कलियुग में अनेक कवि होते जा रहे हैं असद् कर्मों में प्रवृत्त होने वाला भी कवि बन कर कवित्त लिख रहा है, साथ ही उसे इस बात पर अभिमान भी है कि मैं कवि कर्म में आसक्त हूँ। कलियुग के ये अभिमानी कवि अध्ययन से विरत हैं एवं ज्ञान से शून्य हैं बात बात पर विवाद करने को तैयार रहते हैं, जबकि तर्क शक्ति के आधार पर कुछ नहीं कहते हैं प्रतिभा का दुरुपयोग करते हुए कुतर्कों के माध्यम से जीवन को संत्रस्त कर रहे हैं। कवि को इस बात पर अत्यंत आश्चर्य है? कवियों की प्रबल बाढ़ देखकर ही सम्भवतः यह कहा गया होगा—

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ।।

प्राचीन आचार्यों ने कविता का मूल कारण प्रतिभा स्वीकारते हुए शास्त्र ज्ञान एवं अभ्यास को मुख्य सहायक माना है किन्तु आज प्रतिभा शास्त्र ज्ञान एवं

अभ्यास से शून्य रहते हुए केवल शब्दों के साथ अभिसार करता हुआ दिखाई देता है। आज धरती की मिट्टी में बीज तो बिखेरे जा रहे है किन्तु खाद एवं जल के अभाव में अच्छी फसल नहीं लहलहा पा रही है अपितु घास के छोटे छोटे तिनके सूखते नजर आ रहे हैं।

यह स्थिति आज ही नहीं अपितु हर युग में रही होगी। काव्य आलोचकों के संदर्भ में तो संस्कृत व हिन्दी-साहित्य के अनेक कवियों द्वारा भला बुरा कहा गया है।

कवि रसरासि काव्य का पारखी है इसमें विनय एवं श्रद्धा की भावना है वह कवि में अभिमान का विरोधी है। कवि को अपने गुरु एवं आचार्य के प्रति श्रद्धा रखना आवश्यक है। कवि को स्वार्थपरता का आचरण नहीं करना चाहिये। आज कवि स्वार्थपरता की चरम सीमा पर पहुंच गया है। वादों की भीड़ में उलझ कर अवसर वादी हो गया है। जो कल तक गीतों के गायक थे वही आज उनका शव ढोते हुए आत्मविज्ञापन करते फिर रहे हैं। कवि रसरासि भी कवियों में व्याप्त स्वार्थपरता से खिन्न है —

जिन के किये कवित्त सीखिवे शिष्य होत
सेवक सुहृद होत होत अति दीन है।
बडेन के संग बडी गरं पहिचानि ह्वै है
यहै लोभ ज्यौ तौ लौ रहत अधीन है।
जब रसरासि वाकौ मतलब सिद्ध होत
तब ही तें जान्यो जात निपट नवीन है।
फेर तिनही सा गुरुदेव भयो बातें करें
असो दुष्ट जीवन कौ हृदय मलीन है ॥

संस्कृत साहित्य के अनेक कवियों एवं आचार्यों ने काव्य समीक्षा पर अनेक पद्यों की रचना की है। उन्होंने भी इमीटेशन के ढेर में से सच्चे हीरों को परखने का प्रश्न खड़ा किया है।[1]

1– किं तेन किल काव्येन मृद्यमानस्य यस्य ता।
उद्गीरिव नायान्ति रसामृतपरम्परा ॥
—जयमाधव

जयमाधव,[2] त्रिविक्रम,[3] भट्ट[4] बाधर[5] आदि कवियों ने कुकवियों के बाब स्पष्ट कह दिया है कि व ज्ञान शून्य हैं व्यर्थ ही शब्दाडम्बर फैला रहे हैं।

आज कवि राजनीति से प्रभावित हैं, तनिक स्वार्थ अथवा लोभ के वशीभूत होकर सृजनरत हैं। कवि रसरासि की धारणा है कि कुछ कवि पतन के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। इनमें परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति नहीं है, संकल्पहीन हैं एवं बुद्धि शून्य हैं। ये सद्कार्यों में दोष परखने वाले एवं चापलूसी करने में सिद्धहस्त हैं। इन्हें दुष्प्रवृत्तियों को उभारने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है य कपट का प्रश्रय लेकर व्यावहारिक जीवन जीने के आदि हो गये हैं। कुबुद्धि से व्यापार करने वाले कवियों को काक की संज्ञा देते हुए कहा है —

कटि कसि बढ़ें है रसातल के राहगीर
लोभ के लुभाये जेवकत के आक-वाक है।
काहू को सुरेस कहे काहू को महेस कहे
देवन के दोषी बड़े जीभ के चलाक हैं।
कवि रसरासि जिन्हें लोक पर लोक को
सकोच है न सोच महा कपटी कजाक हैं।
कायर हैं कुबुद्धि हैं क्रोधी हैं कुसंगी कामी
कुच्छित कुचीलवे कुकवि कारे काक हैं।।

2– अप्रगल्भमापदन्यासमता जननीरागहेतव ।
सन्त्येकेबहुला लापा कवयो बालका इव ।
—भट्टत्रिविक्रम

3– मुखमात्रेण काव्यस्य करोत्यहृदयो जन ।
छायामच्छायमपि श्यामा राहुस्तारापतेरिव ।
—भट्टबाण

4– पदद्वयस्य संधान कर्तुमप्रतिभा खला ।
तथापि परकार्येषु दुष्करेष्वप्य सभ्रमा ।
—बोधक

गणयति नापशब्द न वृत्तभङ्ग क्षति न चार्थस्य ।
रसिकत्वेनाकुलिता वश्यापतय कुकवयश्च ।।
—अज्ञात

ग्राचाय वल्लभन्देव, प्रगट मखक एवं भदन्त रवि गुप्त ग्रादि कवियो ने भी श्रेष्ठ एव प्रसद् कवि के सदभ म बहुत कुछ लिखा है ।[6]

कवि रसरासि रामानुज सम्प्रदाय के सदस्य रहे थे ग्रत मगलाचरण के रूप मे कवि ने राम, लक्ष्मण एव शक्तिमयी वदेही की वन्दना की है । प्रस्तुतत पद्य म कविने सीता के सदभ म लिखा है —

जनक विदेहजू की भूमि पटरानी तहा
स्वय जोति जानकी ग्रनूप कन्यका भई ।
उमा सी रमा सी दासी सची शारदा सी
जा की करत खवासी ग्रौर कोने समताई ।
राघव दिनेस की प्रभा सी ह्व प्रकासी
रसरासि रूप सपति सुहाग भाग सो छई ।
महिमा ग्रपार कहि पावै कौन पार,
वेद गावै इक सार तऊ कीरति नई नई ॥

सीता को शक्ति मयी मानते हुए विविध रूपो म कवि ने वर्णित किया है । जानकी ज्योतिस्वरूपा है जगन्नियन्ता की सरस्विका है इसकी सवा मे उमा, रमा,

---

6 ग्रवसरपठित सव सुभाषित्व प्रचात्यसूक्तमपि ।
क्षुधि कदशनमपि नितरा भोक्तु सपद्यत स्वादु ॥
— वल्लभ देव'

विपुलहृदयाभि योग्ये खिद्यति काव्ये जडो न मौर्ख्ये स्वे ।
निन्दति कचुकमव प्राय शुष्कस्तना नारी ॥
—प्रगट

ग्रनातपाण्डित्यरहस्यमुद्रा
ये काव्यमार्गे दधतभिमानम् ।
य गारुडीयान धीत्य मत्रा
हालाहल स्वादनमारभन्ते ॥
—मङ्खक

व्याख्यातुमेव केचित्कुशला
शास्त्र प्रयानतुमलमन्ये
उपनामयाति करान
रसास्तु जिह्वव जानाति ।
—भदन्त रविगुप्त

द्राणी एव सरस्वती दासियाँ बन कर सेवा करती रहती है। वैदेही की तुलना किसी
न्य देवी से की ही नहीं जा सकती है जिसका तेज सूय के प्रचण्ड आलोक सदृश है,
। की राशि है इसकी महिमा अनन्त है वेद निगमागम आदि भी कीर्ति-वर्णन
रने में समर्थ नहीं हो सकते हैं—आज उसी शक्तिमयी ज्योतिस्वरूपा सीता की कवि
र्ति गा रहा है।

श्री राम एव लक्ष्मण के सौंदय का चित्रण करता हुआ कवि अपने आप को
ाभृद्ध समर्पित करता है।—

सोहत किशोर गोरे सावरे कुवर दोऊ
कसे कटि भाथा मुनि कौसिक के सग हैं।
दोऊन के रूप माझ होड सी परत देखि
आवें चक चौंध सी जात कोमल मृ अग हैं।
दोऊ चाप बान लिए आये दवै अनग मना
तोरि हैं धनुष एई ऐसे जोर जग हैं।
रसरासि प्रभु की निकाई सुनि जान की के
नैनन मे लाज छाई मन मे उमग है॥

महा-कवि तुलसी दास ने राम-लक्ष्मण के सौंदय का चित्रण करते हुए वर्णन
किया है।[7]

श्री राम का चरित्र एव उनके जीवन घटनाओं के सदर्भ में कवियों ने विविध
दृष्टियों से अनेक चित्र अकित किये हैं। कवि रसरासि ने भी राम चरित के सका

---

7 लता भवन ते प्रकट भए, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ।
सोभा सीव सुभग दोऊ बीरा।
नील-पीत-जल जाय सरीरा।
मोरपख सिर सोहत नीके।
गुच्छ बिच बिच कुसुम कली के।
भाल तिलक स्रम बिंदु सुहाये।
स्रवन सुभग भूषन छवि छाये।
विकट भृकुटि कच घूघर वारे।
नव सरोज लोचन रतनारे।
चारु चिबुक नासिका कपोला।
हास विलास लेत मनु मोला॥

छाड के सदभ मे समुद्र बधन का चित्र उपस्थित किया है —

धसवि मसवि गई धरनि चमू के भारकस की
कमठ पीठि से सह्व कौल च्यौ सीस ।
छिपि गयौ भान छाये भूमि आसमान
धाये भाल्ल वलवान महाकाल से अवलकीस ।
रसरासि प्रभुजी के हुकम तें ह्वद करिजू
हुज हुमि घर उखारि वाध्यो वारि ईस ।
लका भई सकाडका वज्यौ डका राघव कौ
हुका कियौ तोरिवे को रावन की भुजा बीस ।।

कवि रसरासि ने राम चरित्र के सदभ म कोई विशिष्ट उपलब्धि प्रदान नहीं की है अपितु पिष्ट पेषण मात्र किया है । आज तक जो कुछ वणन किया गया है उसकी पुनरावृत्ति मात्र है । कवि के शब्दो से हम इतना ही कह सकते हैं कि सागर पर बाँध बाधने से वसुधा प्रकम्पित हो उठी कौल कमठ का सिर डोलने लगा, सूय भयभीत हो उठा, लका मे भय छा गया रावण के विनाश के सूत्र दिखाई देने लगे । राम का अद्भुत पराक्रम देख कर सकल त्रिलोकी प्रकम्पित हो उठी । महा कवि तुलसी ने समुद्रोत्तरण का वणन इस प्रकार किया है । [8]

श्री राम ने समुद्र बधन से पूव श्री शिव की आराधना कर रामेश्वर की स्थापना की थी—उस सदभ मे शिव एव राम के अन्योन्याश्रित सम्बन्धो का उल्लेख करते हुए कविने कहा है —

रामचन्द्रजू के चन्द्रचडजू की भक्ति सदा
चन्द्र चूडजू के मुख रामचन्द्र आठो जाम ।

---

8 इहा सुवेल सल रघु बीरा ।
उतर सेन सहित अति भीरा ।
सल सृग एक सुदर देखी ।
अति उत्त ग सम सुभ्र बिसखी ।
तहे तरु किसलय सुमन सुहाये ।
लछिमन रचि निज हाथ डसाये
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला ।
तहि आसन आसीन कृपाला ।
—"राम चरित मानस"

एतो धरें गगा वे प्रसादी बील पत्र धरें
राम कहे रामेश्वर ईश्वर कहत राम ।
आपस मे ऐसी रसरासि हैं प्रणति प्रीति
सेवक सेव्य सखा सोहे तन गौर श्याम ।
एक अधिकाई भूप रूप रघुराई यह जागी
हैं जुगादी महामृत्युजय जा की नाम ॥

रामचन्द्र शिव के अनन्य उपासक रहे हैं और शिव के मुख से सदा-सर्वदा राम नाम ही छाया रहता है । राम शिव को रामेश्वर तथा ईश राम कह कर एक दूसरे से सम्पृक्त हैं, एक दूसरे मे घनिष्ठ प्रीति भावना है सेवक सेव्य के भावों से अनुप्राणित हैं।

राम समृद्धि के प्रतीक है भोगवाद के बिम्ब हैं तो शिव विरक्ति एवं योग-साधना की प्रति मूर्ति हैं।

श्री शिव के सदर्भ म किसी कवि ने कहा है —

पूजन रामचन्द्र जब कीन्हा ।
जीत के लक विभीषण दीन्हा ॥
× × ×
सत्य शपथ गौरी पति कीन्ही ।
तुमने भक्तहिं सब सिधि दीन्ही ॥

श्रीराम विष्णु के अवतार के रूप में माने गये हैं-जो जगत् के पोषक हैं तथा स्रष्टा एव सरक्षक है और शिव जगनियन्ता के रूप म स्वीकृत किये गये हैं।

श्री राम एव शिव के पारस्परिक सम्बन्धों का उल्लेख रसरासि ने सुन्दर रूप म उपस्थित किया है।

हिन्दी साहित्य के अन्य कवियों ने भी शिव के सदर्भ म अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किये हैं —

गगा महिमा—

कवि रसरासि ने अपने कवित्त शतक मे गगा का वर्णन किया है । पारम्परिक मान्यता के अनुसार कवि ने भी इसे जगत् को पावन एव निर्मल नदी की सज्ञा दी है । पौराणिक-कथा के अनुसार श्री गगा की उत्पत्ति विष्णु के पद-नख म मानते हुए इसकी महिमा का वर्णन किया है । हरि के चरण स जन्म लेने के कारण ही शिव ने इसे श्रद्धा के साथ अपने सिर पर धारण किया है । सभी सुर सिद्ध गन्धर्व यक्ष

एव नर-नारि इसकी सेवा करते हैं। कवि की मान्यता है कि भागीरथी के पावन सलिल से ससार के महान पातकी पामर भी अपने पापो के प्रक्षालन करने म समथ होते हैं —

गगाजू के जल की विमलता कही न जात
हरि पद कजतें चलत जाको सोत हैं।
याही महिमा त ईस सीस पै चढाय राखि
सेवे सुर सिद्ध साध विप्रन के गोत हैं।
रसरासि धन्य धन्य भागीरथ भूरि भाग
जगत मे जाके उपकार को उदोत है।
पामर पतित पीन पातकी प्रचड तें
उन्हाय न्हाय प्रभूजी के पुरवासी होत है।

रसरासि की तरह राजघराने के अ य किसी कवि ने भी गगा की पावनता एव महिमा का वणन किया है [9]

रसरासि गगा से अपने उद्धार के हित प्रायना करते हुए कहते है -

पावन प्रवाह देखे दोष दुष दाह होत
हिय मैं उछाह होत पातक नसत है।
न्हान किये ध्यान किये जा को जलपान
किये पुन्य अनेक देवलोक मे हसत है।
रसरासि मोसे महा अधम उधारिवें को
देव धुना धारा तीनो लोक मे लसत है।
सदा सिव गगा सोहे गौरि अरधगा
दखी गगा गुनरासि ईस सीसपे वसत है।

---

9 श्री हरि क पद पकज तें जल की चली धार गुढार ढली है।
हव शिव शीश सुमेर के ऊपर भू पर हात जि हे गति ली है।
सो जस पावन गावन को कहि आवन सो मन मोक्ष भली है।
दे निज दीनन मीनन की गति आप त्यो पाप बुहाय चली है ॥

हेत भागीरथ रत रहै सुख है वदि वेद पुरान विचार।
सागर सा स मद किते इक जानत हैं जस जासन हार।
ए गुन गग अगम असक समक कहो कवि के कुल सार।
बाप क पाप को आप मिटावन ईश के सोस चढि डर दारें ॥

गगा नदी के स्नान का महत्व बताते हुए कवि ने गगा को शिव की अर्धांगिनी रूप मे स्वीकारते हुए इसकी महत्ता को और भी प्रतिपादित किया है। भारतेन्दु[10] एव रसखान[11] ने गगा के सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किये हैं। पद्माकर का गगा-वर्णन रसराशि के वर्णन से तुलनात्मक दृष्टि से देखा जा सकता है।

गगा नदी की तरह भारत की अन्य नदी यमुना का चित्रण कवि ने विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे भक्तिकाल एव रीतिकाल के कवियो ने यमुना को अत्यधिक महत्व दिया है। लीला पुरुष श्री कृष्ण की लीला-भूमि बृज रही है और बृजभूमि मे यमुना नदी अजस्रगति से बहती रही है। यमुना के तट पर गोकुल, मथुरा एव वृन्दावन आदि लीला क्षेत्र रहे हैं। श्रीकृष्ण का जन्म से ही यमुना के साथ सम्बन्ध रहा है। कवि गण ने यमुना को देवी रूप मे स्वीकृत करते हुए श्री कृष्ण की प्राण वल्लभा के रूप मे मान्यता दी है।

---

10 नव उज्जवल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि मोहनि।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन-मन विविध मनोरथ करत मिटावत।

—गगा वर्णन (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

11 बैद की औषधि खाइ कछू न करै बहु सजम री सुनियोसें।
तो जलपान कियो रसखानि, सजीवन जानि लियो सुख तोसौं।
एरी सुधामयी भागीरथी ! सब पथ्य कुपथ्य बनै तुहि पोसें।
आक धतूर चबात फिरै, विस खात फिरै सिव तेरे भरोसे।।

—रसखान

12 कूरम पै कोल, कोल हू पै शेष कुंडली है
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहै पद्माकर त्यों फन पै फबी है भूमि
भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की।
रजत पहार पर शंभु सुर नायक है
शंभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
शंभु जटा जूटन पै चंद की छुटी है छटा
चंद की छटान पै छटा है गंगा धार की।

—'गंगा गौरव'

कवि रसरासि ने कालिन्दी का वर्णन करते हुए लिखा है —

पंकज प्रफुल्ल सोई सुन्दर मुखारविंद
चंचल के मीन सोई अंखिया उमगनी।
सोहत सिवार सौ तौ वासर सकुमार
महा करत कटाछि वक वीची भुवभंगिनी।
भूमि हरियारी सोई ओढि रही सारी देखौ
सांवरी सखी है किधौ जमुना तरंगिनी।
चक्रवाक बसत लसत सोई पीन कुच
रसरासि प्रभु घनस्याम अंग संगनी ॥

कवि ने कालिंदी को घनश्याम की संगिनी मानते हुए नारी रूप की सुन्दर अभिव्यंजना की है। प्रफुल्ल कमल सा मुख, चपल मीन से उमंग भरे नयन, चंचल तरंगित कटाक्ष, हरित परिधान में श्याम वदन को सिमटे हुए चक्रवाक सदृश पीनस्तनी सुन्दरी श्यामवर्णा यमुना श्याम सुन्दर की प्रणयिनी है। हिन्दी के विविध कवियों ने यमुना के सौंदर्य का मनोरम चित्र उपस्थित किया है।

विनय-भावना—

भक्ति काल के कवियों में विनय भावना के अपूर्व दर्शन मिलते हैं। स्वयं को मन्मति एवं अवगुणी मानते हुए अपने इष्ट से अपने उद्धार की कामना करते हैं। कवि रसरासि ने भी कहा है —

करिल रे सुकृत सुमिरि लै नरहरि
परि हरै ओढ रटरनि मोह जाल की।
रसरासि तेरे हाथ चिंतामनि है रे
यों ते ओट गहि ल रे प्रहलाद प्रतिपाल की।
करत कहा है कहा करिब को आयौ
को है तू कहा है यह कैसी गति काल की।
गई सो तो गई अब रही सो तो राखि
एक एक लव जात लाख लाख लाल की।

कवि रसरासि श्री कृष्ण को ही सर्वस्व मानते हुए अपने इष्ट के प्रति समर्पित होते हुए मुक्ति कामना करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है –

'श्रीकृष्ण ही पर ब्रह्म है जो दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर पुरुषोत्तम' कहलाते हैं। आनन्द का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम रूप में रहता है-अतः यही श्रेष्ठ रूप है। पुरुषोत्तम कृष्ण की सब लीलायें नित्य हैं। वे अपने भक्तों के लिए व्यापी वैकुंठ में अनेक प्रकार की क्रीडायें करते है। गो लोक इसी व्यापी वैकुंठ का

रास रचनामृत मे भी उल्लेख मिलता है।[13] कवि रसरासि भी श्रीकृष्ण की लीला-सृष्टि मे प्रवेश करने का अभिलाषी है। वह इस ससार के माया-जाल से मुक्त होकर परम ब्रह्म म लीन होना चाहता है और अपने मन को समझाते हुए कहता है—तू सुकृत कर्मों म प्रवृत्त हो परम ब्रह्म तेरा उद्धार अवश्य करेंगे। इस न प्रह्लाद, द्रौपदी आदि अनेक भक्तो को माया जाल से निकाल कर अपने लीला क्षेत्र म प्रवेश कराया है। अत मेरे मन! तू मेरी शिक्षा मान कर नदनदन की भक्ति मे रत रहते हुए गीत गाता रह —

एरे मन मेरी सीख मानि ले रे मोह माया
तजि दे रे पायन को धौंकियै।
तौ सौ और कोरे या ते करत निहोरे
कहा भटकत भोरे नेक चचल तारो कियै।
आज लौ तौ तेरी रसरासि चोपटेरी
अवलोक लाज भार सब भार ही मे झौकिय।
घरी घरी पल पल हल चल दूरि डारिगो
गोकुल के चद्रमा को वदन विलोकिय।।

कवि का कहना है कि ससार माया ग्रस्त है,—इस ससार मे भ्राति के सिवा कुछ नही है। मानव मोह मद-लोभ-मोह मे भटकता हुआ असद् कार्यो की ओर प्रवृत्त होता रहता है और इस तरह वह परम पद की प्राप्ति से बहुत दूर हो जाता है। कवि गोकुल क चद्रमा नदनदन के रूप पर मुग्ध होकर उसकी भक्तिभाव ना म मौन प्रीत रहन की कामना व्यक्त करता है।

महाकवि सूरदास ने भी विनय पद गाते हुए कहा है हे मन! तू माधव सो

---

13 परम प्रहलाद की पुकार सुनि ताहि काल
करि विकराल खभ फारि छवि छाई है।
जिते अवतार जग व्यापित है बार बार,
कीरति की कला कान कलित कमाई है।
दौरत दुवारिकातें द्रौपदी दुवार गयो
और कहा कहों गाय से सन सुनाई है।
मेरी वर दीन बन्धु देर क्यो दयाल अब
तारन को वारन को वार न लगाई है।

—राजरसनामृत' पृ.

प्रीति कर। यह संसार काम क्रोध मद लोभ मोह से ग्रस्त है—तू माया जाल से मुक्त होकर प्राणपति माधव की शरण में जा जहाँ तुझे मुक्ति पद प्राप्त हो सकता है।[14]

कवि रसरासि इस संसार में श्री कृष्ण को ही मुक्ति-पद के दाता एवं उद्धार करने में सक्षम मानता हुआ कहता है —

देखि तुम्हं रसरासि कृपा निधि
मो मति की गति को गहि गरो।
रावरो पारन पाय हैं तो
इत बार के आयवे हू नहिं फरो।
जो तरिहत तो चाहे कहा
अरु बूडि हूं तो कह्यो कौन हि टरो।

14 मन रे! माधव सो करि प्रीति।
काम क्रोध-मद लोभ मोह तू छाडि सब विपरीति।
भौरा भोगी बन भ्रमै मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै कमल बंधावै आप।
सुनि पर मिति पिय प्रेम की चातक चितवन पारि।
घन आसा सब दुख सहै अनत न जाचै वारि।
देखो करनी कमल की कीहो रवि सौं हेत।
प्रान तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सलिल समेत।
दीपक प्रेम न जानई, पावक परत पतंग।
तनु तो तिहि ज्वाला जरयो चित न भयो रस भंग।
मीन वियोग न सहि सकै नीर न पूछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहिं, रति न घटै तन जात।
प्रभु पूरन पावन सखा, प्रानंनि हू को नाथ।
परम कृपालु दयालु है, जीवन जाके हाथ।
गरभ वास अति त्रास मे जहा न एको अंग।
सुनि सठ तेरो प्राण पति तहऊ न छाडयो संग।
जो प जिय लज्जा नही कहा कहीं सौ बार।
एकहू आंक न हरि भजे, रे सठ, सूर, गंवार॥
—सूरदास

सो सौं कहू नहिं दोख परै अब
हरि दसो दिस तो तन हेरो ।

महाकवि सूर ने भी अपना मन श्याम म ही रमा दिया था।[15] कवि ने पूर्णत अपने आपको परम ब्रह्म स्वरूप माधव के प्रति समर्पित कर दिया है। उसे विश्वास है कि इस ससार म वह एक मात्र उद्धारक है। कवि तो उनके चरणो में गिर कर विनय-गीत गाने म तत्पर है वह उद्धारक चाहे तो उद्धार करे अन्यथा इस भव सागर मे अर्जान के थपेडा म भटकता हुआ छोड द। क्योकि कवि तो एक ही देव को अपना आराध्य मानता है, उस परम सत्ता का अ श ही अपनी आत्मा को मानता है। जब वह स्वय परमात्मा का अ श है तो वह ज्योतिपिण्ड अपनी सत्ता से किसी भी अणु को दूर नही रख सकता है, स्वभावत ही अपने अ श को अपने में लय करते हुए ही पूर्ण कहला सकता है। मन अपने आपको परम दीन एव मन्मति मानता हुआ उसे अपने सुकृत्यो के प्रति स्मरण दिलाता हुआ निवेदन करता है –

दीन दुखी दुज हू वगी दास
दाय करिकै दुख दोष हरो जू ।
ग्राह गह्यौ गज ज्यों कलिकाल
बिहाल कियौ कर चक्र चरौ जू।
आरतिवत पुकारत है
कै तो सोच करौ न तौ मोक्ष करौ जू।
जो पैं कहावत हौ रसरासि
तौ नन्द कुमार सुढार ढरौ जू।।

अपने आपको महा अपराधी एव पतित मानते हुए कवि ने अपने मोक्ष की प्रार्थना करने क लिए नद नदन से आग्रह किया है कि यदि आप वस्तुत अपने नाम को सार्थक करना चाहते हैं तो मेरा उद्धार कीजिये।

कविवर बिहारी ने भी अपने गोपाल से कहा है कि आपको मेरा उद्धार

---

15 मेरो मन अनत कहा सुख पाव ।
जस उडि जहाज को पछी, फिरि जहाज प आव ।
कमल नन को छोडि महातम, और देव को ध्याव ।
परम गग को छाँडि पियासो दुरमति कूप खनाव ।
जिन मधुकर अ बुज रस चाख्यौ क्यों करील फल भाव ।
सूरदास प्रभु काय धेनु तजि, छेरी कौन दुहाव ।

करना है, मैं कब से आपके नाम की रटन रट रहा हूँ। [16] आप तनिक गुण गान करने से ही प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु मुझे तो इसमें सन्देह की प्रतीति होती है, यदि नहीं तो आप मेरा उद्धार क्यो नहीं करते ? आपने आज तक गीध, गज आदि अनेक जीवों का उद्धार किया है इस बार मुझ जैसे व्यक्ति का उद्धार करना है किन्तु हे गोपाल ! तुमसे असम्भव है। इसी प्रकार तुलसीदास ने अपने राम से अनुरोध किया है। [17] मेरा उद्धार करो, मुझे इस भवसागर से पार करो।

अपने सुदृढ़ विश्वास की भावना को व्यक्त करता हुआ रसराशि कहता है —

तीर ही परयौ हो तन पीर ते भरयो हो
निज भूल तें टर्‌यो हो परि कैसे टरि जाय हो।
जो लो घर सांस तो लो यह है विसवास
टरि जैहे रसरासि प्यास वलि के मिटाय हो।
जीवन की जीव मूरि काहे को करत दूरि
तिहारो सुजस भूरि निसि दिन गाय हो।

---

16 कब को टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाई।
तुमहू लागी जगत गुरु ! जग नाइक, जग बाइ ॥
थोरेई गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहू कान्ह ! मनो भए आज काल्हि के दानि ॥
कौन भांति रहि है बिरद, अब देखिये मुरारि।
बीधे मोसो आइके, गाधे गीधहि तारि ॥
ज्यो ह्वै हौं त्यो होऊं गो, हौं हरि ! अपनी चाल।
हठु न करो, अति कठिन है मो तारिबो गुपाल ॥

बिहारी—

17 काहे तें हरि मोहि बिसारो।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ ! सभारो।
पतित पुनीत दीन हित असरन-सरन कहत श्रुति चारो।
हौं नहि अधम सभीत दीन ? किधो बेदन मृषा पुकारो।
खग-गनिका-गज-ब्याध पांति जहं तेहू हौं बठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान ! परसत पनवारो फारो।
नाहिन नरक परत मो कहं डर जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दास तुलसी, प्रभु नाम हू पाप न जारो।

याते हित वाय [मान लीजियै रचाय
दीन रावरो कहाय अब कोन को कहाय हो ।।

कवि रसरासि का आश्रयदाता राजा प्रतापसिंह वृजनिधि ने भी विनय पदो की प्रचुर मात्रा मे रचना की है ।[18] वृजनिधि एव रसरासि के आराध्य नन्दनन्दन ही हैं । दोनो ही कवि एकमात्र उद्धारक के रूप मे माधव को ही स्वीकारते हैं । दोनों ही प्रगत आप की विनय भावना की अतिशयता से सिमेटे हुए शरणवत्सल गोविन्द से मुक्ति के हित आग्रह करते हैं । दोनो ही कवियों का उद्धारक केशव अनन्त गुणों से पूरित है और अनेक पापियो का उद्धारक रहा है—इस दृढ विश्वास के साथ वे अपने आराध्य के प्रति विश्वस्त हैं ।

कवि रसरासि ने अपने आराध्य के विभिन्न अवतारों की चर्चा करते हुए कहा है –

काहू की सहाय करी बावन वराह ह्वै के
कहू नरसिंह रूप धारि के सुधारे काम ।

---

18 तुम बिन नाही ठिकानो मोको ।
भव सागर मैं तुमही, सब ही मो तारत जोर नहिं तोको ।
अब तो कष्ट बहुत मैं पायो तातें सरन तिहारे आयो ।
बजनिधि तुम्हारी ओर निहारो, मेरे कष्ट सबै झट टारौ ।।
—वृजनिधि पद सग्रह पृ २४६

प्यारो ब्रज ही को सिंगार ।
मोर पख वा लकुट बासुरी गर गुजन को हारी ।
बन बन गोधन सग डोलिबो गोपन सो करि यारी ।
सुनि सनि क सुख मानत मोहन, ब्रजवासिन की गारी ।
विधि सिव, सेस, सनक, नारद से जाको पार न पाव ।
ताको घर बाहर ब्रजसुन्दरि नाना नाच नचाव ।
ऐसो परम छबीलो ठाकुर कहो काहि नहि भाव ।
ब्रजनिधि, सोई जानि है यह रस जाहि स्याम अपनावै ।
—वृजनिधि मुक्तावली' पृ १५८

मेरे पापन को है नाही ओर ।
जो मेरे कहू पापनि गिनि हो तो मोको कहू नाहिन ठौर ।
आछे कम नाहिं हैं मोमे खोटे कम भरे हैं कोर ।
ब्रजनिधि पीर हरोगे मेरी तुम ही सो है जोर ।
—वृजनिधि पद सग्रह पृ २४७

कहू मछक भये भये हरि हस कहू
कहू रामकृष्ण कहू राम और परसुराम।
पूत भये पिता भये सेवक सुहृदभये
कहियें कहा लौ रसरासि हो कृपा के धाम।
औरन के भाग को बडाई कौन कियो करै
हमारे हू भागतें भये हौ प्रभु सालिग्राम।

कवि ने श्रीकृष्ण से कहा है कि आप अपने भक्तो की सहायता के लिए कभी वावन कभी वराह कभी मत्स्य कभी हस कभी रामकृष्ण और परशुराम एव नसिंह अवतार लेकर इस पृथ्वी पर अवतरित होते रहे हैं। आप पिता एव पुत्र सेवक या सुहृद बनकर सांसारिको की पीडा को दूर करते रहे हैं। मैं उन व्यक्तियो के सौभाग्य का वर्णन कहा तक करता रहूँ–जिन के लिए आपने विचित्र रूप धारण किये हैं। मैं कितना दुर्भाग्यशाली हूँ–जिसके लिए आप शालिग्राम अर्थात् पत्थर की मूर्ति बन कर अवतरित हुए हैं। आप हम जैसे दीन हीनो के लिए कितने निष्ठुर हो गये हैं। सस्कृत के एक कवि ने दशावतार के सबध में सुदर अभिव्यक्ति की है।[19]

भगवान आप अपने भक्तों के लिए आधे नर और आधे पशु बन कर भी नृसिंह रूप धारण करते हैं फिर भला रसरासि के लिए आप निष्ठुर क्यो हैं?

भये मच्छ कच्छ और वराह हय ग्रीव हस
सेवक सहाय काज के वस कृपा पढ़े।
केऊ वपु धारि धारि दीन दुख टारि टारि
राक्षसन मारि मारि निपट मनी चढे।
भक्त प्रहलाद को दुखायो दुष्ट दानव
देखि रसरासि दौरे महारिस सा मढे।

---

19 यस्यालीयत शल्कसीम्नि
पृष्ठे जगन्मण्डलम्।
दष्ट्रायां धरणि नखेन्दिति–
सुताधीश पदे रोदसी।
क्रोधे क्षत्रगण शरे–
दशमुख पाणौ प्रलम्बासुरम्।
ध्याने विश्वमसावधार्मिक–
कुल कस्मैचिदस्मै नम।

आधी निज देह रही एतीन विलव गही
आधे सिंह होत होत खभ फारि के कढे ॥

इस प्रकार कवि ने विनय भावना के अनेक कवित्तो की रचना की है।

श्रीकृष्ण लीला प्रसग–

श्रीकृष्ण की लीलाओ की साहित्यिक अभिव्यक्ति हमारे साहित्यकारो की प्रमुख देन रही है। हमारे साहित्यिक ग्रथो का मूल उपादान ही श्रीकृष्ण रहा है। वैदिक ग्रथो पुराण एव उपनिषदो मे श्रीकृष्ण के रूप एव लीलाओ के प्रतिपादन की अक्षुण्ण परम्परा रही है। पुराणो मे वर्णित श्रीकृष्ण के रूप एव लीलाओ का हमारे साहित्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा है।

विष्णु पुराण मे रासलीला के सदर्भ मे यह श्लोक उपलब्ध होता है।[20] इसी प्रकार हरि वश ब्रह्मवैवर्त विष्णु ब्रह्म, वायु, वामन, कूर्म गरुड अग्नि, ब्रह्माण्ड एव श्रीमद्भागवत पुराण मे श्रीकृष्ण की अनेक जीवन घटनाओ का उल्लेख है।

श्रीकृष्ण की रासलीला चरित के सम्बन्ध मे डा० अग्रवाल ने लिखा है — रासलीला के प्रसग पर राधा के व्यक्तित्व का प्रारम्भिक रूप ब्रह्मपुराण मे है। जरासध वध के साथ अन्य भी अनेक कथायें हैं। ब्रह्म पुराण मे व्यास द्वारा विष्णु की स्तुति विष्णु के सिर के बल से श्रीकृष्ण का उद्भव, शकट भग, पूतना वध, यमलार्जुन कथा कालिय दमन, कस-वध रुक्मिणी का राक्षस विवाह पारिजात वृक्ष का ले आना द्विविध वानर कथा श्रीकृष्ण का स्वर्ग गमन आदि अनेक प्रसग है।'[21]

हिन्दी साहित्य के भक्ति एव रीति कालीन कवियो के साहित्य का मूल उपादान श्रीकृष्ण का सौन्दर्य एव रासलीला ही रहा है। कवि रसरासि ने भी श्रीकृष्ण को ही मूल उपादान मानते हुए अनेक कवित्त लिखे हैं —

तीनो ही लोक की पेंड अढाई करी
जिन सोई है बालमुकदजू।
नद के आगन मे रसरासि करैं
बहु साहस गोकुल चन्द्र जू।

---

20 क्वचिद् भ्रूभगर कृत्वा ललाटफलक हरिम्।
विलोक्य नेत्रभृगाभ्या पपौ तन्मुखपकजम्।
—विष्णु पुराण १३/४५

21 मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य मे रूप सौंदर्य, पृ २३

हाथ त पाय तें घुटन तें
हियसीस तें नापत है नदन जू ।
पार न पावत आगन को तब
भूमि को चूमत हरि गुव्य`दजू ॥

श्रीकृष्ण की बाल लीला का चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। यद्यपि सूर दास ने वात्सल्य वर्णन मे आकाश का स्पर्श कर लिया है, उनकी रचनाओं के पश्चात् वात्सल्य वर्णन म कुछ भी शेष नही रहा है और जितना उनकी कलम ने सहज एव मनोरम चित्र उपस्थित किया है सम्भवत वसा अ`य कवि का करना नितान्त असम्भव है।

श्रीकृष्ण का`य म वात्सल्य रस को प्रतिपादित किया गया है। श्रीकृष्ण की बाल रूप मे विविध लीलाओ का सरस चित्रण किया गया है। उनका रूप सौंदय माधुय से ओत प्रोत रहा है। कृष्ण का धूल धूसरित रूप का चित्रण कवि ने किया है–

वृज रज देवन को दुलभ सुनी है
परि याहू त सहसगुनी मेरी सुनि लीजै बात ।
नद के सदन सोहे आन`द के कद
लला बाल मुकुद महासु`दर सलोने गात ।
हठि करि बार बार उतरत गोद मैं ते
रसरासि प्रभु मन माहि डरपत जात ।
दूरि दूरि दौरि दौरि कोरि कोरि चायन सों
मारि मोरि नीकौ मुख चोरि चोरि माटी खात ॥

श्रीकृष्ण लीला पुरुष हैं। उनकी लीला के लिए ही सम्पूर्ण वृज भूमि का क्षेत्र रहा है। श्रीकृष्ण भगवान के अ शावतार माने गये हैं।[22] उस परम ब्रह्म की

---

22 आजु हौं गाइ चरावन जहों ।
वृन्दावन के भाँति भाँति फल अपने कर तें खहों ।
ऐसी बात कहो जनि, बारे देखो अपनी भाति ।
तनक-तनक पग चलिहौं कसे, आवत ह्वै है राति ।
प्रभु जात गइया ले चारन, घर आवत हैं साँझ ।
तुम्हरो कमल बदन कुम्हिलहै रेंगत घामहि माँझ ।
तेरी सौं, मोहि घाम न लागत भूख नहीं कछु नेक ।
सूरदास प्रभु कह्यो न मानत, परयो अपनी टेक ।
—सूरदास

प्राप्ति के लिए सुरेश, दिनेश, शकर आदि देवताओं ने अथक प्रयत्न किये किन्तु असफलता के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगा—सफलता अत्यन्त कठिनाईयो के पश्चात् मिली। नन्दनदन की माखन-चोरी का चित्रण अत्यन्त सरस शैली म व्यक्त किया गया है। श्रीकृष्ण की बाल-सुलभ रमणीय लीलाओं को देखकर कवि का मन मुग्ध हो उठा—

सकर सुरेस ध्यान धरि धरि ध्याव तऊँ
ध्यान मे न आवें वेद गावें कहि नेत नेत ।
सोई सिसु रुप स्याम सुन्दर अनूप
सदा विलसत मोद भरे नद राय के निकेत ।
आरसी मे निज प्रतिबिम्ब विलोकि ताहि
मैया मैया कहि मुख माखन के कौर देत ।
रसरासि प्रभु की ललित लीला देखि के
जसुमति रानी लौन वारत वलैया लेत ॥

'राम साहित्य मे राम के अवतार का मुख्य कारण दुष्टो का नाश कर के धम की पुन स्थापना करना है। धर्म सस्थापनार्थ अवतरित भगवान मे शक्ति की ही प्रबलता होनी चाहिये। इसके अभाव म दुष्टों का दमन नहीं हो पाता। शक्ति के समक्ष दुष्टो की उद्दण्डता स्वत ही दब जाती है। इस शक्ति के स्पष्टीकरण के लिए प्रस्तुत की गई अतकथाओ म भी ऐसी चर्चाएँ होती हैं जिनसे उनकी आराध्य की शक्ति मूलक प्रवृत्तिया लक्षित हो।'[1]

कवि रसरासि ने भी राम के पौरुष को एक घटना के रूप म मनोरम शैली म उपस्थित किया है। गुरु गग विजयदशमी की कथा के प्रसग मे दशमुख रावण का उल्लेख करते हैं तो कृष्ण का पौरुष जागृत हो कह उठता है —

विजैदसमी कथा कहे रसरासि मिश्र
सुनत जसोदा स्याम पालनै मे सुवायौ है ।
कह्यौ आज दुष्ट दस सीस ताके दसो सीस
छेदिबे को राम नृपि कटक चढायौ है ।
काहू कह्यौ लछमन ल्यावरे धनुष मेरौ
कहा है निसग वह सर सुधि आयौ है ।

---

[1] मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य म रूप सौन्दर्य—पृ १५८

चौकि उठि मात गुरु गग हू सटपटात
कीने वही गात तात गरे सौ लगायौ है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रीकृष्ण काव्य के सदर्भ म लिखा है कि-'कृष्ण चरित के गान में गीत काव्य की जो धारा पूरव म जयदेव और विद्यापति ने बहाई उसी का अवलवन वृज के भक्त कवियों ने भी किया । आगे चलकर अलकार काल के कवियो ने अपनी शृ गारमयी मुक्तक कविता के लिए राधा और कृष्ण का ही प्रम लिया । इस प्रकार कृष्ण सबधित काव्य का स्फुरण मुक्तक के क्षेत्र म ही हुआ, प्रबध क्षेत्र मे नही ।[24]

कृष्ण भक्त कवियो की परम्परा अपने इष्टदेव की केवल बाल लीला और यौवन लीला लेकर ही अग्रसर हुई जो गीत और मुक्तक क लिए ही उपयुक्त थी । मुक्तक के क्षेत्र म कृष्ण भक्त कवियो तथा आलकारिक कवियो ने शृ गार और वात्सल्य रसों को पराकाष्ठा पर पहु चा दिया-इसम कोई सन्देह नही ।

श्रीकृष्ण की बाल लीला के प्रसग मे भी रसरासि ने एक सुन्दर चित्र उपस्थित किया है । यशोदा ने श्रीकृष्ण को विवाह क नाम से बहलाया कि एक छोटी सी दुल्हनियाँ के साथ म हे स दुल्हा का विवाह करेंगी-इतना पर्याप्त था कि श्याम सुन्दर ने बाल सुलभ सहज प्रश्न उपस्थित कर दिये —

मैया तें कह्यो हो कालि लाल तेरो व्याह करा
दुलह बनाय के उछाह करो कोरि कोरि ।
जैसो लोनो लाल तसी लोनी सी दुल्हैया
लखि ल्याय हो लला में सग रग गठि जोरि जोरि ।
फिर रह मैया गठजोरी छूटि ही कि नाही
साचो कहि कौलो हा फिरोगो सग खोरि खोरि ।
रसरासि प्रभु जू क बचन विचित्र सुनि
नद औ जसोदा दोऊ हसे तृण तोरि तोरि ॥

वात्सल्य और शृ गार के सूरदास सव श्रेष्ठ कवि हैं । बाल जीवन का मनो रम एव मार्मिक वर्णन करने वाला कवि ससार के साहित्य मे कदाचित ही मिले । बालकों के स्वभाव और उनकी विविध चेष्टाओं और कार्यों का सूर ने जो चित्र अकित किया है वह बडा ही स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक और हृदयस्पर्शी है। जो लोग रात दिन बालकों के साथ रहते हैं-वे भी ऐसा मार्मिक वर्णन नही कर सकते

---

24 हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ १५६

वसा सूर ने किया। इसके साथ ही माता के स्नेहपूर्ण हृदय का चित्रण भी उन्होंने उसी भावुकता के साथ किया है। माता के हृदय का जितना ज्ञान सूर को था उतना किसका हो सकता है। उसकी उमगों का अभिलाषाओं का भावनाओं का और भावुकता का सूर ने जो चित्र उपस्थित किया है वह अत्यन्त हृदयग्राही है।

कवि रसरासि ने श्रीकृष्ण के बाल-लीलाओं का जो वर्णन किया है-वह सूर की अनुकृति मात्र है। कहीं कहीं पर सामान्य नवीनता एवं चमत्कृति के दर्शन होते हैं। कृष्ण के मुख से बाल-सुलभ उक्तियां कहलाने में कवि किसी सीमा तक सफल हुआ है। रसरासि ने बाल-लीला के सन्दर्भ में १० १५ मुक्तक लिखे हैं-जबकि सूर का विशाल साहित्य है। मुक्तक-कवित्तों में श्रीकृष्ण का चलना, मुख में मिट्टी खाना, गर्ग मुनि को छकाना वंशी बजाना, माखन खाना, माता से विनोद पूर्ण बातें कहना आदि सभी का समावेश करने का यत्न किया है किन्तु सूर सी मनोरमता एवं हृदय स्पर्श के क्षणों की अनुभूति कराने में सिद्ध हस्त नहीं कहे जा सकते।

जिस प्रकार सूरदास वात्सल्य एवं शृंगार के क्षणों को एक साथ जीते हुए सृजन शील थे उसी तरह हमारा कवि रसरासि भी श्रीकृष्ण की शृंगारिक लीलाओं को उभारने के लिए सकल्प शील है—

एकै पाय ठाढो करि राख्यो है रगीलो लाल
आप ही को अति अधिकार सो जनायो है।
अधर मुरग भूमि बैठी है उमग भरी
या मिस कहायवे को कटि ते नवायो है।
रसरासि दखो बडे आदरसों बोलत है
टाती छोलि छोनि नीकि वृज को मचायो है।
थिर चर जीव जड जगम को कौन चली
बासुरी तौ हरि हू प हुकम चलायो है।

श्रीकृष्ण की बासुरी का चित्र संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के अनेक कवियों द्वारा चित्रित किया गया है। श्रीकृष्ण के सन्दर्भ में भागवत में कहा है—

वंशीविभूषित करान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुण बिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दर मुखारविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने॥

महाकवि सूरदास ने श्रीकृष्ण का मुरली से नारिगत सम्बन्ध स्थापित किया। मदमाती नारी की तरह श्रीकृष्ण पर वंशी अपना अधिकार जमाती है। गोपियों

मी मुरली निनाद की माधुरी से मोहित हो उसे इसके लिए बाध्य करती है।[25]

रसरासि ने भी मुरली को नारीजत परिपाट्य मे देखते हुए सजीव चित्र उपस्थित किया है–यद्यपि सूर की अमिट छाप के दर्शन होते हैं।

रसरासि की गोपियाँ श्रीकृष्ण के सौन्दर्य की प्यासी हैं। वे श्याम के मनोरम लावण्य के सागर को निरखन के लिए प्रतिक्षण विकल हैं। इनके नयनो मे मुरली धर की मोहिनी मूर्ति सदा ही उमगी रहती है—

सोभा सिंधु सावरो सलानो रसरासि एरो
उमहि उमहि आय आखिन मे घुरि जात।
तानन की गाज सुनि बधिर भई री बीरको
सुनें चवाय क्यो न ग्रथन सो जुरि जात।
चदन की खोरि अगवाढी हूँ तरगता की
फेरन सो पति पन पारिलो बिधुरि जात।
किलगी हलत सुतो पूतरी सिकदर की
बरजत लाज की जिहाज क्यो न मुरिजात॥

---

25 छबीले ! मुरली नेकु बजाऊ।
बलि बलि जात सखा यह कहि मधुर सुधारस प्याउ।
दुरलभ जनम दुरलभ वृन्दावन दुरलभ प्रेम तरग।
नाजानिये बहुरि कब ह्वै है स्याम ! तुम्हारो सग।
बिनती करहिं सुबल श्रीदामा, सुनहु स्याम ! दै कान।
जा रस को सनकादिक सुकादिक करत अमर मुनि ध्यान।
कब पुनि गोप भेष व्रज धरि हौं फिरि हौं सुरभिन साथ।
कब तुम छाक छीनि क खहो हो गोकुल के नाथ।
सुनि सुनि दीन गिरा मुरलीधर चितये मुख मुसकाइ।
गुन गभीर गोपाल मुरलि कर लीन्ही तबहिं उठाइ।
धरि करि बेनु अधर मनमोहन कियो मधुर धुनि गान।
मोहे सकल जीव जल थल के सुनि वार्यो तन प्रान।
उपजावत, गावत अति सुन्दर अनाघात के ताल।
सर बसु दियो मदन मोहन को प्रेम हरषि सब ग्वाल।
डुलति लता नहिं मरुत मद गति, सुनि सुन्दर मुख बन।
खग मृग मीन अधीन भय सब कियो जमुन जल सन।
आयसु दियो गोपाल सबनिको सुखदायक जिय जानि।
सूरदास चरननि रज मागत, निरखत रूप निधान॥
—सूरदास

बिहारी कवि ने भी श्रीकृष्ण के सौंदय का चित्र प्रस्तुत करते हुए हमेशा हृदय म बसे रहने की कामना की है।[26] कवि वृजनिधि ने श्रीकृष्ण के वाह य सौंदय का वणन करते हुए गोपियों की विकल भावना को प्रदर्शित किया है। [27] वृजनिधि की एक गोपिका तो स्पष्ट रूप म मीरा की तरह घोषणा कर देती है कि मुझे मन-मोहन सलोना श्याम सुहाता है। [28] रसरासि का कवि भी गोपियो के हृदय की भावनाओ को समझने म समर्थ है। गोपाङ्गनायें श्याम के मादक रूप सौंदय पर मुग्ध होकर झूम उठती हैं। कवि न कृष्ण के वाह्यसौंदय का चित्र उपस्थित करते हुए कहा है —

घु घरारी लटीन के फदन सो सुरझे
मन को उर झाय गयो।
रसरासि करोरि कचावन सो दृग कोर
चितै मुसकाय गयो।
तब तें सुधि नें सकहूँ नेक कु वर
लाय वियोग की लाय गयो।
अब ते वनिवो इत भ्राय गयो तकि यै
छवि छाक छराय गयो।

श्रीकृष्ण क प्रेम मे तन्मय गोपियाँ अपना सवस्व परित्याग करते हुए अपने प्रिय के रूप सौंदय पर मुग्ध होकर उसके साथ कालिंदी के कूल पर कदम्ब कु जो मे रास लीला किया करती थी। गोपियो ने श्रीकृष्ण से प्रेम किया नही था–अपितु यह

---

26 सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उरमाल।
यहि बानक मो मन वस्यो सदा बिहारीलाल ॥
—बिहारी

27 प्यारा व्रज को ही सिंगार।
मोर पख वा लकुट बासुरी गर गु जन को हार।
बन बन गोधन सग डोलिवा गोपन सो करि यारी।
—वृजनिधि'

28 माई री मोहि सुहाव स्याम सुजान कु वार।
कटि पट पीत पिछौरी बाधे अनूप रूप सुकुमार।
देखत कोटिक मन्मथ लाजें हात हिय को हार।
वृजनिधि परम छबीलो मोहन सामा सरस अपार।
—वृजनिधि मुक्तावली"

प्रेम सहज भावनाओं का प्रतीक था। श्रीकृष्ण के रूप माधुर्य ने उनके हृदय को सहज रूप से विवश कर दिया—उनकी आखों की तरल झील मे हर क्षण प्रिय का सौन्दर्य झलकने लगा और उनकी आत्मा ने उसे अपना प्रणयी स्वीकार कर लिया। मिलन विरह के क्षण व्यतीत होने लगे, हृदय की मनोभावनायें अन्तर्द्वन्द के साथ उभरने लगी, एक ऐसा ही चित्र रसरासि ने प्रस्तुत किया है—

आंखियां करि प्रीत प्रतीत भरी पहलें
ललचाय निहारिये क्यो।
बरसाय महारस बूंदन को
रसरीत भरे तरु तोरिये क्यो।
रसरासि रि माहि तरंगन छायहि तूं
जनमी न मरोरिये क्यो।
अरु राखिन जानत हो तो कहो
मन मानिक काहू को चोरियै क्यो॥

गोपियाँ गोपाल के महारास में निमज्जित होकर परमानन्द की अनुभूति कर रही हैं। महाकवि देव की गोपिकायें भी श्रीकृष्ण के रूप पर मुग्ध होकर सब कुछ भूल गई।[२९] गोपिका अपने रसिक के प्रति मुग्धा है उसके प्रेम में वह पागल सी हो गई हैं। हृदय की मनोभावनायें उसे हर क्षण उद्वेलित कर रही हैं।

रसरासि की गोपियां अपने प्रियतम की प्राणवल्लभा बनकर पटरानी नहीं बनना चाहती हैं। उनके मन में महारानी अथवा रानी बनने की लालसा जन्म नहीं लेती है अपितु वे तो अपने प्रियतम की सेवा मे निरन्तर रूप से रह कर उसके रूप माधुर्य में तन्मय रहकर अपनी अतृप्त पिपासा को चिर जीवित रखना चाहती है। ये गोपियाँ अपने राजा की सेवा सुवासिन बनकर अपना जीवन बिता देना चाहती

29 जब तें कुंवर कान्ह रावरी कलानिधान।
कान परी वाके कहूं सुजस कहानी।
तब ही तें देव देखी देवता सी हसति सी
रीझति सी खीजति सी रुठती रिसानी सी।
छोटी सी छली सी छीन लीनी सी छकी सी छिन,
जकी सी, टकी सी, लगी थहरानी सी।
बींधी सी बंधी सी, विष बूडति विमोहित सी
बैठी बाल बकति विलोकति बिकानी सी।
—देव

है। मोहन की मोहिनी मूर्ति पर मुग्ध होकर अपने मानस को व्यक्त करती हुई कहती हैं —

पल पल वदन विलोकि हो वलैया ल हो
एक रस रेहो रसरासि रोस हासी मे ।
पाय महराय हो सुबीजना ढुराय हो
न क्या हूं अरसाय हो न आय हा उदासी मे ।
कहा जानो मोहि कछु लगी है गौरीभई
वौरी फिरो दौरी यो उरझि इकलासी मे ।
मोहन कहायवे को मोहनी जो डारी
है तो मोहन रंगीले मोहि राखियो खवासी मे ॥

रितिकाल के कवियो ने श्रीकृष्ण के प्रेम चरित्र के सदर्भ मे विविध भाव व्यक्त किए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में कृष्ण भक्ति सम्बन्धित विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं —

श्रीकृष्ण भक्ति परम्परा म श्रीकृष्ण की प्रेममयी मूर्ति को ही लेकर प्रेम तत्व की बडे विस्तार के साथ व्यजना हुई है, उनके लोकपक्ष का समावेश उसमे नहीं है। इन कृष्ण भक्तो के कृष्ण प्रेमोन्मत्त गोपिकाओं से घिरे हुए गोकुल के कृष्ण हैं, बडे-बडे भूपालो के बीच लोक व्यवस्था की रक्षा करते हुए द्वारका के श्रीकृष्ण नहीं हैं। कृष्ण के जिस मधुर रूप को लेकर ये भक्त कवि चले हैं वह हास-विलासकी तरगो से परिपूर्ण अनन्त सौंदर्य का समुद्र है। उस सार्वभौम प्रेमालवन के समुख मनुष्य का हृदय निराले प्रेमलोक म फूला फूला फिरता है। अत इन कृष्णभक्त कवियो के सबध में यह कह देना आवश्यक है कि ये अपने रग म मस्त रहने वाले जीव थे तुलसीदास जी के समान लोक सग्रह का भाव इनमें न था। समाज किधर जा रहा है, इस बात की परवा ये नहीं रखते थे यहाँ तक कि अपने भगवत्प्रेम की पुष्टि के लिए जिस शृंगारमयी लोकोत्तर छटा और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यजना से इन्होंने जनता को रसोन्मत्त किया, उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखने वाले विषय वासना पूर्ण जीवो पर कैसा प्रभाव पडेगा-इसकी ओर इन्होंने ध्यान नहीं दिया। जिस राधा और कृष्ण ने प्रेम को इन भक्तों ने अपनी गूढातिगूढ़ चरम भक्ति का व्यंजक बनाया उसको लेकर आगे के कवियों ने शृंगार की उन्माद कारिणी उक्तियों से हिन्दी काव्य को भर दिया।'[30]

30 हिन्दी साहित्य का इतिहास ?

रसरासि की गोपिया प्रीतिकर आनन्द की अनुभूति भी करती हैं और साथ ही उनके विरह मे विकल वदना की भी अभिव्यक्ति करती हैं। प्रेम की परिभाषा व्यक्त करती हुई वे कहती है —

मन लागि रह्यौ जिन सा तिन के मन की
गति यह का सो कहौ।
निठुराई कौ पुज महा रसरासि
निहारत चाह प्रवाह वहौ।
छवि दीपक देखि पतग भई
झुरसी होत झुरिवौई न्हौं।
जिय आवत यो अब तौ सब भाति
निसक ह्वै अक लगाय रहौं।

महाकवि सूरदास की गोपियाँ विरह म अति कातर होकर अपनी मनोभाव भाषा को व्यक्त करती है।[31] गोपिया कहती हैं प्रेम करके हमने क्या सुख पाया ? प्रेम म विकलता क सिवा है भी क्या ? पतगे ने प्रेम करके अपने प्राणो की आहुति ददी, भ्रमर ने कमल स अनुराग कर क्ा जीवन पाया, सारग ने प्रेम करके अपने प्राणा का बलिदान किया इसी प्रकार हम ने प्रीति की अनीति कर क्या सुख पाया ? गापियो ने माधव से प्रेम कर क्या किया ? माधव ने जाते समय दो शब्द भी सहानुभूति मे नही कह। रसरासि की गापियो भी कृष्ण से प्रेम कर अत्यन्त विकल हैं-

जुग सो यह वासर तो वितयौ
अत्र तौ वन ते वनि आय हेरी।

श्रीकृष्ण का चरित्र राधा के बिना अपूर्ण है। श्याम के शृङ्गारिक चित्रण मे राधा ही मूल सहायक है। हिन्दी साहित्य के भक्ति कालीन कवियो ने राधा के सौंदय का वणन किया है। रीतिकालीन कवियो ने उसे विलासिता का बाना पहिना कर प्रस्तुत किया है। रसरासि की राधा का स्वरूप देखिये —

---

31 प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतग करी दीपक सो आप प्रान दह्यो।
अलिसुत प्रीति करी जल सुत सो, सपुट माझ गह्यो।
सारग प्रीति करी जु नाद सों, सनमुख बान सह्यो।
हम जो प्रीति करी म धो सा चलत न कछू कह्यो।
सूरदास प्रभु बिन दुख दूसरे नैननि नीर बह्यो॥

आज हो गई वृषभान के भवन तहाँ
राधिका कुवरि की अनूप छवि छैव रही।
चकी सी जकी सी उभकी सी विभुकी सी
फिर वने वने अगन अनग जोति ज्वै रही।
तहा रसरासि छैल वसी में करत फैल
आयो तिह गैल चोप चटकीली च्वै रही।
लाल कर फल छरी देखि देखि पीरी पीरी
पीरे पीरे पान देखि पानी पानी कै रही।

एक गोपिका वृषभान के भवन राधा को देख कर आई है वह उसके अनिन्द्य सौंदय का चित्रण करते हुए कहती है–वह ज्योति स्वरूपा है सौंदय की मूर्ति है और रसरासि के रस मे डूबी हुई विविध लीलायें करती रहती है। वृजनिधि ने भी राधे के सौंदय का श्रेष्ठ चित्रण किया है।[32] कृष्णदास ने तो उसे रूप रस की राशि ही सिद्ध किया है।[33] गदाधर भट्ट ने राधा की स्तुति करते हुए उस पूर्ण गौरी के सदृश बताया है।[34]

---

32 राधे सुन्दरता की सीवा।
मन मोहन को हू मन मोह यो निरखि करत अघ ग्रीवा।
चितवनि चलनि हसनि प्यारी की देखे बिन क्यो जीवा।
ब्रजनिधि की अभिलाष निरतर रूप-सुधा रस पीवा।
—वृजनिधि'

33 राधे तू रूप की राशि।
मन्न मृग, हसि सुबस कीन्हीं रचि मोहनि पासि।
हमन-दामिनि, दसन बीज पगति, मधुर ईषद् हास।
नन्द नन्दन, रसिक रिझवत सुरत रग विलास।
—कृष्णदास

आज तेरी अधिक छवि बनी नागरी।
माग मोतिन छटा, बदन पर कच लटा।
नील पट घन घटा रूप रग आगरी।
—कृष्णदास

34 जयति श्री राधिके! सकल-सुख साधिके,
तरुनि मनि नित्य नवतन किसोरी।
—गदाधर भट्ट

ऋतु-वणन

रसरासि के इस कवित्त शतक में हमें प्रकृति वणन भी उपल ध होता है। कवि ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति का चित्रण नहीं किया है अपितु श्री कृष्ण एव गोपियों के प्रेम लीला प्रसग के अ तगत सहज रूप से प्रकृति मुखरित हो उठी है। वसत का वणन कवि के द्वारा इस प्रकार हुआ है —

वरन वरन के वस त साह पल्लव मे
मुसक्त मद कु द कली विकसत सी।
पुहुप पराग सो उडावत अबीर आछें
अलकें रलकि अलि माला दरसत सी।
फूली अ ग अ गन अनग अनुकूली सदा
गावें गाली औ धमारि कें काकिल सत सी।
रसरासि प्यारे बनवारी के विनोद को
वसत लै कें आई वृषवनिता वसत सी।

अनेक वर्णों के सुमन सुगध लुटाने लगे हैं, नव पल्लव नई क्राति लिए मुस्करा रहे हैं और कलिया अपना स्मित हास बिखेर रही है—जहाँ मद मस्त अलिकुल रस पान के लिए लालायित हैं, गोपियो म य सभी बसन्त के बिम्ब उभर कर आ गये हैं, अपने अ गो मे वसन्त को सिमेटे हुए गोपिया श्री कृष्ण के पास लीला के लिए आ गई हैं।

कवि वृजनिधि ने प्रकृति का मुक्त वणन किया है [35] आधुनिक कवि हरि

---

35 सीतल सु ध मद मधुर समीर बहै
कोकिल अलाप अलि करत गु जार कौ।
तरनि-तनूजा तीर फूल्यो बनराज तहा
खडे श्यामा श्याम गहे कदम की डार कौ।
रग भरी रागनि अलाप ललितादि अली
जानति सब ही रुचि प्रीतम के प्यार कौ।
जानि अभिलाष हिय भांति भाति साज लिये
आयो रितुराज वृजनिधि के बिहार कौ।

ग्रौध ने भी बसन्त का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है।[36]

रसराशि की ब्रजवनिता फूलों का शृंगार किये अपने प्रिय के पास आती हैं, उसका अंग अंग मधमास मे विकच सौरभ भरे फूलो से महक रहा है। श्री कृष्ण भी कम न थे—उन्होने भी अपने घाप को फूलो से सजा रखा था—फूलो के उद्यान मे फूलो की शोभा का सुन्दर चित्र की अभिव्यक्ति इस प्रकार है —

फूलन की पाग सीस चंद्रिका हू फूलन की
फूलन के कानन करन फूल वै रह्यो।
फूलन की कठमाल वनमाल फूलन की
फूलन की छरी गेंद फूलन की ल रह्यो।
फूले रसरासि अंग अंग नित फूल भरे
फूले दृग कंजनते मुसनि चितै रह्यो
फूलि फूलि आई बृज वनिता वसंत लै के
फूलि फूलि सांवरौ वसन्त रूप ह्व रह्यौ ।।

फागुन के महीने म होली का विशेष महत्व है। ब्रजभूमि पूर्णरूपेण उन्मुक्त वातावरण म झूमती हुई अपनी अन्तश्चेतना को उन्माद के रग मे भिगो देती है। फागुन के महीने मे अल्हडपन पूर्ण यौवन के साथ बिखर पडता है। ब्रजवनितायें प्रात काल ही नन्द भवन आ गई हैं और प्रेम-रस से भीगी हुई मधुर गालियो से बौछार कर रही हैं। स्वय कन्हैया भी उस वातावरण म घुल मिल जाता है और गोप गोपिया हर्षोल्लास के साथ झूम उठती हैं—

फागुन महीना लाग्यो जाही दिन भोर ही त
नंद के वगर आय गाय कै सुनाई गारि।

---

36 ग्राम बौर बही बयार बसी
सज लताएँ हरी भरी डोली।
बोल आला बसन्त का होते
खिल उठी वेलि कोयलें बोली।
है फबे आज बेल बूटे भी
झाडियों पर लसी लुनाई है।
दूब पर है अजब छटा छाई,
फूल ला घास रग लाई है।

—हरिग्रौध"

तनक मनक सुनि सावरो कुवर कन्हैयो
हो हो ललकार मची रची है गीली सारि।
उडावत लाल रग रग की गुलाल लै लै
दसो दिसि दीन्हे दिन ही मे परदा से डारि।
लपटि गई है रसरासि प्यारे प्रीतम सो
गुन गरबीली ग्वारि गा समुझ निहारी ।।

बसत ऋतु के वणन मे कवि ने मान्कला बिखरा कर उसे मोहक रूप दे दिया है। कवि बसत का वणन नारि सौन्दय एव उसकी प्रेम लीला के सदभ मे करता हुआ प्रकृति के साथ रागात्मक सबध स्थापित करने मे किसी सीमा तक सफल सिद्ध हुआ है।

कवि रसरासि ने बसत को ही आत्मसात नही किया है अपितु ग्रीष्म ऋतु का भी मनोरम वणन किया है। ग्रीष्म ऋतु मे वृषभानुजा एव नन्दनन्दन उशीर के कुजों मे बठे हुए प्रेमालाप कर रह है —

स्यामा अरु स्याम वनि बैठे उसीर धाम
अरस परस दोऊ चदन चढावही।
बूटन लगे है जल जत्र चहू ओर फुही
भीजे रसरासि नीके बसन सुहावही।
सीतल सुगध मद मारूत छहरि रह्यो
सारग राग सखी सुघर सुनावही।
परसत अग अग पुलकि पसीजि भीजि
रीझि रीझि दोऊ मद मद मुसकावही ।।
कोपि करि काढी है सहस सम सेरन को
सब ही को तन मन त्रास तें तपायो है।
तरल तुरग चढ्यो सूर ताके सग सोहे
दसई दिसान देखौ दावानल लायो है।
भागि भागि दुर नर नारी तहखानन मे
तऊ च्यारो ओर नरहत मडरायो है।
प्यारे रसरासि तुम कितहू सिधारो जिन
ग्रीष्म विषम वट पार ह्वै क आयो ।।

ग्रीष्म का सरस एव मनोरम तथा तापजन्य भावनाओं का सहज उद्घाटन किया गया है। महाकवि देव ने भी श्यामा एव श्याम सुन्दर के ग्रीष्म कालीन

विलास का चित्रण किया है।[37]

सम्पूर्ण कवित्त शतक में कवि ने कृष्ण से सम्बन्धित अनेक कवित्तों की रचना की है। कृष्ण के सौन्दर्य सम्बन्धित कवित्तों में पुरुष सौन्दर्य के दर्शन होते हैं किन्तु यह सौन्दर्य विलासिता के भावो से आपूरित है। रीति कालीन कवियों ने कृष्ण के सौन्दर्य को विलास भवन का नायक बना कर छोड़ दिया है। कवि रसरासि ने कृष्ण के सौन्दर्य को गोपियो के मुख से ही वर्णित कराया है—जहाँ उसके रूपमाधुर्य व बाह्य रूप का ही दर्शन होता है –

बाधे धरी कबरी सुफटी परि
देखत लागैं पटम्बर फीको।
बास की बासुरी छेद भरी
परि देखत चित्त हरैं सब ही को।
गुंज की माल रसाल कहा
अरु मंजु कहावत छाल कौटी को।
मोर पखा हू कहा रसरासि
नीकें ई को सब लागत नीको॥

कवि रसरासि ने कृष्ण के सौंदर्य पर मुग्ध होकर सम्पूर्ण ससार को ही निछावर कर दिया।[38]

---

37 भरी दुपहरा, हरी भरी फरी कुंज मंजु
गुंज अलि पुंजन की देव हियो हरिजाति।
सीरे नद नीर, तरु सीतल गहरी छाह,
सोये परे पथिक, पुकार पिकी करि जाति।
ऐसे में किशोरी भोरी गोरी कुम्हिलाने मुख,
पकज से पाइ धरा धीरज सो धरिजाति।
सोहे घाम स्याम-मग हेरति हथेरी ओट,
ऊंचे धाम-वाम चढि आवति उतरि जाति।
—देव'

38 या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहु पुर को तजि डारों।
आठहूँ सिद्धि नवो निधि के सुख नद की गाय चराय बिसारों।
नैनन सो रसखान जबै ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारों।
कैतिक हो कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारों।

कवि रसरासि की एक भोली गोपिका अपने मन को समझाती हुई कहती हैं रे मन ! तू मेरी शिक्षा मानता हुआ कृष्ण से प्रेम कर, परीक्षा लेने का अवसर मत ढूंढ —

एरे मन मीत जो तू प्रीत कियो चाहत है तो
सुनि सीख मेरी मति सो विचारि ले ।
रसरासि प्रीतम प्यारे की अनोखी छवि
रीझ भरी आखिन सो निडर निहारि लै ।
लाज औ बडाई तन मन धन प्रान वारि
सरवस हरि नीके नेह को सम्हारि लै ।
प्रीतम की प्रीत को परेखौ तू करत काहे
तू तो तेरी प्रीत पोथि सोधि कै सुधारि ल ।।

श्री कृष्ण के अमित सौन्दर्य पर मुग्ध होकर ब्रजवनिता ने अपना सर्वस्व लुटा दिया और प्रेमोन्माद मे इस तरह पागल हो गई कि कृष्ण के वियोग मे अपने आपको सहेजने मे भी असमर्थ हो गईं —

चेटक चोप अचम्भ भरि छवि
देखत सग लग्यौ ललचावत ।
जो छिन को नहि दिखी परी तो
लै रोई गरौ भरि नीर बहावत ।
कोरिक भातिन सो रसरासि, मिलाप के
केऊ बनाव बनावत ।
हाय इते पर हू निरमोही हरें
हसिबे को न औसर पावत ।।

कवि का हृदय श्यामसुदर की अनुपम छवि को देखकर प्रमुदित हो उठा। सावरे का चन्द्र सदृश मुख देख कर नयनो के उलझने उलझाने का उपक्रम रचने लगा। कवि ने कृष्ण के सौंदर्य की उपमा के हित अनेक अलकार जुटाये किन्तु अनुपम की उपमा कैसी ?

मुख रावरो चद कहैं परिचद मे
नैनन क उरझौनी कहाँ ।
अरु फूले सरोज समान कहे,
परिवा मे यह मुसकोनी कहा ।
सब भाति अनूप महो रसरासि

कहि उपमा सम होनी कहो ।
छवि देखत स्वाद सुधा सो
लगै परिवा मे इती मिठलनो कहो ।

रसिक शिरामणि राधा वल्लभ का लीला क्षेत्र वृन्द भूमि का मुख्य केन्द्र वृन्दावन रहा है वृन्दावन लीला क्षेत्र कहलाया है । वृन्दावन म गोपीवल्लभ ने अनेक लीलायें की यत स्वर्ग सदृश वातावरण की तुलना कवि न वैकुण्ठ से करत हुए कहा है वृन्दावन सवश्रेष्ठ सुन्दर स्थान है अत वृन्दावन म सनत रूप म रहने की इच्छा व्यक्त करता हुआ कहता है –

व्रज वैकुण्ठ दोऊ तोले है तुला मे धरि
एक पला भूमि मे रह् यो एक चढिगो अकास ।
या ही ते रहत इहा नद को कु वर सदा
गोपी गोप गायन मे करत विलास-हास ।।
जोई आय रहै तो सो नेक कहू न न्यारो
होत प्रानन को कोऊ क्यो न करो वास ।
रसरासि प्रभु स्वामा स्याम को निवास
जहा नाचत नटी लो मुक्ति च्यारो ओर पास ।।

श्री कृष्ण की प्रभुता अति महिमामय है ।[39] परम ब्रह म ने अनेक भक्तों का उद्धार किया है–उनकी कृपा से मूक वाचाल हो गये, पगु गिरि लघन करने लगे तृषित की प्यास को तृप्ति मिली अत श्याम का नामस वहिताय है –

गु ग विना रसना पढै रचि पाँचये
वेद के भेद अलेखै ।
वाझ को पूत विना अखिया सू
कुहू की निसासिसि पूरन पेखै ।
बागुरो दारि के पीवै मृगजलयो
रसरासि सबै अवरे ख ।
पै हरि नाम विना विसराम कहू
कबहू कोऊ नेक न देख ।।

---

39 वृन्दावन क रस हमारे मात पिता सुत बध ।
गुरु गोविन्द साधु गति मति सुख, फल फूलन की गध ।
इनहि पीठि द अनत डीठि करै सो अधन मे अधा
व्यास इनहि छोड और छुडाव तावो परियो कध ।।
—व्यास जी'

इस प्रकार का वर्णन हमें अन्यत्र भी अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।[40]

श्रीकृष्ण की गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में एकाग्रचित्त हैं–वे इस संसार में श्रीकृष्ण के प्रेम में रंगी भक्ति को ही सर्वाधिक महत्व देती हैं। स्वयं रसरासि कवि सखी भाव से अपने आराध्य पर विश्वास रखता हुआ कहता है —

जो लो रहै सासा तौ लो दीसत उजासा
बैठि साधन के पासा, काहू कौन आसा है।
वृंदावन वासा करि जप उपवासा
रसरासि अनयासा पायौ प्रकट मवासा है।
झूठी यह आसा ता सों होऊ उदासा
देखि पानी का पतासा तैसा तन का तमासा है।
मानि विसवासा तू कहा हरिदासा
करि प्रभु की उपासा बतायौ मत खासा है॥

इस संसार में भौतिकी उलझनों में उलझा मानव अनेक प्रकार की साधनाओं के माध्यम से उस परम ब्रह्म की प्राप्ति करना चाहता है। विभिन्न आचार्यों ने विविध मार्ग-दर्शन किये हैं। जप-तप समाधि आदि के माध्यम से साधना-रत रहने वाले व्यक्ति भी प्रायः प्यासे के प्यासे ही रहते हैं–अतः कवि कहता है —

मुंदि मुंदि नासा रोकि रहे सासा कोऊ
नापत उसासा त्यों त्यों छीन होत सासा है।
करें तप आसा कोऊ बन मे निवासा कोऊ
आन देवदासा कोऊ सब सो उदासा है।
पै न मिटै प्यासा, यों ही करत प्रयासा
रसरासि अनयासा पायौ प्रगट मवासा है।
बृजभूमि वासा करि विपिन विलासा
देखि पानी का पतासा तैसा तन का तमासा है॥

---

40 मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं संग गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को कियो हरिछत्र पुरंदर-धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदि कूल कदम्ब की डारन॥

—रसखान'

कवि ने वृंदावन में रहकर श्रीकृष्ण के प्रेम में लीलायें करना ही सर्वाधिक श्रेष्ठ बताया है। सूरदास की गोपी तो यहाँ तक कह देती है —

'हृया के वासी अवलोकतहौं आनन्द उर न समाऊँ।
सूरदास जो विधि न सकोच, तौ वैकुण्ठ न आऊँ ॥

स्वयं मीरा प्रेम दिवानी होकर गा उठती है—

वृन्दावन की कुंजगलिन में तेरी लीला गासूं ।

कवि रसरासि ने भी वृन्दावन की लीला भूमि में रहने का संकल्प उठाया है। कवि की मान्यता है कि ब्रजभूमि में निवास करने से निस्सीम आनंद की उपलब्धि है। वहाँ रहने पर जीव स्वतः भक्ति भावना की ओर प्रवृत्त होता हुआ अपने तन मन से श्रीकृष्ण के प्रेम में रंग जाता है। श्रीकृष्ण का वृंदावन मोक्ष का धाम है जहाँ मोक्ष के लिए जीव को प्रयत्न प्रयास नहीं करने होते साधकों की तरह नीरस एवं कष्ट साध्य मार्गों का आश्रय नहीं लेना होता है और न जप तप समाधि के चक्र में ही फँसना होता है अपितु स्वयं मुक्ति हाथ जोड़े वृन्दावन में घूमती रहती है। यदि जीव को परम पद की प्राप्ति करना है तो वह वृंदावन में जाकर निवास करे। कवि का कहना है कि ब्रह्म की प्राप्ति के लिए विकट मार्गों की आवश्यकता नहीं है योग साधना की आवश्यकता नहीं है अपितु सहज मार्ग का अवलम्बन लेना चाहिये—और वह सहज मार्ग श्रीकृष्ण के लीला चरित का गुणानुवाद है।

इस कवित्त शतक में कवि ने श्रीकृष्ण-भक्ति के प्रचार प्रसार को सर्वाधिक बल देने का प्रयास किया है—इसके साथ ही श्रीकृष्ण की रास लीलाओं का उद्दाम चरित्र भी सरस एवं माधुर्य शैली में अभिव्यक्त किया है। लीला वर्णन के प्रसंग में कवि आवश्यकता से अधिक भावुक हो गया है और शृंगारिक भाव विभावों का चित्रण करने में रत रह गया है। शृंगार-रस की उद्दीप्ति के लिए कवि ने अपनी ओर से कोई अभिनव प्रयोग नहीं किया है, अपितु उस युग के तत्कालीन वातावरण ने कवि को इसके लिए प्रेरित किया है। कवि का उद्देश्य शृंगार को प्रस्तुत करना नहीं रहा होगा किन्तु बिना शृंगार के वर्णन करते हुए वह पूर्ववर्ती कवियों की परम्परा में अपनी एक और कड़ी जोड़ सकने में कैसे समर्थ हो सकता था?

"कवित्त शतक" एक सुन्दर कृति है जिसमें विभिन्न कवित्त विभिन्न अनुभूतियों के साथ विविध भाव उभारने में सफल हुए हैं।

———

उत्सव–मालिका

कवि रसरासि की उत्सव मालिका एक लघु कृति है जिसका साहित्यिक दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। वर्ष भर के महत्वपूर्ण उत्सवों के संदर्भ में उल्लेख किया गया है। श्री कृष्ण के जन्म से आरम्भ करके विविध उत्सवों में क्रिया कलापों का सामान्यतः चित्रण किया है। इस कृति में केवल ५४ पद्य हैं–ये सभी दोहा कवित्त, सवैया एवं कोडरिया में लिखे हुए हैं। कवि के आश्रयदाता महाराजा प्रतापसिंह कृष्ण भक्त थे। उनके शासन-काल में समय समय पर विभिन्न उत्सव धूम-धाम से मनाये जाते थे। आज भी जयपुर में श्री वृजनिधिजी का मंदिर विद्यमान है–जो राजमहल के अहाते में राज परिवार द्वारा संस्थापित हैं–जहाँ वर्ष भर में अनेक उत्सव मनाये जाते हैं।

रसरासि कवि ने उत्सव मालिका के सृजन के संदर्भ में बहुत कुछ लिखा है। कवि ने इस कृति के निर्माण के संदर्भ में इस प्रकार उल्लेख किया हैं –

सवत ससि गिर हुग सुरिप भादा सदि सुख धाम।
भोमवार तिथ अष्टमी गूथी उत्सव-दाम।।
यह माला मनमोहिनी काटत भव दुख-पासि।
महा प्रेम रस सो भरी करी रसिक रसरासि।।१

इससे सिद्ध हो जाता है कि कवि रसरासि ने उत्सव मालिका की रचना भादवा सुदि अष्टमी मंगलवार सं १८२१ में की थी। इस रचना का मूल उद्देश्य कवि की दृष्टि में मनमोहन के गुणानुवाद के कारण भव सागर से पार होते हुए मुक्ति पद को प्राप्त करना है। कवि ने इस रचना में प्रेम रस वर्णन करने का संकल्प सिद्ध किया है। श्री कृष्ण के प्रति प्रेम भक्ति का प्रदर्शन कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है। कवि रसरासि श्री कृष्ण का पूर्ण समर्पण भक्त रहा है अपने आराध्य से प्रतिक्षण मुक्ति कामना के हित विनय-पत्र गाता रहा है। श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित

---

१ उत्सव मालिका पद्य ५–५४

श्री हरि गुरपद कमल को वदन करि धरि ध्यान ।
वरनो उत्सव मालिका जन्म कर्म गुण ज्ञान ।।
जन्म कर्म गुन ज्ञान जानि निगमागम गाए ।
सब साधन के सिद्ध रूप कहि व्यास बताए ।
परम धरम रसरासि यहैं सोभित सर्वोपरि ।
जिनके यह दृढभाव रहत तिनके ढिग श्री हरि ।।

श्री आचार्य की वंदना कर एवं श्री हरि का ध्यान धर कर उत्सव मालिका की रचना की गई है जिसमें हरि के जन्म एवं उनके क्रिया कलापों का रमणीय दृश्य उपस्थित किये गये हैं । वेद एवं पुराणों तथा उपनिषदों आदि ग्रंथों में श्री कृष्ण के जन्म कर्म के संदर्भ में विशद् रूप से विवेचन किया है । श्री रसरासि ने भी इसी संदर्भ में उत्सव मालिका की रचना कर रसिकों के लिए ज्ञान प्रस्तुत किया है । कवि की मान्यता है कि श्री हरि जिनके हृदय में हैं अथवा भक्ति सर्वोपरि भाव जिनमें है–वे ब्रह्म के निकट हैं, स्वयं भगवान उनसे सामीप्य भाव स्थापित करते हैं ।[4]

रसिक हृदयों के लिए ही रसरासि ने इस कृति की रचना की है । अतः वे कहते हैं रसिक-व्यक्तियों के आगे अपना भाल झुका कर और हृदय में श्रीकृष्ण एवं राधा का युगल रूप धारण करके उत्सव माल की रचना की जा रही है जो श्रीकृष्ण के भक्ति रस की कथाओं एवं कर्मों से आपूरित है—

रसिकन के सिर नाय के हिय धरि दंपति रूप ।
करत रसिक रसरासि, उत्सव माल अनूप ।।

वर्ष भर में अनेक त्यौहार आते हैं, भगवान के अनेक उत्सव धूम धाम से मनाये जाते हैं । श्री विष्णु ने अनेक स्वरूप धारण कर इस वसुन्धरा पर जन्म लिये हैं–उन्हीं सभी जन्मों को लेकर उत्सव मालिका में वर्णन किये गये हैं । परम ब्रह्म ने वामन, नृसिंह, परशुराम, राम एवं कृष्णादि अवतार लिए हैं यद्यपि इस कृति में इन सभी अवतारों के जन्म एवं कर्मादि विषयों पर विवेचन किया गया है फिर भी कवि अपनी ओर से क्षमा याचना करता हुआ कहता है कि कृति में अवतारों के वर्णन क्रम नहीं हैं–अर्थात राम कृष्ण से पूर्व, वामन राम से पूर्व, नृसिंह वामन से पूर्व अवतरित हुए थे किन्तु कवि ने श्रीकृष्णावतार से अपनी कृति का श्री गणेश किया है । कृति में भाद्रपद मास से प्रारम्भ कर श्रावण मास तक के सभी

४, उत्सव मालिका–१

उत्सवो का चित्रण है। अतः क्रम का ध्यान न रखते हुए पाठक गण इस कृति का अवलोकन करें–इसके लिए कवि पूर्वाग्रही है —

प्रभू जू के अवतार जेते सब नीके लाल।
आगे पाछे को भयो जब करि पाई माल।।

इस कृति में यद्यपि राम, वामन नृसिंह एवं सीता आदि के जन्मोत्सवों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है पुनरपि श्री कृष्ण के उत्सव ही विशेष रूप से कृति में छाये रहे हैं। यह भी सत्य है कि श्रीकृष्ण सम्बन्धित उत्सवों की बहुतायत है। कवि का मूल उपादान भी श्री कृष्ण ही है अतः अपने आराध्य के प्रति अतिशयता का द्योतन स्वाभाविक ही है।

श्री कृष्ण का जन्म दिवस आज भी सम्पूर्ण भारत में जन्माष्टमी के पर्व के नाम से मनाया जाता है–इस दिन श्री कृष्ण का जन्म मथुरा नगरी में अर्ध रात्रि के अंधियारे में हुआ था। इस उत्सव से अपनी कृति को आरम्भ करते हुए कवि कहता है —

भादों की आठें असित प्रकटे श्री वृजराज।
धनि जसुदा धनि नंद, धनि गोपी-गोप-समाज।।
कृष्ण पाख की अष्टमी रहें विचारत दछ।
प्रगटत ही वृजचंद के पूर्या भई प्रतछ।।

भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को नंदनंदन का जन्म हुआ था। इस दिन नन्द और यशोदा अत्यन्त हर्षित थे और गोकुल का गोप-समाज भी अत्यन्त प्रमुदित था। जब श्री कृष्ण ने अंधियारी रात्रि में जन्म लिया तो सम्पूर्ण संसार पूर्णिमा के प्रकाश से व्याप्त हो गया। व्रजभूमि में जब कंस के कुकृत्यों की बाढ़ घिर आई सज्जनों पर भयंकर आपत्तियों के बादल टूट गिरे जनजीवन संत्रस्त हो उठा और अन्याय अपने चरण तीव्रगति से बढ़ाने लगा–उस समय वृजनन्दन ने अवतार लिया जिससे वृजभूमि आनंदित हो उठी —

प्रगट भयौ हो वृजचंद नंदजू के घर
जसुदा की सेज, प्राची दिशा छवि च्वै रही।
सज्जन चकोरन के परम विनोद भयौ,
मोद चहू कोद में पीयूष ज्याति ज्व रही।
वाट्यो रसरासि वेशु अगनिन अंशु देखि
कवि न की मति मनि चन्द्रकांति च्वै रही।
भादव की आठें अंधियारी आधी राति
ही ते पूर्यो ही प्रतछ तीनो लोकन में हुवै रही।।

भारतीय सस्कृति म पोडष सस्कार का अत्यन्त महत्व निर्धारित किया गया है। प्रसव के पश्चात् प्रसविनी के कूप-पूजन, एव दसोटन आदि सस्कार होते हैं। शुभ मुहुत म लाल कन्हैया का दसोटन किया गया—

भादो की सुदि तीज सुभ लगन मुहरत देखि।
कियो दसोटन लाल को दीने दान विशेषि॥

श्री कृष्ण का राधा क बिना जीवन अपूर्ण था। लीला पुरुष की लीलाओ के लिए ललो वृषभानुजा का जन्म भी आवश्यक था। गोकुल ग्राम क निकट ही बरसान ग्राम मे राजा वृषभान के यहा राधे कुमारी ने जन्म लिया। भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को वृषभान के यहा राधे ने जन्म लकर वृजमडल को प्रचम्भित कर दिया। कवि रसरासि ने 'राधाष्टमी' पव के निमित्त उत्सव मनान के लिए इस प्रकार उल्लख किया है —

भादो उजरे पाख की आठें तिथ सुख दानि।
प्रगट भई वृषभान गृह श्री राधे रसखानि॥

जब अष्टमी की अधरात्रि म बाजे बजने लगे तो यशोदा ने किसी से समाचार मगाया जब उसे राधा जन्म के समाचार मिले तो वह नदराय से कहने लगी-प्रीति की प्रतीति भी विचित्र है, राधे और कृष्ण एक ही मास की एक ही तिथि को उत्पन्न हुए हैं—मानो पूव जन्म के सस्कारो से प्रतिबद्ध हो —

भादो की उजारी आठें आधी राति वाजे बजे
जसुमति रानी सुनि खवरि मगाई है।
आनि कह्यो आज वृषभान के कुवरि भई
वा ते बधाई दान झरीसी लगाई है।
नद औ जसोदा सुनि गुनि के कहन लागे
प्रीत की प्रतीति रीति जुगति जगाई है।
एकै मास तिथ प्रगटे है रसरासि दोऊ
जोनी जात आगिले सनेह की सगाई है।

हिन्दी साहित्य के अनेक कवियो ने राधा कृष्ण के प्रेम को अत्यन्त महत्व दिया है—वस्तुत भक्ति काल एव रीति काल के प्राय कवियो का मूल उपादान ही राधाकृष्ण प्रणय रहा है।

जब यशोदा ने घाट पूजन किया तो उसके सदर्भ मे कवि ने इस प्रकार कहा है कि भाद्रपद मास की एकादसी को नदरानी ने घाट पूजन की और नदराय ने

प्रसन्न होकर याचकों को इतना दान दिया कि वे अयाची हो गये-अर्थात् सम्पन्न एवं समृद्ध बन गये —

भादो सुदि एकादसी जसुदा पूज्यो घाट ।
नंदराय जू दान दे किये अजाची भाट ॥

वामन द्वादसी के नाम से एक उत्सव मनाया जाता है —इस दिन भगवान विष्णु ने वामन अवतार लेकर बलि राजा की परीक्षा लेते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी को दान में माग लिया था। वामन पुराण में वामन भगवान के संदर्भ में अनेक कथाएं निर्दिष्ट हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में भी वामनावतार के संदर्भ में पर्याप्त विवेचन किया है।

कवि रसरासि ने भादव के शुक्ल पक्ष की द्वादसी को वामन अवतार' करा कर इस दिवस के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है —

भादो की सुदि द्वादसी श्री वामन अवतार ।
इन्द्र काज धरि बलि छल्यौ आपु रहे गहि द्वार ॥

अमरावती का शासक इन्द्र सदा से ही सृष्टि का नियन्ता माना गया है। यह शासक संसार के किसी भी व्यक्ति के तप जप दानादि की अतिशयता से बहुत घबराता था इसे अपने पद के नष्ट होने की आशंका सदा बनी रहती थी। राजा बलि के प्रताप को भी सहन न कर सका और इन्द्र की मंत्रणा से ही विष्णु ने वामन अवतार धारण किया —

भादो की द्वादसी उजरे पाख महा प्रभु बावन को वपु धार ।
इन्द्र के काज छल्यौ बलिराज सु हाथ पसारि के पाय पसारैं ।
चाहत है सो सबै ही कियो परि गूढ़ो प्रपंच करै मोइ हार ।
बांधि के ताहि गए रसरासी है के आपु बधाय रहे बलि द्वारैं ॥

वामन अवतार के पश्चात् कवि ने आश्विन मास के प्रमुख उत्सव विजय दसमी की चर्चा की है। सम्पूर्ण भारत में 'विजय-दसमी' पर्व अत्यन्त हर्षोल्लास से मनाया जाता रहा है। इस पर्व के संदर्भ में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि रामचन्द्र ने इसी दिन लंकाधिपति रावण को संग्राम में मारा था इसी कारण विजय-दसमी उत्सव मनाया जाता है इसे दशहरा नाम से भी संबोधित किया जाता रहा है।

कवि रसरासि ने विजयदसमी की कथा को गुरु गर्ग के मुख से कहलाई है -

महत कथा गुरु गर्ग यह सुनत जसोदा मात ।
गोद माहि रसरासि प्रभु मोद भरे मुसकात ॥

गग के मुख से कथा सुन कर श्रीकृष्ण मन ही मन मुस्करा रहे हैं। इस प्रसग से राम-जन्म की कथा को दुहराई गई है तथा यह सिद्ध किया गया है कि *श्रीकृष्ण ने ही राम जन्म लिया था–श्रौर वे अपनी यशोगाथा सुन कर प्रमुदित हो रहे हैं।*

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन 'शरद-पूर्णिमा' का उत्सव सवत्र आनन्द से मनाया जाता है। शरद् ऋतु का यह महत्वपूर्ण त्यौहार है। नगर से ग्राम तक का इस दिन जन जीवन पूर्ण मुक्त होकर इस त्यौहार में सम्मिलित होता है। कवि रसरासि ने इस दिन की छवि का वर्णन करते हुए लिखा है —

राका सरद सुरहावनी सुखद कुज वन सैल ।
मनहू नेह सपति निरखि छयो छवीलो छल ॥
उठी सु उमगनि प्रेम की धरी श्रधर मृदु वैन ।
धुनि सुनि बृजवनितानि के भए सकल श्रग नैन ॥
सिमटि सिमटि आई सव नेह भरी वृजवाल ।
तिनसो कछु बाके वचन बोले नटवर लाल ॥
सब ही मिली कितको चली तुम तजि निज ऐन ।
सुनि बोली वृज की ललन करि श्रन खोहे नैन ॥

शरद पूर्णिमा के सुखपूर्ण दिवस पर प्रकृति वधु नाना रगों से विभूषित होकर *जन जीवन को मुग्ध कर रही है। वृज भूमि मे सवत्र प्रेम की धारायें बहने लगी है* व्रजाङ्गनायें नेह के वशीभूत होकर वृजराज के समीप चली आई हैं–जहाँ कुजो मे प्रणय लीला के गीत गूँजने लगे हैं।

आश्विन के पश्चात् कार्तिक मासके प्रमुख उत्सवों की चर्चा कवि ने की है। कार्तिक मास मे अत्यधिक त्यौहार मनाये जाते हैं। धन त्रयोदसी उत्सव का उल्लेख करते हुए कवि कहता है यशोदा अपने पुत्र कान्ह को व्यावहारिक शिक्षा दे रही है कि इस दिन धन पूजन करनी चाहिये —

कातिक के वदि पछ की धन तेरस त्यौंहार ।
जसुमति अपुने लाल को समझावत व्यवहार ॥
समुझावत व्यौहार प्रथम ही पूजो धन को ।
इष्ट देव रसरासि पूजियै गोधन-गन को ॥

धन त्रयोदशी के पर्व के पश्चात् रूप चतुर्दसी' का वर्णन करते हुए कवि कहता है–इस दिन स्वय यशोदा ने स्नान कर अपने कान्ह कुवर कन्हैया को उठा कर अभ्यगादिक किये। इस दिन उष्ण जल से स्नान करा कर अपने हाथ से कवर

का शृंगार किया। श्रीकृष्ण के अमित मधुर सौंदर्य को देख कर काजल का टीका लगा दिया जिससे कुदृष्टि का प्रभाव न हो सके—

जानि रूप चतुदसी जसुमति आप अन्हाय ।
छगन मगन रसरासि को लयौ उछंग उठाय ॥
लयौ उछंग उठाय तल अभ्यंग करायौ ।
उष्णोदक तें न्हाय तिलक निज हाथ बनायौ ।
आखिन अंजन आजि आजि सोचा मनमानी
दियो दिठौना देखि दीठ सका जिय जानी ॥

धन त्रयोदशी के दूसरे दिन दीपमालिका त्यौहार सम्पूर्ण भारत वर्ष में आनन्द से मनाया जाता है। निधन से लेकर धनवान तक सभी व्यक्ति इस दिन हर्षोल्लास से इस पर्व को मनाते हैं। इस दिन दीप जलाकर पूजन की जाती है। घर घर में दीप की कतारें जगमगा उठती हैं—कवि रसरासि ने दीपमालिका उत्सव का उल्लेख करते हुए कहा है कि घर घर दीप ज्योति से जगमगा रहे हैं चन्द्रमा सा प्रकाश सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। वृज भूमि में सर्वत्र आलोक बिखरा हुआ है मानों आज अमरावती स्वयं धरा पर उतर आई हो—

जगमग जोति दीप दीपकन छगनि के
रया हो महताव जोति ससि की सुहाई है ।
जटित जराय गौत सोभित विबुध सभा
तैसी यै अनूप रंभा नृत्यत हवाई है ।
नगर—बगर—बन—वीथी—पुर—पौरि—पौरि
दीखति दिवारी रसरासि छवि छाई है ।
मनो वृजराज या रंगीले ब्रजमण्डल में
इन्द्र की भकस अमरावती बनाई है ।

दीपावली के पर्व के दिन वृजभूमि किस प्रकार उत्सव मनाती है ? मंदिरों में किस प्रकार यह पर्व मनाया जाता है—इस संदर्भ में कवि ने लिखा है अनेक प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं, घर घर में व्यंजनों की भीड़ लगी रहती है। गोप गोपी अपनी गाड़ियों में पकवान भर कर गोवर्धन पर्वत की ओर जाते हैं और वहां गिरिराज की पूजन कर दीपों से आरती उतारते हैं—

दीवारी के भोर ही घर घर करि पक्वान ।
भरि भरि सकटन को चले गोपी-गोप सुजान ॥
गोपी-गोप सुजान नंद-नंदजू को करि आगि ।

गिर गोवधन हेरि हरषि वदत अनुरागि ।
करि पूजा रसरासि घरे ले पुवा सुहारी ।
अगनित दीप सजोय करि दिन मे दीवारी ।।

भारतीय जन जीवन मे भी गावधन पूजन का अत्यन्त महत्व है। घर घर के आगन मे गोबर का गोवधन बनाया जाता है और फिर दीप धूप आदि से आरती उतारते हुए उसकी पूजन की जाती है। कवि ने दीपो की तुलना इन्द्र की हजार आखो से करते हुए कहा है —

गिर-गोवधन पै घरे, दीप-अनूप अपार ।
मानहु सुरपति की अक्सउ घरें नैन हजार ।।

दीपमालिका का पव भारतीय समाज मे तीन दिन तक हर्षोल्लास से मनाया जाता है। नये वस्त्र, नये पात्र एव नये व्यजन बनाकर सभी सानन्द के साथ इस दिन दीप पूजन करते हैं, असख्य दीप जलाये जाते हैं। अधियारी रात्रि अ सख्य दीपों के प्रकाश से ज्योतित हो उठती है।

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी गोपाष्टमी[1] नाम से व्यवहृत की जाती है। वृजभूमि के लिए यह पव अत्यन्त महत्व पूण माना जाता है। कहा जाता है कि इसी दिन से कन्हैया गाय चराने के लिए वन भूमि की ओर गये थे —

कातिक के सुदि पछ की गोप अष्टमी नाम ।
धेनु चरावन को चले छैल छबीले स्याम ।
छैल छबीले स्याम सखा मडली सोहे ।
लिये लकुटिया हाथ मुकट मटकनि मन मोहे ।।
ठठकि ठठकि रहि गाय मई इकटक वनितादिक ।
रीझ छकि छवि छाय कहत धनिधनि यह कातिक ।।

श्रीकृष्ण के धेनु चराने के दिन उनकी सुन्दरता का वणन करते हुए कवि ने कहा है कि श्याम सुन्दर अपनी मित्र मडली म छल छबीले की तरह शाभित हो रहे थे हाथ मे लकुटिया थी और सिर पर सुन्दर सा मयूर पक्ष शोभित हो रहा था। व्रज की वनितायें रह रह कर के श्याम की सुन्दरता पर मुग्ध हो रही थी।

गोपाष्टमी वणन के पश्चात् कवि ने देव प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव चित्रित किया है। आषाढ शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन देव गण शयन कर लेते हैं चार मास तक कोई भी मागलिक काय नही होता है कातिक की शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन देव अपनी निद्रा का छाड कर जाग उठते है —

उजियारी एकादसी कातिक की सुनि मित्र
जाको नाम प्रबोधिनी है रसरासि पवित्र ।
हो रसरासि पवित्र लाल गिरधर लखि लीजे ।
जगि वेदि वरिलेऊ ऊप को मडप कीज ।
हरि तुलसी को व्याह निरखियें मगलकारी ।
लीजै आठा जाम ना मघुनि अति उजियारी ।।

देव प्रबोधिनी पव पर मन्दिरों म चौक पूरे जात हैं, दहरी और आगन मे लाल एव सफे रग से अनेक चित्र बनाये जाते हैं। आगन के मध्य अनेक रगो से अल्पना पूरी जाती है। यह अल्पना अत्यन्त सुन्दर एव दिव्य होती है। इसी अल्पना क मध्य एक सिंहासन स्थापित कर सुन्दर सा मडप बनाया जाता है, यह मडप गन्ना द्वारा निर्मित होता है। इस दिन अनेक प्रकार के व्यजन एव फल रखे जाते हैं। स्त्रियाँ मगल-गीत का गायन करती हुई कन्हैया को जगाती हैं।

भारत वष म स्थान स्थान पर इसी दिन तुलसी के पौधे का विष्णु के साथ विवाह किये जान की परम्परा आज तक भी प्रचलित है। जिनके सतान नहीं होती है व तुलसी का कन्या दान करते हुए विधिवत विवाह की रचना पूण करते हैं।

कार्तिक के पश्चात् कवि रसरासि ने फागुन मास के उत्सवों का उल्लेख किया है। बसन पचमी का दिन सर्वाधिक उल्लेखनीय है—इस दिन से वृजभूमि मे हर्षोल्लास मनाया जाता है। वृज की गली-गली म फागुन का उन्माद बिखर जाता नस-नस म मधुमास का विजल बिखर जाता है, चेतन-चेतन म अल्हड़पन आ जाता है स्वर स्वर म माधुय सिमट आता है। प्रकृति पूण शृगार के साथ कानन कानन म नत्य करने लगती है वनराजि अपनी सुषमा लुटाते हुए जन जीवन को मुग्ध कर लेती हैं

बानिक बनि बसत को बनि ठनि के बृजबाल ।
गज गामिनी भामिनी चली गावत गीत रसाल ।।
गावत गीत रसाल रागहिं डोल रचायो ।
पूरि हरित जव अव और भरि कलस सुहायो ।
नद राय की पौरि वारि मोती मानिक मानिक ।
गई जहा रसरासि काह बठे करि बानिक ।।

बसन्त का वातावरण देख कर वृजबाल भी पीताम्बर पहन कर झूम उठत हैं। वृजवनितायें गजगामिनी गति की तरह झूम झूम कर नाच उठती हैं। मधुर गीतो की रागिनी बरसाते हुए जन जीवन को मुग्ध कर लेती हैं। रसाल की मधु भीनी मजरियो से कुज सजाय जाते हैं—जहा मदमस्त भवरे गुन-गुनाकर उन्माद व्यक्त

करते है। नदराय के भवन पर मोती माणिक्य की राशि लुटाई जा रही थी और कन्हैया के साथ गोप मडली रग मे लीन थी। फागुन मास के उन्माद के सदभ मे कवि ने कहा है –

फागुन मास सुहावनो नित प्रति होरी ख्याल।
उतें रसीली राधिका इते रसरासि गुपाल॥
इते रसरासि गुपाल लियें कचन पिचकारी।
बागत चग मृदग वृजवधु गावत गारी॥
उडत अबीर गुलाल रगमग्यो रग अ गलागन।
हसत परस परीभि लसत चटकीलो फागन॥

फागन मास मे होली का त्यौहार मनाया जाता है। यह त्यौहार उन्माद का पव है–जहा युवक युवतियाँ उमगो के साथ रास रचाती हुई रग के खेल खेलती है। रग भरी पिचकारियां एक दूसरे पर डाली जाती है, तन मन गीले हो उठने हैं, रग बिरगी गुलाल उडाकर सम्पूण वातावरण को रगीन बना दिया जाता है। रग की मस्ती म झूमती हुइ टोलिया चग, मृदग बजाती हुई रसभीगी गालिया से कानो मे रस घोल देती है। गीतो के इस मधुर त्यौहार पर वृज मडल अपरिमित प्रेम राशि मे डूब जाता है।

कवि रसरासि अपने आराध्य श्री रामचन्द्र के जन्मोत्सव का वणन करते हुऐ कहता है –

सुखद जोग सुभ लगन सरसरितु राज विराजै।
सुक्ल पक्ष मधुमास भौमवासर छवि छाज।
मगल निधि तिथि नौमी प्रकट भये श्री रघुनायक।
भानु वश म भानु उदित द्विजदेव सहायक।
जिनकौ प्रताप रसरासि लखि उलूक जित तित डरें।
सज्जन सरसी रूह खिलि रहे सतन चित्त हित सौं जुरें।

श्री रामचन्द्र का जन्म रामनवमी' को हुआ था। सूय वश म उत्पन्न सूय सी काँति वाले श्री राम का जन्मोत्सव आज भी जन्माष्टमी की तरह भारतवष म मनाया जाता है। कवि ने श्री राम को शक्ति का प्रतीक माना है।

श्री राम की अनन्य सहचरी सीता का जन्म भी नवमी को ही हुआ था। इस दिन जानकी जन्म दिवस भी मनाया जाता है। श्री सीता का महत्व भी हमारे जन जीवन मे अत्यन्त महत्वपूण है —

माधव मास वसंत ऋतु निज तिथि नवमी जानि ।
प्रकट भई श्री जानकी जनक भुवन मे आनि ।।

कवि रसरासि ने राम एव सीता के ज नोत्सव के सदभ म विशद् विवेचन किया है। श्री राम के प्रताप एव सीता की सुदरता के सदभ मे कवि ने कवित्त रचना की है। इसके पश्चात् अक्षय-तृतीया के उत्सव का उल्लेख किया है- इस दिन ग्वालिनें एकत्रित हो कर कृष्ण-राधा के निकट आ गई और मगल गीत गाने लगी।

माधव उजरे पारन की ग्रतिया अखै अनूप ।
जूरि जूरि आई गोपिका जह दपति रसभूप ।।

श्री विष्णु न अनक अवतार धारण कर पृथ्वी को कृतकृत्य किया था। दितिसुत दत्य हिरण्यकशिपु विष्णु के नाम से घृणा करता हुआ अपने पुत्र प्रहलाद को अत्यन्त निदयता के साथ अनक यातनायें देता था-फिर भी भक्त प्रहलाद अपने आराध्य् हरि के प्रति दृढ भाव से श्रद्धावान था। दैत्य ने अनक प्रयत्न किये अनेक यातनायें दी, हत्या के लिए आदेश दिये किन्तु प्रहलाद का बाल भी बाका न हुआ तो स्वय दत्य ने अपने हाथ स उसे मारने का विचार किया-उस समय भगवान विष्णु ने नृसिह अवतार धारण करके प्रहलाद की रक्षा की यही-वह दिन था—

माधव उजरे पाख की चतुदसी सुनि मित्र ।
हरि नरहरि वपु धारि के लिये पवित्र चरित्र ।।

शुक्ल पक्ष की चतुदसी के दिन हरि ने नसिह अवतार धारण कर अपने चरित्रों का विकास किया।

कवि रसरासि ने यहा हरि के विभिन्न अवतारो की चर्चा करते हुए उनकी लीलाओं का वणन किया है। विष्णु अपने भक्तो के प्रति कितना प्रेम रखते हैं साधारण सी आत पुकार सुनकर उनका हृदय विचलित हो उठता है और व स्वय पृथ्वी की ओर दौड पडते है —

अरज करी गजराज जब तब काटि हरि पासि ।
विना विनती दुख हरत श्री नसिंह रसरासि ।।

विना विनती के ही श्री न सिंह दुख हरने के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं। इस प्रकार नसिह-चरित्र का महत्व प्रतिपादित करते हुए कवि ने नसिंह चतुदसी' पव का उल्लेख किया है।

ज्यष्ठ मास के दिनो मे भीषण गर्मी पडने लग जाती है, जड-चेतन का मन

पसीज उठता है तब भला भगवान इस गर्मी मे किस प्रकार दिन व्यतीत करते होंगे ? कवि रसरासि ने स्नान यात्रा' पर्व का उल्लेख करते हुए ग्रीष्म का सुन्दर वर्णन किया है —

जेठ मास की परम सुखद पूयो मगल निधि ।
शीतल जल रसरासि कलस भरि करहु वेद विधि ।
तुलसी दल धरि बरनि बरनि चौकी पधराव हू ।
तहा कृपानिध कान्ह कुवर को स्नान कराव हू ।
पुनि भूखन वसन बनाय के भोग राग रुचि अनुसरौ ।
तन मन धन सरवस वारि के हरिषि निरखि छवि उर धरौ ।।

वृज भूमि म 'जल यात्रा' उत्सव अत्यन्त धूमधाम से मनाया जाता है । जल के पात्रा मे केसर एव फूल तथा अन्य सुगन्धित द्रव्य डाल कर भगवान की मूर्ति का अभिषेक किया जाता है ।

जल यात्रा के उत्सव के पश्चात रथ-यात्रा का उत्सव मनाया जाता है यह उत्सव आषाढ मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को वृजभूमि मे अत्यन्त धूम धाम म मनाया जाता है । कहते हैं श्रीकृष्ण ने इसी दिन दिव्य रथ पर बठ कर वृज भूमि की यात्रा की थी तभी से यह परम्परा अजस्र गति से चली आ रही है । कवि रसरासि ने रथ-यात्रा के प्रसग म इस प्रकार उल्लेख किया है —

सुक्ल पछ आषाढ मास दुतिया तिथ दरसी ।
अति विचित्र रथ रच्यो परम अदभुत छवि परसी ।
तहा छन्न गिरधरन लाल बनिव छज वही ।
सुमन वष्टि सुर करत कहत मिलि जय जय ही ।
रसरासि नटी गावत नचन महा कुलाहल क रह्यो ।
यह सुप समाज ननन निरखि भूरिभाग सबहिन कह्यो ।

रथ यात्रा का उत्सव सुमनो का त्यौंहार होता है नये नये फूलो से रथ सजाया जाता है, फूलों के ही आभूषण तयार किये जाते हैं और फिर फूलो की वर्षा करते हुए माग पर भगवान का रथ निकलता है, रथ के आगे मगल गान गाते हुए भक्त गण चलते रहते रहते है । सम्पूण भारतवष म स्थान स्थान पर रथयात्रायें निकलती हैं । दक्षिण भारत म रथ यात्रा का सर्वाधिक महत्व है ।

श्रावण मास मे पावस का त्यौंहार मनाया जाता है । गगन मघो से आच्छादित हो जाता है रिम झिम रिम झिम जल बिन्दु गिरती रहती हैं-ऐसे मौसम में हिंडोले का त्यौहार मनाया जाता है —

सावन मास सुहावनो नित नूतन सिंगार।
झूलन रंग हिंडोर ने दंपति प्रति रिझवार॥
दंपति प्रति रिझवार वृज वधू हरखि झलावं।
मंद मंद घन गाजि फुही कछु कछु वर लावै।
सहचर राग मलार मन्द सुर गावन भावन।
चोप चुहल रसरासि बढ्यो रंग रस बरसावन॥

श्रावण की सुहानी हरियाली में दंपत्ति शृंगार कर वृक्ष की शाखाओं पर हिंडोरा डाल कर झूलते रहते हैं। भगवान कृष्ण भी श्रावण मास में झूलते थे—अत यह मास हिंडोरे का मास है। इस मास में अनेक उत्सव मनाये जाते हैं।

श्रावण शुक्ल पक्ष की एकादसी पवित्रा एकादसीनाम से व्यवहृत की जाती है। इस दिन पवित्रा धारण किये जाते हैं।

सावन सुदी एकादसी प्रगट पवीत्रा नाम।
जुरी जुरी आवत वृजवधू नंद राय के धाम।

'रक्षा बंधन' के पर्व पर कवि ने श्री कृष्ण के जीवन-प्रसंग में आज की भांति ही अपना दृष्टिकोण स्थापित किया है। नंदराय के घर सभी बहिन बेटियां इस पर्व पर आती हैं और आज की भांति ही राखी बांधती हैं —

सावन सुदि पूनौ सुखद राखी को त्यौंहार।
आई सिमिटि सवासनी नंदराय के द्वार॥
नंदराय के द्वार सकल द्विज वर मिलि आए।
रक्षा बांधत हाथ सवन वांछित फल पाए।
सब ही देत असीस होहु सुख संपत्ति पावन।
जीवौ कोटि बरष सरस रंग रस बरसावन॥

उत्सव मालिका में वर्ष भर के विभिन्न पर्वों का उल्लेख किया है किन्तु इसकी विशेषता यह है कि ये सभी पर्व श्रीकृष्ण के जीवन से जोड़ दिये गये हैं। कहीं श्रीकृष्ण को परम ब्रह्म की दृष्टि से और कहीं मानवीय दृष्टि से देखने का क्रम उपस्थित किया है। केवल त्यौंहारों के उल्लेख ही नहीं अपितु परोक्ष रूप से इन त्यौंहारों का मानवीय दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया गया है।

———

रसिक–पद

रसिक पद' कवि रसरासि की एक लघुकाय कृति है जिसमें केवल २७ पद हैं। ये सभी पद श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं से सबधित हैं। ये पद रागात्मक शली पर आधारित हैं। रामकली मल सूहर झोटी, कालगडो गौरी विभास, काफी, सारग रेखता आदि रागो मे इन पदो को आबद्ध किया गया है। श्री रसरासि ने रसिक पद का प्रारम्भ इस प्रकार किया है —

मन मे कीना उनमान ।
सूझत नाहि जतन जीवे को बिन छाडे कुलकान ।
कहा करो ले लोकलाज को जामें हित की हान ।
जप तप सजम को फल सजनी मोहन सो उर आन ।
मिठ लोनी मूरति बिन देखें निकस्यो चाहत प्रान ।
अब रसरासि कु वर गिरधर सो किय बने पहचान ।।[1]

कवि रसरासि परम ब्रह्म की प्राप्ति का सहज एव सरल मार्ग भक्ति मार्ग को ही स्वीकारता है। योगान्कि मार्गों से देह सुखाकर परमेश्वर की प्राप्ति कठिन एव नीरस है अत प्रेम के वशीभूत होकर ईश को प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है। हरि का सौंदय भी अवर्णनीय है उसकी छवि का स्वरूप चित्रित करते हुए कहा है —

हरि छवि कबहूँ न देखन पाई ।
अपनौ हित अनहित विचारयौ भली बात विसराई ।
विना काज की लोक लाज मे हों बौरो विरमाई ।
दुरि दुरि रही भोन के भीतर गुरजन सोख सिखाई ।
दिना द्वक त वशी धुनि सुनि उझकि झराखे आई ।
देखि देखि मिठलानी मूरति सब ही विधि सरसाई ।

---

1 रसिक पद १

टे ह रीभ छके से ह्वै के मोहे कु वर-कन्हाई ।
तोरि तोरि तृण मोति नि हारत मनो रक निधि पाई ।
तव तै वलन परत पल एको देखन को तरसाई ।
वा रसरासि रगीले सो मिलि हो अव तो यह वनि आई ।[2]

प्रेम माग का पथी मिलन विरह की घाटियो से गुजरता है उसे मुख दु ख मिश्रित नाना अनुभूतिया होता हैं। इस माग मे मिलन म जितना आनन्द नही उससे अधिक मिलन के क्षणो की प्रतीक्षा मे जीने योग्य क्षणो की अनुभूति हृदय को आप्ला वित कर देती है। एक सखी अन्य सखी से प्रीत के सदभ म कह रही है —

सखी री ऐसी नेह की नीत ।
हसि हसि सरवस हारि रहे हू मन मे मानत जीत ।
विरह वियोग यहा दु ख तामे सुख कैसी परतीत ।
मन मोहन रसरासि पियारे की निपट अटपटी प्रीत ।

प्रेम क पथ पर चलने वाले निशि वासर अपन प्रिय को ही देखते रहते हैं। प्रकृति के हर रूप मे प्रिय का ही स्वरूप दिखाई देने लगता है। सम्पूण जगत प्रेममय होकर उसे प्रेम की बातें कहता है। हर ऋतु मे श्याम छवि अपना मनोहर रूप लिये अपने प्रेमी जनो को मुग्ध करती रहती है। वसन्त, ग्रीष्म, पावस एव शरद ऋतु आदि म प्रिय छवि अलौकिक रूप लिए मानस म रम जाती है।

कवि रसराशि न पावस-ऋतु के वणन प्रसग म गोपिका के हृदय की बात सहज रूप से कहलाई है —

आज भोर ही उमडि घुमडि घन घार्‌योरी ।
मेरे तन को मैं नत पाय परयो री ।
तसी ये चहकत चपला चित चोघ्योरी ।
वडी वडी वू दन कौ भर तैसे सोई अ घ्योरी ।
तैसे ही चातक मोर करजे कोरें री ।
करि करि दादुर सोर सुकानन फोरे री ।
तैसी ये वैरिन वसी मन वौरायौरी ।
तसो ई गिरधर छैल रहत मडरायौरी ।
तैसी ये ननद जिठानी जिय की प्यासी री ।
कोन कोन दु ख भरो मरो अरु हासी री ।

2—रसिक-पद-२

होनी होय सु होहु जाह्न् ग्हलाजरी ।
लपटोगी रसरासि कुवर सो श्राजरी ॥

वृजनिधि ने भी पावस ऋतु के सदभ मे मनोहर वणन किया है ।[3]

प्रेम क माग पर चलने वाली प्रिया श्रपने प्रियतम के विरह मे ग्रत्यन्त विकल है । विरह के दिनो मे वह श्रपने निष्ठुर प्रिय को हृदय हीन की सना देत हुए श्रनेक उपालम्भ देती है । उपालम्भ दे देकर हृदय को श्राश्वस्त करती है —

तिहारी चेरी भई होरे निरमाहिया ! क्यो तरसावत प्रान ?
घर घर करत चवा चवैया उधर परी उरमान ।
तेरे हित के काज जगत के सहे करोरि श्रपमान ।
तुम रसरासि एक हू न जानी यह कैसी पहचान ॥

प्रियतमा न श्रपने प्रिय के प्रेम मे सब कुछ छोड दिया है, कुल एव घर की प्रतिष्ठा की सीमायें तोड कर वह श्रपने प्रिय के निकट श्राई—उसे यहा श्राने तक समाज के द्वारा ■ सख्य श्रपमान सहन करने पडे श्रौर वह हर क्षण श्रपमान की विष घूट पीती हुई श्रपने प्रिय से मिलने श्राई किन्तु उसके प्रिय ने उसके साथ वचना की-उसके प्रेम का इसस श्राघात हुश्रा श्रौर उसके मन ने प्रिय को निर्मोही कह डाला ।

हिन्दी साहित्य के विभिन्न कवियो न इस प्रकार का वणन किया हैं कवयित्री मीरा ने भी श्रपन प्रियतम से कहा है कि तुम प्रीति कर कहाँ जाश्रोगे-मैं तुम्हारे प्रेम मे प्राण त्याग दूगी[4] महा कवि बिहारी के प्रेम-विरह की स्थिति पृथक ही है ।[5] प्रेम के प्रसग का लेकर हिन्दी म विशद रूप से सृजन हुश्रा है । कवि वृजनिधि की गोपिका श्रपने हृदय की व्यथा को व्यक्त करते हुए कहती है[6]

कवि रसरासि की व्रज नारी मन मोहन के प्रेम मे रगी हुई श्रपने प्रिय पर

3—वृजनिधि पद सग्रह-२४

4 ऐसी लगन लगाई कहाँ तू जासी ।
तुम देखे बिन कल न परित है तलफि तलफि जिय जासी ।
तेरे खातिर जोगण हूँगी, करवत लूगी कासी ।
मीरा प्रभु गिरधर नागर, चरण कवल की दासी ।

5 जो न जुगुति पिय मिलन की धूरि मुकुति मुख दीन ।
जो लहिये सग सजन तो धरक नरक हू कौन ॥

6 प्रेम पदारथ पाय नेम निगोडो गरि गयो ।
श्रासुन को भर लाय हीय सरोवर भरि गयो ॥

सर्वस्व निछावर कर अपने आपको भाग्य शालिनी मानती है। कवि ने इस सन्दर्भ मे चित्रात्मक रूप से भावो की अभिव्यक्ति की है—

मन मोहन के रग रगी व्रजनारी हो ।
व्रजनारिन के रग रगे वनवारी हो ।
मोहन बशी वट तर वाट निहारे हो ।
कोरि कलप सम पलक नीठि निखारे हो ।
ये ऊ उतकुल कानि घिरी घर बैठी हो ।
रहि न सक्यौ मन उठी सुप्रेम अमैठी हो ।
तोरि चली गुरु लाज सकला गाढी हो ।
अ ग अनग तरग विथा अति वाढी हो ।
हरि छवि प्यासे दृगन चपलता छाई हो ।
उमकत देखत कु ज इतैं चलि आई हो ।
नूपुर ध्वनि सुनि चोकि उठे गिरधारी हो ।
दौरी सामु है आय कह्यो वलिहारी हो ।
दोउ हाथन पर हाथ प्रिया को लीने हैं ।
मद मद मुसकात चले रग भीने हैं ।
फूलन के हरि भूषन वसन वनाये हैं ।
श्रीराधे जू के अ ग-अ ग पहिराये हैं ।
रीझि प्रिय दइ है माल, लाल हियलावें हैं ।
चूमि दृगन सो लाय सीस पधरावे हैं ।
अपने हाथन कुसम सेज रचि राखे हैं ।
हाथ जोरि करि सेन वेन कछु भाखे हैं ।
हो तो तुम्हारे रग रग्यो नवरगी हैं ।
जनम जनम जहाँ तहा तुम्हारो सगी है ।
सुन तर सम से वचन समझि सकुचानी है ।
लालो टकरि चली भली मन मानी है ।
हलि मिलो बैठे कुञ्ज पु ज सुख लूटे हैं ।
छुटे छवीले वार हार उर टूटें हो ।
लसें सावरे अ ग स्वेद कन वू दे हैं ।
ललना निरखि जाथ हा गन को मू दे हैं ।
कु ज रध्र मग हेरि सबै मुख भोरे हौं ।
निरखि सखी रसरासि तृण तोरे हो ॥

प्रिय एव प्रिया के मिलन के मधुर क्षणो में उनके मनोभावो एव वृत्तियों का प्रकाशन कवि ने मनोरम ढग से प्रस्तुत किया है।

श्रीकृष्ण की विविध लीलामयी लीलाओ मे माखन चोरी' लीला अत्यन्त मनमोहक है। श्री कृष्ण व्रजवनिताओ के घर मे अपन साथियो को लेकर घुस जाते और निभय होकर मटकियो से माखन निकाल कर खा जाते, गोपिया खोजती रहती और रसिक शिरोमणि को चोरी पकडन के लिए सचेत रहती। कभी कभी उनकी इस लीला पर रीझती और मन ही मन मे प्रसन्न होकर सोचती कि आज हमारे घर मे कन्हैया माखन चोरी करने आये। कन्हैया माखन को निकाल कर अपने सखा सुदामा एव श्रीदामा को वितरित कर देते और दोनो हाथो से अपने श्याम मुख पर लप लेत। श्री कृष्ण की दान लीला सर्वाधिक उल्लेखनीय है माखन के हित गोपियो को सताना और र ह मे रोककर उनकी माखन भरी मटकिया गिरा देना स्वाभाविक प्राप्त हो गई थी।

रसरासि की गोपिया माखन की मटकिया लेकर चलती और कृष्ण की इस क्रिया से बेहद प्रसन्न होकर यही कहती —

हम सगी गिरधरलाल के।
दधि माखन के लूटन वारे अँडी वेंडी चाल के।
जानत घात जगाति दान की निपट परखवा माल के।
नीठ मजाखन मे अति गाढे वाके जवाब सवाल के।
रस गोरस के राते माते समुझैया सुरताल के।
मनो मनसुखा सुवल सुदामा सव ही सखा सुबाल के।
वहुरगी वृदावन वासी कान मरोरत काल के।
साचे सू रे सुघर सनेही टूटे एक ही डाल के।
तुम्हारे सीस मथनिया दधि की चमकत चेंदा भाल के।
दान दिये विन कित ज हौ वसि परि गई लोग ग्वाल के।
लिये लकुटिया मोहन ठाडे स्वादी नई रसाल के।
क्यो सव ही तुम सटपटासि हो दे झूलेहु सुख नेहजाल के।
तनक तनक दधि देन लालको आवा वोर तमाल के।
मिल चलियँ रसरासि कु वर सो अरसो खुले मनोरथ ख्याल के॥

श्री कृष्ण के बाल सौंदय का चित्रण करते हुए कवि रसरासि उनके प्रात कालीन जागरण का दृश्य उपस्थित करते है —

भोर ही जागे जुगल किसोर ।
ललकि ललकि लपटात परसपर रग भरे सावल गोर ।
कबहु क उठि बैठत अलसाने कबहु क झुकत सेज की ओर ।
हुलसत हसत करत हित बातें बढत सुगध झकोर ।
दपति मुख सपति के लोभी उरझे जोवन-जोर ।
दोउन के मुख चद निहारत दोऊ चतुर-चकोर ।
दोऊ रसिक रसम से दोऊ दोऊ चित के चोर ।
दुरि देखत रसरासि सखी तहाँ बडभागी पिक मोर ॥

गोकुल की ग्वालिनें मनमोहन के प्रेम मे उन्मादित होकर गली गली मे फागुनी गीत गाने म तन्मय रहती थीं। अल्हडपन को लिए ये गरबीली गोपाङ्गनायें अपनी सुन्दर आँखो म काजल के बादल सिमेटे फागुन के महीने में बृज पर धमाल गाती हुई अपने रसिक के प्रति मीठी मीठी गालिया गाती थी। यशोदा के भवन के बाहर खडी होकर युक्ति से का ह को बाहर बुलाती और अपने रसिक को पाकर तन मन से उसके अग अग से लिपट जाती थी। श्री कृष्ण और व्रजवनिताओं में रसीली रार मच जाती और एक मनोरजक दृश्य उपस्थित हो जाता इसी सदर्भ को लेकर कवि रसरासि ने गूजरियों के प्रेम भाव को प्रदर्शित किया है —

गुजरिया लाग भरी यह मोहन की लगवारि ।
अरबीली गरबीली अखियन आई अजन-सारि ।
फागुन मास लग्यौ ताहि दिन रही रचाय धमारि ।
गावत जीली अति उरझीली गास गसीली गारि ।
बारहि बार पौरी जसोदा की रहत निहारि-निहारि ।
अपना बोल सुनाय बुलावत असी चतुर खिलारि ।
तनक भनक सुनि श्याम सुदर वरे घेरिलई ललकारि ।
तब की कहि न परत छवि मौ पे रची रसीली रारि ।
लाल गुलाल उडाय चहु दिसि दीन्हे परदा डारि ।
लपटि गई रसरासि कुवर सो गो की समनिहारी ।

कवि रसरासि ने अपना साहित्य बृजभाषा की माधुरी मे ही लिखा हैं किन्तु इसके अतिरिक्त राजस्थानी एव पजाबी भाषा का आश्रय लेकर भी भावों की अभिव्यक्ति की है। राजस्थानी भाषा मे ढुढारी बोली के शब्दों का प्रयोग किया है—सम्भवत कवि पर यह देशकाल का प्रभाव है। कवि जयपुर मे रहता था—और जयपुर की जन बोली ढुढारी ही रही है। कवि ने राजस्थानी भाषा मे श्री कृष्ण

और गोपियों के प्रेम के विविध भावो को प्रदर्शित करते हुए मनोरम अभिव्यक्ति की हैं। श्री कृष्ण गोपी के पीछे पीछे आ रहा है और गोपी उसे हाथ जोड कर कह रही है —

म्हारै लारै लाग्या लाग्या काई आवो छो ।
देखैली म्हारी सासू नणदल घर मे राडि मचावो छो ।
क्योत पड्या तो हाजर होस्या नाहक हा हा खावो छो ।
मनमोहन रसरासि कु वर थे कु जा मे क्या न आवो छो ।।

श्री कृष्ण और गोपी कु जो मे प्रेम रास म रसलीन हैं। प्रेमोन्माद मे लोक लाज का ध्यान भी नही रहा। समय की गति तो निर्बाध गति से चलती रहती है किन्तु प्रेमी-युगल को समय का ध्यान कहा ? गोपिका को सहसा ध्यान आता है तो वह अपने प्रिय से कहती है कि–प्रिय ! मुझे अब तो घर जाने दो ? मुझे घर में बहुत काम है तुम यदि चाहो तो मेरे घर आ जाना जहा एकान्त हैं। यदि तुम मेरा घर नही पहचानो तो किसी से भी रसरासि की सखी का नाम पूछ लेना–

जावा दे हठीला कान्ह म्हारै घर काम छै ।
थारो मन हू ता थ आवज्यो जमुना री तीर म्हारो गाव छै ।
चपा री रूख पिछोकडे म्हार निपट अकेलो ठाव छै ।
नही जाणो तो पूछ न पधारज्यो रसरासि-सखी म्हारो नाम छै।।

कन्हैया को अपने घर का सकेत देकर गोपिका घर लौट आई किन्तु कन्हैया नही आया–उसकी प्रतीक्षा मे कालिन्दी के कूल पर कदम्ब कु जों मे भटक कर हार गई तब उसका विकल हृदय मौन न रह सका—

कद काई जोवा थारा वाट रे कानूडा नीठि मिल्या छा ।
दूजो तो कोई म्हारी दाय न आव म्हे तो थारे हेत हिल्या छा ।
बागा चाला छोगा मेला छावली निरखा ।
अमला उपरि ओप चढावा वाह सिवोला हरखा ।
नैणा थी तो नैण मिलावा हाथा जाडी हाथ ।
उदमाद्या रसरासि कु अर थे म्हे पिण थारे साथ ।

चिर प्रतीक्षा के पश्चात् कन्हैया मिल गया तो मानिनी मान कर बैठी। कन्हैया ने ब्रज को वनिता को कु ज मे चलने के लिए मनाया तो उसने बहाना बनाते हुए कहा प्रिय हम आज तुम ही कु जा मे ले चलो हमारे तो पगा मे छाल हो रहे हैं–

काना जी म्हाने कु जा मे ले चालो ।
म्हे तो राज रै काधे चढि चालस्या पग मे छाला ।

रिमझिम रिमझिम मेह बरस मारग छै आलो ।
भीजैलो म्हारी सुरग चूनडी दीजै राज दुसालो ।
राखाला म्हे था पर वायारी ग्याछा देखि दुमालो ।
हर्या कदम रो छाया माही लाल हिंडोलो घालो ।
वाहा जोडी हीड मचास्या पीस्या रग रो प्यालो ।।
सरस सुहावणा सावण मे जी म्हारो रोम वडो छ मतवालो ।
साथै लै रसरासि सखी नें ये तो लटक मटकता हालो ।।

सवाई प्रतापसिंह क समय रेखता शली का प्रचलन बहुत था । रेखता मे उर्दू मिश्रित पजाबी का प्रयोग किया जाता था । स्वय वृजनिधि ने उर्दू फारसी एव पजाबी मिश्रित रेखता लिखे हैं । श्रीकृष्ण के प्रेम मे रमी हुई गोपिका कहती है ।[7]

कवि रसरासि वृजनिधि' के आश्रित कवि रहे हैं, ग्रत उन पर वृजनिधि का पूण प्रभाव रहा है–जिसका ज्वलन्त उदाहरण कवि के द्वारा लिखे गये रेखता हैं । कवि के रेखता भी उर्दु–फारसी एव पजाबी मिश्रित हैं । रसरासि का रेखता शल म लिखा पद देखिये —

मेडा दिल वे कदरो दे दस्त ।
नाले नाले फिरै लटक दा खुसी जमाल परस्त ।
इस्क सराव पियाला पीकर होय रहा ग्रलमस्त ।
पाया है रसरासि जहूर विन पैरो दे वस्त ।

रेखता साहित्य के सदर्भ मे डा० रामकुमारी कौल ने ब्रजनिधि से सम्बन्धित रखता शली के बारे म इस प्रकार लिखा है —

रेखता साहित्य तत्कालीन शली थी । नागरी दास जी ने भी रेखते लिखे थे । इतना कहना पर्याप्त है कि उर्दु, फारसी पजाबी और हिन्दी सभी के मिश्रण से यह पुटपाक बनता है ।

कवि रसरासि के साहित्य मे १०–१२ रेखते ही मिलते हैं–जिनमें भी अनेक भाषा के शब्दा का सम्मिश्रण मिलता है —

---

7 सलोने स्याम ने मन सीता ।
रस दिहाड कल नहिं पडदी क्या जाणू क्या कीता ।
कहर विरह दी लहर उठदी दिल नहिं रहे सुचीता ।
ब्रजनिधि मिहरि नजरवा जू अब क्या होवे चित-चीता ।।

आखडे या साडी दरदो वे दरदी ।
आग्या तुसी निहर हरक हरज हरक रद करदी ।
मन मोहन रसरासि कहा व दा दोस्ती कर दरस ।
धुपावदा आज जके पर चलावदा एतीक्या मुठ भरदी ॥

किशनगढ राजघराने के कवि महाराजा सावतसिंह जिनका साहित्य म उप नाम नागरीदास रहा है–रेखता साहित्य मे उल्लेखनीय योगदान दिया है । इनके द्वारा लिखे गये रेखता साहित्य मे पजाबी भाषा के श ब्दो का सम्मिश्रण अधिक है ।[1] ब्रजनिधि एव रसरासि के रेखता साहित्य म पजाबी शब्दो की अपेक्षा उर्दू एव फारसी शब्दों का बाहुल्य मिलता है ।

रसरासि का एक रेखता देखिये–जिसमें उर्दू के शब्द की बहुतायत है –

तेरे मिलन के चाव सें प्यारा हुआ है प्यारी ।
क्या खूब खुली है गीसू ही सजीली सारी ।
चस्मो मे सुरमा देने की चसकन मैं कजा कारी ।
भोहो के कसूने हुसन मे करता है जुलम जारी ।
बालो के भार लक की लचकन पै वारो वारी ।
चालि चलि मचलिने मु डिने का तुम सो भी न्याज-न्यारी
उसकी अदा कु देखि के दिल होगा वे करारी ॥

---

1 नना लागे बेपरवाही दे नाल ।
एक पलक भी कल नहि पावा रहदा हरदम हाल ।
दिन दिन पीदा ज्वान असाढा उम नागर दे ख्याल ।
नागरिया बसीवाल दा इस्क नही जजाल ।
—पद सागर''

ऊणो म जोगन होय फिरया आवा मन से गया बसीवाला ।
इन गेलरिया आप के भुज पर पूल बलाय ।
इस्क लपेटी बात सो कछु कहि गया मुरि मुस्काय ।
अबतें कल पावा नहीं पल न लगे दिन–रन ।
कहर कलेजें म लगी उन ननां दी सन ।
मन मोहन दे कार नें फिरा उवाहि न पाय ।
ढू ढा गमरु सावला गया मन्मथ अलख जगाय ।
रूप उजागर भार विन रहिना नहि सयान ।
भाव गले लगि भावते ये नागर दिल जान ॥
—पद सागर पृ ४२२

कवि रसरासि के इस रसिक पद सग्रह मे सभी पद श्रीकृष्ण के प्रेम से सम्बन्धित मनोभावो की अभिव्यक्ति हैं। श्रीकृष्ण के रूप सौन्य पर मुग्ध होकर गोपियाँ अपनी मर्यादा की सीमा को तोडते हुए रसरासि के साथ रास रचाने को अनवरत कामना शील दिखाई देती हैं। गोपियो का अन्तमन प्रिय के बाह्य-सौंदय पर अत्यन्त प्रसन्न हैं, प्रिय के शृगार पर रीझ कर तन मन की सुध बुध खोकर कभी मिलन के क्षणो म आनन्द मनाती और कभी विरह के दिनो मे उपालम्भ देती हुई अपने प्रियतम को कोसती हैं। कालिन्दी के कूल पर कदम्ब कुजो में अभिसार करती हुई प्रिय से अनेक वचन करती हुई पुनर्मिलन के अवसर खोजती नजर आती हैं। प्रेम चित्रण मे भावनात्मक सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ कम हैं और विलासिता की गध अधिक।

कवि ने विविध रागो के साथ रसिक पदो की रचना की है—तत्कालीन समाज में राग रागिनियों का प्रबल जोर था। राजा महाराजाओं की राज सभा एव मन्दिरो के प्रागण में इकतारे पर विविध रागो के साथ गीत गाये जाते थे अथवा कीतन होते थे।

सभी पदो की भाषा बृजभाषा है किन्तु कहीं कही पर फारसी, उर्दू एव पजाबी तथा राजस्थानी शब्दो का प्रयोग भी हुआ है, कुछ पद तो पृथक् पृथक् भाषा में ही आबद्ध किये गये हैं।

रसिक प० सग्रह रस से परिपूण सामान्य जन के मनोरजन के लिए अच्छी सी रचना कही जा सकती है।

फुटकर कवित्त

'फुटकर कवित्त' शीर्षक से रसरासि ने विविध पदों की रचना की है। शीर्षक से इस संकलन में कवित्त ही होने चाहिये थे किन्तु इस संग्रह में कवि द्वारा रचित कवित्त सवैया एवं दोहे आदि भी संकलित हैं। पदों की रचना 'रसिक पद' की तरह विभिन्न राग रागिनि के आधार पर ही हुई है। इस संकलन में भी श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य एवं गोपी प्रेम का विशद वर्णन प्राप्त होता है। रसरासि के समूचे सृजन का मूलरूप से एक ही उपादान है—वह है-श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति भावना एवं उसके विलासी स्वरूप की प्रतिष्ठा करते हुए रासलीला के उन्माद को व्यक्त करना।

कृति के प्रारम्भ में मंगलाचरण किया गया है —

रमा नाथ राम नाथ रंगनाथ जगनाथ
जदुकुल नाथ बृजनाथ बनवारी है।
बंसी धर वेत्र धर वाहन विचित्र धर
गदाधर चक्रधर गोवर्धनधारी है।
नरदेव हरदेव बलदेव वासुदेव
विश्वम्भर देव मधुसूदन मुरारी है।
मोहन मुकुंद नंद बृज चंद श्री गुब्यंद
रसरासि राधा रसिक विहारी है॥
महादेव महारुद्र महामुंड मालो
मृड मृत्युञ्जय मानद महेश मंत्रधारी है।
निर्गुण त्रिगुण रूपत्राता त्रयतापहर
त्रिकालग्य त्र्यंबक त्रिशूली त्रिपुरारी है।
भूतपति भीम भव भैरव भवानीपति
भूषन भुजग भस्म माल प्रभा भारी है।
सदा सिव शंभु सितकंठ ससि सीस
ईस माहे सुप्रकास रसरासि त्रास हारी है।

विष्णु सहस्र नाम की तरह अपने आराध्य के सभी नाम विशेषणो के साथ व्यक्त किये गये हैं। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त शिव की उपासना भी उसी शैली मे की गई है-जिससे शिव का महत्व उभरकर सामने आ जाये। कृष्ण एव शिव की उपासना स्तुति के पश्चात् कृति मे शक्ति के विविध रूपो का उल्लेख करते हुए स्तवन किया गया है। शक्ति के भयकर रूपो को व्यक्त कर सौम्य-स्वरूप का चित्रण भी किया गया है। मगलाचरण चित्रात्मक काव्य शैली मे लिखा गया है।

मगलाचरण के पश्चात् कवि रसरासि ने कृति के उद्देश्य पर विशद विवेचना की है। कवि की मान्यता है कि-उसने इन कृतियो मे श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन किया है जन जीवन इस प्रेम-मार्ग के माध्यम से अपना समस्त जीवन को समाप्त करते हुए सदव्यवहारिक बनकर पर-सेवा म लीन हो जाये।

दीन दुखी जीवन के दुख को मिटावत
जो लेत पर द्रव्य को न बोलै सदा सत्य सानि।
दान को देखि समय देखि जथा शक्ति
दान करै पर तिय कथा मूक भाव चित राखै मानि।
तृष्णा को प्रवाह रोकि पूजौ गुरु हरि जू को
सब सो कृपाल रहै गहै रसरासि बानि।
महा कलि काल जामें जाको यह चाल
तो को नर के सरूप हरि हर के समान जानि।।

ससार मे जो व्यक्ति सत्य का आचरण करता है, पर-सेवा भाव का हृदय मे रखते हुए दीन दुखी जन की सेवा म लगा रहता है दानशील रहता है, किसी भी व्यक्ति की निन्दा नही करता है पर तिय की बात भी नही विचारता है ऐसा सन्त पुरुष हरि के सदृश है। अत अपने मन को समझाता हुआ कवि कहता है —

एरे मन मेरे तेरे पायन परत हैं रे नेक सुनि ले
औरे स्वारथ को समानि जानि।
भूख प्यास लागत है तो हि रसरासि तैसे
सबको लगत, प्याविवे को सें तू वहै जिन।
सुख दुख सम्पत्ति विपत्ति मे एकरस
दया चित्त राखि चित काहूको तू चहै जिन।
और की कही जो बात बुरी तोहिलागे
अँसी कुछित कुबात क्रूर काहू सो तू कहै जिन।।

अपनी आत्मा के समान सभी सासारिक आत्माओ की सुख दुख की अनु

भूतियो का अनुभव करते हुए आचरण क ना ही मानवता अथवा वष्णवता है। सुख दु ख एव सम्पत्ति विपत्ति मे समान रूप से जीवन जीता हुआ मानस मे कारुणिक भावो को जाग्रत किये, श्री हरि भक्ति ? रत रह। जिस प्रकार अ य यक्ति के मुख से कडवी बात सुनने पर हृदय को दु ख होता है–उसी प्रकार कुत्सित एव कुबात अ य व्यक्तियों के हृदय को भी पीडा पहुचाती है। नीति क सदभ मे कवि कहता है —

थारी वारो प्रथम दूसरो पत को लेवा।
अतिय शत्रु चोथो उदास सुनितिन के मेवा।
लेत धर्यो जिहि भाति लेत वह मूल व्याज भरि।
वैरी काढत वैर उदासी रहत कहूँ टरि।
पचम सभ्य सेवा करत वहूँ पुल जानो सुखद।
रसरासि करा प्रथम सदा सवदा, वे दुखद॥

श्री हरि की सवा म चित्त लगाने से ही परम-प" की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार अपन उद्देश्य की पूर्ति करते हुए र व कवि रसरासि अपने आराध्य श्री कृष्ण के प्रेम चरित्रो का श्री गणेश करता है। ्र भूमि मे नन्द के घर मे वृजनन्द का ज म हुआ है, सवत्र आन द की हिलोरें व्याप्त हो रही हैं, गली-गली मे हर्षो ल्लास हो रहा है।

न द की वृद्धावस्था मे पुत्र ज म हुआ है अत सम्पूण परिवार अत्यन्त प्रमुदित है। कवि भी इसे पुण्य प्रताप की सज्ञा देते हुए दानशीलता के सदभ म पुत्रोत्सव के रूप म सम्मिलित होता हुआ अपने भावो को यक्त करता है —

वृद्ध वय माहि जावे पुण्य के प्रवाह ही ते
प्रगट्यो है पूत सुनि उमग्यो उदार है।
रसरासि मघवा लो लाय राख्यो दान
भर लुटावत धेनु धन वसन अपार है।
गावत नचत वृजवासिन के बीच
ठाडो वरसत मोती मनि मानक सुधार है।
वदी अरु विप्रन को करत अजाची
आज गोकुल को नाथ नद नौंमा रीझवारहै॥

सम्पूण गोकुल ग्राम मे श्रीकृष्ण के ज मोत्सव पर धनराशि लुटाई गई। व दी जन और विप्र समाज को अयाचित कर दिया गया। कवि ने कृष्ण के अमित सौन्य का चित्र अनन्य रसता पर चित्रित किया है। इस सकलन म भी नटवर मोहन के सुन्दर स्वरूप की अभिव्यक्ति के दशन होते हैं। वृज वनिता ने अपनी आसो से जो

सौन्य देखा है उसकी अभिव्यक्ति वह अपनी सखियो के सामने कर रही है —

मोहन सुंदर सावरो छैल त्रिभग है अगजराव जर्यो सो।
आय कह्यौ इ१ आज अरैल उमग है रीझ की ढार ढरयो सो।
मो मन भावतो फल सुढग है, वारनें प्रान कर्यौ सो।
गावत श्री वृजराज चुटैले भुजग है, तान तरगन मे भर्यौ सो।

श्री कृष्ण की रूप सुधा का पान कर गोपिया सहज रूप से मोहिनी मूरति पर रीझ जाती हैं। मोहन के प्रति आत्मार्पित होकर गोपियों ने चितचोर को अपने हृदय में बसाकर प्रेम-व्यापार प्रारम्भ कर दिया। यमुना नदी का किनारा प्रेम की कहानियों से आपूरित हो गया तरगें प्रेम-गीत म हिलोरे लेने लगी और स्वय कालिंदी का सयम विश्रृंखल होने लगा-वह कृष्ण से मिलने के लिए विकल हो उठी। कभी वशीवट की शीतल छाव म गोपियाँ श्रीकृष्ण के मुख से मुरली का मधुर निनाद सुन कर मृगीयूथ की तरह ध्यान मग्न हो जाती तो कभी गलियों म कृष्ण को गालिया सुनाकर आनन्द लेती। कभी माखन चोरी के लिए आमन्त्रित करती और कभी पकड कर शोर मचाती। इस प्रकार प्रेम मय जीवन बिताने म अपनी सुध-बुध भी खो उठती थी। श्रीकृष्ण एव गोपियों के सम्भोग शृ गार का वर्णन हमे हिन्दी साहित्य में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है।

जितना सम्भोग शृ गार का वर्णन किया गया है-उससे अधिक एव भावनात्मक रूप से विप्रलम्भ का वर्णन प्राप्त होता है। प्रिय के विरह म गोपिकायें विकल हो उठती हैं। रसरासि का विरह वर्णन भी प्रेम-व्यजना से परिपूर्ण है —

लरे हहरात फिरें मडरात गिरे भरराात परे बरसात।
जियौ मकुलात भयौ कृशगात कियौ छात हियो न समात।
तजे पितु मात लजे सब भ्रात भगे उठि प्रात भजे उठि प्रात।
नये रसरासि भये तजि त्रास छ्ये हम आस पिया सन जात।

कवि बिहारी ने विरह का वर्णन अतिशयता से किया है।[१] श्री कृष्ण का बाल लीला वर्णन भी अतिरेक पूर्ण है। कन्हैया ने अपने गाव के सभी लडको का घर से खेलने के लिए बुला लिया है। घर घर मे माखन चोरी करने दौड रहे हैं। छल

---

१ इत आवति चलि जाति उत चली छ-सातक हाथ।
चढी हिंडोरे सी रहें लगी उसासनि साथ।।
कहा कहौं वाकी दसा प्रानन के ईस।
विरह ज्वाल जरिवा लखें मरिबो भई असीस।।

की तरह शृ गार कर बातें बनाता फिरता है–ऐसा कन्हैया वृज मडल मे कहा ॥ आ गया ?–इस प्रकार व्रज की बनितायें परस्पर म बातें करती हुई कहती हैं —

मेरे लला को बुलाय लियो रसरासि धरी घर ये न रहाई।
दौरि के आवत ए बिरमावत धावत माखन मेवा मिठाई।
छैलभ के से सिंगार बनावत भावती बातन मे बनि आई।
हाय दई व्रजमडल माझ कहा तें ए आनिबसे हैं गुसाई।

एक गोपिका श्रीकृष्ण की मोहिनी मूर्ति पर मुग्ध होकर भोलेपन से अपनी मा से कहती हैं ए री मैया ! मुझे यह यदुकुल का कुँवर अति प्यारा लगता है ये कुल वाले सभी अच्छे हैं और स्नेह से आपूरित हैं, कोई इन कुमारों को देख कर विप्र कहता है और कोई अहीर। यदि ये अपनी जाति वाले हो तो किन्तु ये किसी दूसरी जाति के भी नहीं हैं, अन्यथा—

ए मईया मोहि बल्लभ लागत बल्लभ के कुलवारे अहीरा।
हैं सबरे अति नेह भरे बलदाऊ से सुन्दर गौर शरीरा।
कोक इन्हे द्विजराज कहं रसरासि सुने मन होत अधीरा।
जौ प ए आपुनि जातिन होहि तौ खात क्यो मेरे प्रसाद को बीरा।

रसरासि ने सम्भोग शृ गार का चित्रण करते हुए गोपियो के हाव भावो का मनोरम दृश्य उपस्थित किया है —

खनकत चूरी कर झनकत ककन हू
रनकत किंकनी की झनक सुहाई है।
सुक पिक मोर सोर करन चकोर लागे
भोरन के भौर वारो ओर छवि छाई है।
न न न न नाही नाही सिसकी करत
ज्यो ज्यो त्यो त्यो रसरासि शोभा अति सरमाई है।
दुरि दुरि देखि देखि मुरि मुरि जात
सखी छकनि छकाई पाई २ हंसि बधाई है॥

सस्कृत साहित्य तो विलासिता से पूर्ण समृद्ध है किन्तु हिंदी के रीतिकाल म भी विलास भावनाओं का साम्राज्य रहा है। रीतिकाल ही नहीं अपितु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी रति–रस की भावनाओ को उभारा है।[1]

१– प्यारी लाजन सकुची जात।
ज्यों ज्यों रति प्रतिबिम्ब सामु है आरसी मोह सखात।
कहन लाग यहि दूरि राखिय, बलकरि कपत जात।
हरीचद्र रस बढ़ा अधिक अति ज्यो ज्यों तिय लजात।
—भारतेन्दु ग्रथावली पृ ४८५

काहे को करत व्रत जोग अरु जग्यन को
ध्यान किये आनि हिये होत वृजचन्द को उदोत है।
कवि रसरासि जो रसीले को रिझायौ चहोतौ
तौ वेग ह्वै राधा वल्लभ सु गोत है।
नेस कहौ कीरति किसोरी जू को ध्यान किये
आनि हिये होत वृजचद को उद्दोत है।
लोक बदहू यह बात बनि आई भइ
लाडिलो की सेवा किये लाल बसि होत हैं ।।

गोपियाँ कहती हैं कि योग रूप साधना से कुछ भी लाभ नहीं है यदि श्री कृष्ण क प्राप्त करना चाहती हो तो राधा रानी की मनौतीकरो-

श्री कृष्ण का राधारानी से घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे उसकेप्रेम मे दीवाने होकर उसके पीछे पीछे भागते रहते हैं। अनुप्रासात्मक छटा के साथ कवि ने इन भावो को प्रदर्शित किया है —

लाडली को ध्यावें तासो लाल ललचावे
अरु लाडिली को गाव तहा नृत्यत नवीनो है।
लाडिली को नाव सुनि सग सग डौलैं
श्याम आठो जाम लाडिली के रूप रग भीनो हैं।
कवि रसरासि लाल लाडिलो को इष्ट राखें
छिन छिन रूप राखें ऐसो प्रेम झीनो।
लाडिली के पच्छ के वेद छहूँ प्रतछ जिन
लाडिली की सेवा करि लाल बसि कीनो है।

कवि न लाडिली राधा को सर्वाधिक महत्व देते हुए यह सिद्ध किया है कि राधा के कारण रसिक को वशीभूत किया जा सकता है। कवि वृजनिधि ने राधा के साथ कृष्ण लीलाओं को व्यक्त किया है।[2] महा कवि सूरदास ने कृष्ण राधा की

---

2 राधे आज उमग सो सजे सलोने अग।
माना मन महारथी चढ्यो करन रस-रग।
नेही वृजनिधि-राधिका दाऊ समर-सधीर।
हेत-श्वेत छाँडत नही छाके बाँके वीर।
नवल बिहारी नवल तिय नवल कुज रस केला।
सब निसि सुरत-सुहाग मिलि दम्पति आनन्द रेला।
पाई रन सुहाग, सफल भये मनकाज सब।
मेरा है धनि भाग, सिरी किसोरी पाय अब।।

'वृजनिधि

अनेक केलियो के सदर्भ म मनोहर भावो की अभिव्यक्ति की है। आख मिचौनी के दृश्य को सूर ने शब्दो मे सुदरता के साथ बाधा है।[3]

गोपिका ने कृष्ण को माखन चोरी करते हुए घर मे घर लिया किन्तु कृष्ण तो चतुर सुजान थे–पत गोपी को रूप रस की माधुरी पिलाने लगे।

घेरि लिये घर मे घनश्याम।
मुदि किवार द्वार सब रोके वाके वचन कहत वृज वाम।
लाखन गायन को दधि माखन खाय खिवाय लुटायौ धाम।
अब कहौ कौन भाति निकसोगे आछे आय फसे इह वाम।
नद जसोदा हाथ जोरिहे आय पाय परि है वलिराम।
तौऊ तुमको जानन देहो विना लिये चौरी के दाम।
यह सुहि काहु कुवर हसि बोले मन मोहन है मेरो नाम।
सब ही वृज मेरो, तुम मेरी, मेरे गोप गाय अरु गाम।
तुम माकु तन मन मेरो, क्यो घर हू मे मेरी विश्राम।
जो मागो सोई हम दें नाहि इहा औरन को काम।
मेरो हू मन चोर लियौ तुम ताहू की करि दीजै माम।
सुनि रसरासि गरबोली बोली खोली प्रेम स्याल की वाम॥

गोपिका कृष्ण को बाधने जा रही थी किन्तु रूप–रस की माधुरी पीकर अपनी चेतना खो बठी और कृष्ण के प्रेम म तन्मय हो गई। माखन की हानि की बात एक पल मे भूल गई और वृजकिशोर की बातो मे बहक गई।

महाकवि सूरदास ने माखन लीला क सन्दभ में अनेक मनोहर पद लिखें है–जो बरबस चित्त को आकर्षित कर लेते हैं। रसरासि कवि भी सूरदास के इन मधुर पदो से अत्यन्त प्रभावित थे।

गोपिया कृष्ण को देखकर स्वत ही अपना हृदय खो बठी थी। पुष्टिमार्गीय धम में सखी भाव को विशेष महत्व दिया गया है–अत सखी भाव स्वरूप चित्र कवि ने अति आकषक रूप मे प्रस्तुत किये हैं। वृजवनितायें कृष्ण के सौंदय पर रीझ कर परस्पर *वार्तालाप करती हुई कहती है* —

3– मूदि रहे पिय प्यारी लोचन।
कछु हरख कछु दुख कर मन मोज बढाव।
कबहु विचारत निठुर हृव सखि ज्वाब वनाव।

सूरसागर २६६२

मेरे मनको मोहि लियो री ।
निपट निसक वक चितवनि मे कहा जानो उन कहा कियो री ।
सुदर मुख की मृदु मुसकनि मे मदिरा सो कछु घोर दियो री ।
रूप लालची लोचन मेरे इन आछें रूचिमानि पियो री ।
तब ही तें चित चढी खुमारी खान पान हू नाहि छियो री ।
देह गेह को सुधि बुधि विसरी असे कसे जात जियोरी ।
अब मोकु या सुख स्वारथ को सूझत नाहि उपाय बियो री ।
मन मोहन रसरासि कुवर सो उमगि मिलागो खोलि हियो री ॥

गोपियाँ कृष्ण के सौन्य पर तो मुग्ध हो गई किन्तु उन्हें यह विदित नहीं कि व सहसा अपना हृदय क्यो खो बठी ? कृष्ण के नयनो में एसा क्या जादू है जा प्रथम दृष्टि म ही उनके हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया ? सुदर स मुख पर मधुर सी मुस्कान मे मदिरा के उ माद सा आकर्षण है-जिसके कारण वे अपनी चेतना पर से नियन्त्रण खो बठती है । श्रीकृष्ण क रूप सौंदय का मन्दिर-सुधा पान कर उनके तन बदन पर खुमारी छा गई और उन्हे अपने तन मन की सुधि भी नही रही-अब तो केवल कृष्ण के मिलन मे ही उन्हे सुख मिलता है । गोपिका अपने आप को खोकर भी अन्य सखियो से कहती है —

छोटे मुख सो वटबोली ऐसी सजनि कबहू बोली रे ।
कहि कहि माखन चोर कान्ह क्यो मेरी छतिया छोली रे ।
क्यो मेरे लाल मोहन की गोहन लागी डोली रे ।
दौरि-दौरि पकरत क्यो याको क्यो गहि गहि झक झोली रे ।
वार-वार क्यो आवत मेरे वात हिये की खोलो री ।
तुम सब हो जोवन माती रसरासि कुवर मेरो भोलो री ।

वह स्वय तो रसिक प्रियतम के प्रेम म खो गई किन्तु वह जानती है कि वह स्वय ही नही अपितु सारी बृजवनितायें रसराशि के प्रेम मे खो गई हैं-तब ही तो उसके पीछे भ ग रही हैं । ये गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रेम के वशीभूत होकर उससे मिलने के लिए कदम्ब कु जो म दौड कर जाती हैं । कभी-कभी कृष्ण से रूठने का भी उपक्रम करती हैं-मान जताने का अभिनय करती ह । स्वय राधा भी कृष्ण के प्रति अपने मान का प्रकट करती है किन्तु मानिनो का मान भग हो जाता है और वह अपने प्रिय के आलिंगन में बध जाती है —

आज अति कियो मानिनी मान ।
बार बार विनती करि हारे रसिक शिरोमणि श्याम सुजान ।

ताही सभ सिंह इक वोल्यो ताको सवद सयो दे कान ।
उठे कोप करि कहन लगे यो, देखो यह कैसो वलवान ।
प्यारी सुनत सोच मे भूलो भूली गई सब अपनो ज्ञान ।
हाय दई हा कहा करो अब लरि बेचल्यो पियारो प्रान ।
उठि अकुलाय अक भरि लीन्हे उनहू कियो अधर मधु-पान ।
लपटि रहे रसरासि रसमसे राधा मोहन नेह निधान ।।

श्रीकृष्ण हर रात मानिनी के मान को मनाते हैं, गोपिकाओ को सहज ईर्ष्या होने लगती है। वे कदापि यह सहन नही कर सकती है कि उनका प्रियतम अन्य ललनाओ के साथ अभिसार करता रहे।

जब कृष्ण अपनी प्रवृत्ति को नही छोड पाते हैं तो मानिनी का मान अपना हठ नही छोड पाता ह तो प्रिय विवश होकर अपनी प्रिया से दिया हुआ दान वापिस माग बैठता है।

एजू तुम मान कर्यो सो तो भली करी ।
दीजे प्रीति हमारी हमको जो हम तुम को सौपि धरी ।
आलिगन चुम्बन हू दीजै जो तुम लीन्हो घरी घरी ।
सुनि रसरासि रसिक की बातें कुज विहारनि विहसि परी ।

संस्कृत-साहित्य मे इस प्रकार के पद मिलते हैं। कालिदास के शृगार तिलक म इस प्रकार श्लोक मिलता है। संस्कृत के शृगार साहित्य की अमिट छाप कवि के इन पदो म मिलती है।

कवि रसरासि ने अपने मूल उपादान प्रिय रसिक शिरोमणि के रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति गोपियों के मुख से इस प्रकार की है।

मन के मदमोचन लोचन लाल के काम के वान चले कितते ।
छल छोह अछेह छकेतन के पन की पति पेलि हिले हितते ।
अव कार्चकि चोकि वके वचि के कछु एचिक धीर धरे चितत ।
रसरासि ससें अरसीले रसीले हिये दरसोले वनो वितते ।।

डा० हरद्वारीलाल ने कहा है कि सजीव रूप म यदि अवयव इस प्रकार गुम्फित है कि उनमें तरलता जीवन का ओज और तरग की प्रतीति होती है तो हम रूप मे लावण्य का अनुभव होता है।[1] सुन्दर रूप की अभिव्यक्ति महत्व रखती है। अभिव्यक्ति का माध्यम सुदर एव सुरुचिपूर्ण होना चाहिये। सौंदय

का चित्रण श्रृंगार रस के माध्यम से ही होता है। कवियो ने नायक नायिका के श्रृंगारिक वर्णनो से रूप रस की सहज अभिव्यक्ति की है। कवि रसरासि ने भी अपने इन पदो या कवित्तो मे श्रृंगार रस की अजस्र धारा बहाते हुए रूप रस की अभिव्यक्ति की है—

मोहन की मनमोहनी मोह रही चुनि मान को जानि हरौरी।
छैल सा केलि करो हसि के रसरासि कछु रस भेद करौरी।
जाप जपो जिनके जस को छिन को धारि धीरज ध्यान धरौरी।
छद भर्‌यौ रथ चद धरयौ जुधजोर जुर्‌यौ जुरि भीर भरौरी।

श्रृंगार रस के सम्भोग एव विप्रलम्भ के पक्षो को उभारने के लिए मधुमास सफल सिद्ध हुआ है। मधुमास म उन्माद का वातावरण स्वत ही सिहर जाता है और होली के अवसर पर नायिका स्वत ही कहने लगती है—

एरी यह कैसी होरी।
लगर कन्हैया बरजोरी मोरी भोह मरोरी।
अब हो मेरो दाव लेऊगी या मे कहा कछु चोरी।
अजन आजि माडि मुख याको छोडोगी करि गोरी।
तारी दे गारी गाओगी कहि कहि दुलहिन मोरी।
लपटि रसरासि कु वर सो करि हो जोवन-जोरी॥

होली सम्बन्धित इन दोनो पदो मे साम्यता है, ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व पद से कवि के मनोभाव सतुष्ट नही हुए अत इन्ही पक्तियो को दोहराते हुए कवि ने फिर से कह दिया—

अरी यह कैसी होरी लगर कन्हैया बरजोरी
मोरी अगिया रग मे बोरी।
बाह मरोरी गहि झकझोरी ढोरी केसरि भरी
कमोरी देखत है ब्रज गोरी
हसि थोरी थोरी।
अब हो मेरो दाव लेऊगी यामें कहा कछु चोरी
अजन आजि माडि मुख याके
बेंदी बेस धरि हो भरि हा बूका रोरी।
मेरी अगिया रग मे बोरो।
तारी दे गारी गाऊगी कहि कहि दुलहिन मोरी
फेंट पकरि रसरासि

कुवर की लैंहो पीत पिछोरी।
मेरी अ गिया रग मे वोरी।।

इस कवित सग्रह मे भी राजस्थानी भाषा म पद सजन किया गया है। यद्यपि मनोभावो की अभिव्यक्ति बहुत ही सस्ती है किन्तु उस विलासिता के युग को दृष्टिगत रखते हुए यह कहना ही पर्याप्त होगा कि कवि देशकाल से प्रभावित होकर इस प्रकार की रचनाओ के लिए बाध्य था। गोपिका अपने प्रियतम को धन्यवाद देती हुई कहती है—

मिलण रो वाणक आज वण्यो छै जी।
धीराणी जिठाणी धधा मे लागी नणदल पूत जण्यो छजी।
सासू कर छ्या तिय जीरी पडदो बीच तण्यो छैजी।
आछी बिरियाँ रसरासि पधार्‌या हियँ हेत उफण्यो छजी।

प्रिय मिलन के पश्चात जब दुबारा प्रिय समय देकर भी नहीं आता है तो उसका हृदय विकल भावनाओ म आपूरित हो उठता है और उसकी भावनायें प्रिय को उपालम्भ देती हुई कहती हैं—

कानूडा जी भला मिल्या थे।
कूडा कौल करी छो म्हासू राधाजी र हेत हिल्या थे।
सगली रन रग मे माणी सरवर ज्यू उफिल्या थे।
पग डा हू वो रसरासि पधारया पाछा पगा पिल्या थे।

श्री कृष्ण भक्ति एव प्रेम से सबंधित शृ गार साहित्य के ऐसे अनेक पद उपलब्ध होते हैं। इस सकलन मे एक ऐसा भी पद है जो कृष्ण प्रेम के भावो से मतिरिक्त होकर अपनी बात कहता है। कलाणपति शिव हिमराज की तनया पार्वती से विवाह करने वर यात्रा लेकर जारहे हैं। वर के अदभुत शृ गार को देख कर सभी अचम्भित हैं। वर एव वधू के पाणिग्रहण सस्कार के अवसर पर कवि का मन कहता है—

सदा सिव वनडो वण्यो छ रूडा।
सेस नाग रो सेहरो सोह सीस जटा री जूडो।
गगा जल रो लटकण तुररो सिर सोभा चादूडो।
गौरलरे गौर अ ग सोह्यो सूह रग सालूडो।
वा ध्यानी लरत नरो कठो वासो छै बाव्रूडो।
हथलेवौ जुडताही होसी अचल दीवडो चूडो।
रूडी रगरेली नित रहसी रिप नारद नहि कूडो।
या सरिपो राधा री वर रसरासि कुवर कानूडो।

शिव एव पावती की राधा-कृष्ण से तुलना करते हुए कवि ने यहा भी अपने आराध्य को लाकर खड़ा कर दिया है। कवि रसरासि अपने आराध्य के प्रति अत्यन्त निष्ठावान है उसके रूप सौंदय पर मुग्ध है उसकी लीलाओं म आनन्द प्राप्त होता है, उसके विलास की क्रियाओं को सहज भाव से व्यक्त करता है किन्तु साथ ही उसके असगत कार्यों की व्याख्या भी करता है। आज के युग मे जितने भी दुष्कम होरहे हैं-उन सभी के सदभ म अपने आराध्य से प्रश्न करता हुआ कहता है--

कहिये कहा कृपानिधि केसव तुम
कलिजुग को जोर जमायो।
जो कोऊ अग हीन हो या को सो
सब ही तुम कियो समायो।
तुम तो प्रकट भये प्रभु या पाछे
पहले क्रूर कपट प्रगटायो।
उग्रसेन राजा सुभ कर्मी ताको
पकरि बन्द करवायो।
माता पिता वसुदेव देवकी
तिनको तन मन त्रास तचायो।
सात पुत्र वध आखिन देख्यो
ता पाछ तुम दरस दिखायो।
जनम लियो ताही छिन निकसे
मातपिता सो मोह मिटायो।
नद जसोदा के ठगिवे को हू
झूठ मूठ ही हरष दिखायो।
झूलन लगे पालने जब ही
तब ही बाँको विरद बनायो।
कौन करी नारि की हत्या
यह जस पहले तुम ही पायो।
अपने घर मे चोरी सीखे
पर घर जाय चौर कहायो।
दई सिखाय सबन को चोरी
ता मे उज्जल रस दरसायो।
तब ही ते बिभचार बढ्यो यह
अति ही अनाचार उरझायो।

चौरे कौन चीर नारिन के
सो प्रभु तुम ही पथ चलायौ।
निरखी नगन, मगन होय
मनमे, यामे कहा मन भायौ।
निसि मे नारि बुलाई वन मे
जिन सो हिलि मिलि रास रचायौ॥
तिन हू सो अन्तर्हित ह्वै
कारो कपटी मीत कहायौ।
नद जसोदा रोवत छाडे
उठि अक्रूर के सग सिधायौ।
वृज व धुवन सो मुख हू न बोल्यो
सब सो चित्त को हित विसरायौ।
कुल मरजाद तजी मथुरा मे
चेरी चचल सो चित्त लगायौ।
वृजनारी विरहिणी विचारी
तिनको लिखि लिखि जोग पठायौ।
सतवादी शुभकर्मी राजा ताको
कु भी पाक दिखायौ।
महादुष्ट दुरजोधन पापी
ताहि स्वर्ग को वास बतायौ।
सेवा भजन करत निसि दिन
तिन को रोग-वियोग बनायौ।
नाना सुख विपई जी जे निसि दिन
जिन बहु भातिन पाप कमायो।
कडवौ कुटक नीम को चूरन
अपने जन को जानि खवायौ।
विमुखन को विधि विधि के भोजन
माखन मिश्री दूध पिवायौ।
जाने कौन तिहारी मन की बरनत
वेद भेद नहिं पायौ।
अद्भुत गति रसरासि तिहारी
जाकौ सुजस सेस सिव गायौ।

प्रस्तुत फुटकर कवित्त संग्रह में रसरासि ने अपने हृदय की विविध मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति की है संसार में अनेक विपदाओं को देखकर उसका मन पीड़ित है। जन-जीवन की असहाय दशा पर कवि का मानस संत्रस्त है। वह मानवीय जगत की विसंगतियों को देखकर मानवीय आचरण का महत्व समझाने के लिए आकुल है। माया मोह के मद पाश में उलझे हुए चेतन से भौतिकी सुख के परित्याग की चर्चा करता हुआ भक्ति साधना के सखी भाव पर विशेष बल देना चाहता है।

इन पदों में कृष्ण के मोहिनी रूप की अभिव्यंजना प्रचुर मात्रा में उभर कर आई है। शृंगार-पक्ष के सम्भोग एवं विप्रलम्भ पक्षों को विशद रूप से उभारा गया है। रसरासि की मौलिक अभिव्यक्ति पर संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के विभिन्न कवियों के वाङ्मय का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

प्रस्तुत संकलन के पदों, कवित्तों एवं सवयाओं में बृज भाषा को प्रमुख स्थान दिया है किन्तु राजस्थानी भाषा में भी सृजन किया गया है। उर्दू के शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र सर्वत्र मिलता है।



वश–प्रशसा

'वश प्रशसा' नाम की यह कृति अपने आश्रयदाता राजा प्रतापसिंह 'वृजनिधि' के गुणानुवाद के निमित्त लिखी गई है। इस कृति मे कवि रसरासि ने दोहा, सोरठा, चौपई वरवे, अरिल्ल सवया एव कवित्त आदि छदों का प्रयोग किया गया है। कवि रसरासि के पूवज राजस्थान के बाहर किसी अयत्र स्थान के रहने वाले थे किन्तु कवि रसरासि राजा प्रतापसिंह का राज्याश्रय प्राप्त कर जयपुर मे रहन लग गय थ और विद्वान राजा के आदेशानुसार सृजन कम म प्रवृत्त थे। यह एक ऐसी कृति है जिसका मूल उपादान मे किसी भी प्रकार का सीधा सम्बन्ध नहीं है किन्तु परोक्षरूप से इस कृति का सर्वाधिक महत्व है। इस कृति के माध्यम से ही हम कवि रसरासि के जीवन वृत्त एव देशकाल पर कुछ कहने को समय हो सकते हैं।

राजघरानो मे आश्रित कवियो न इस प्रकार की रचनाओ का निर्माण किया है। जयपुर राजघराने की तो यह परम्परा रही है। आज भी जयपुर नरेशो एव तत्कालीन सामाजिक सास्कृतिक राजनतिक एव अथव्यवस्था पर हमे बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध होती है। जयपुर नरेशो के आश्रित कवियों ने जयवश महाकाव्य ईश्वर विलास महाकाव्य मान वश, जयसिंह कल्पद्रुम जयरग पचरग काव्य आदि की रचनायें की हैं। कवि रसरासि ने भी इसी प्रकार वृज भाषा म एक छोटी सी कृति की रचना की है। कवि ने रचना क प्रारम्भ में मगला चरण इस प्रकार किया है –

जयति कृष्ण चतन्य महा प्रभु प्रगट स्याम घन ।
जय जय नित्यानद जयति जय रूप सनातन ।
सतत जपत हरि नाम नेन वरपत धाराधर ।
जब तब गावत नचत प्रेम पुलकित तन निभर ।
रीझो कृपाल रसरासि प्रभु थी युब्बद राधा सहित ।
निज कुज भूमि वृदाविपिन दुरयौ दिखायौ अमित वित ।।

कवि रसरासि रामानुज सम्प्रदाय का पारम्परिक शिष्य रहते हुए भी वृन्दावन बिहारी को आराध्य मानकर स्तवन वर्णन करता रहा है। कवि का आश्रयदात

नरेश भी गोविन्द भक्त रहा है। कवि पुष्टि मार्गीय आचार्य वल्लभाचार्य के सिद्धान्तो से अत्यन्त प्रभावित था। अत सखी-भाव को स्वीकार करता हुआ गोपाल के प्रेम मे अपने आप को तल्लीन रखता रहा है। प्रस्तुत मगलाचरण मे अपने आराध्य प्रिय कृष्ण की नृत्यलीला को चित्रित करता हुआ राधे गोविन्द की युगल मूर्ति लीला को व्यक्त करता है।

कवि रसराशि दृढ विश्वास के साथ कहता है कि इसी गोविन्द के चरणकमलों के प्रताप से उसके कुल की मर्यादा चिर सुरक्षित रह सकी है। इस सदर्भ मे कवि की सहज अभिव्यक्ति इसप्रकार है —

अब या कुल को लाज आज इन चरनन राखी।
बडे भये सब भांति जात नहिं मुख तें भाखी।
अरज करत इक और कछुक सकुचत मन माही।
भलो बुरो जन होय राखि बौना पर छाही।
सुनि कृपा सिंधु गोव्यद प्रभु निपट निकट रसरासि बसि।
तप तेज पुज हरि भक्ति जुत बस बढायो विहसि लसि ॥

'जयवश महाकाव्य' की प्रस्तावना में श्री पट्टाभिराम शास्त्री ने लिखा है– कतिपय शासकों की कृपा से हमारी यह प्राचीन सस्कृति सुरक्षित रह सकी। गुणग्राही कला के वास्तविक पुजारी इन नरेशों की वह उदारता जिसने सैकडो कवियों को आश्रय और सम्मान देकर हमारे राष्ट्र की इस भारती का जीवन बचाया–युग-युग तक के लिए प्रशसा, यथार्थ कृतज्ञता और धन्यवाद के पात्र हैं। इस प्रकार के गण-माण्य महापुरुषों में जयपुर के नरेन्द्रों का प्रमुख स्थान रहा है। विशेषत इसके निर्माता महाराजा जयसिंह की विद्वत्ता ज्योतिष यन्त्रालय के रूप में गुण ग्राहिता विद्वानो की सस्कृति व कला प्रियता जयपत्तन निर्माण की पटुता में आज भी सारे विश्व को चमत्कृत कर रही है।[1]

कवि रसरासि ने भी इन्ही जयपुर नरेशो के प्रताप एव गुणग्राहिता का वर्णन किया है। ससार में अनेक राजा हुए है और एक से एक अधिक बन्कर। वह अपनी वश प्रशसा के सदर्भ में कहता है —

वस प्रससा कहो कौन कवि वरनि वखानै।
छोटे छोटे होत गुन बडे भये प्रमाने।
एक एक तें अधिक भये हैं हवै है आगे।
बडे बडे नृप धाय आय पायन सो लागे।

1 जयवश महाकाव्य (ग)

रसरासि प्रणतपाल कविरद चलि आई यह नीति नित ।
दुजन दारिद्र दल दल मलन परिपालन द्विज दीन हित ।।

जयपुर नरेशों ने सदा कवियो को आश्रय देकर उनकी काव्य कला का सम्मान दिया है। यह परम्परा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रही है। राजा जयसिंह के समय बिहारी कवि को अत्यधिक सम्मान मिला और अपने शासक की प्रेरणा प्राप्त कर कवि ने बिहारी सतसई' की रचना की। कवि ने अपने आश्रयदाता के संदभ मे सतसई के अन्त म इस प्रकार उल्लेख किया है।

भारत के बावन नपति रहे आगरे माहि ।
सनद दिराई सबन सा साहिब आपु आपुसिहाहि ।।
वर्पासन सबने करे जथासक्ति सुभकाम ।
नाम आमेर मुवालजू मिर्जा राजा नाम ।।
जयसिंह जू जय साह जू साह दियौ उपनाम ।
तेज पु ज कहियतु सुभट प्रथम लीक भर दाम ।
वर्पासन के लेन को साल साल हम जाहिं ।।
एक समय आमेर मे गए रहे नृप पाहि ।। [2]

कवि बिहारी प्रतिवर्ष अपने प्रिय राजा जयसिंह के पास वार्षिक रूप से धन राशि लेने आते थे। एक समय राजा अपनी नवोढा पत्नी के साथ उन्माद मे खो रहे थे—कवि ने एक दोहा लिख कर राजा क पास भिजवाया—जिससे राजा जयसिंह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। कवि ने इस प्रकार उल्लेख किया है —

तब हम इक रचना रची पासवान गुनगान ।
दोहा लिखि धर्‌यौ सेज पर भूप कही इहि आन ।।
रगमहल मे लै गए राजत जह जयसाह ।
अदब कायदा करि सकल बोले नप यह काह ।।
कविता करी कवीस जू हम प्रसन्न जिय जान ।
रची सतसई विविध विधि ब्रज भार्षाह दे भान।
दोहा एकहि एक पर मिली मोहर सुख पाय।
आसा तबहि बढी गई तब्नहू भई सहाय।
चारि पाख के माभमे कविता को रचि दीन्ह।
हुक्म पाय जय साह कौ नगर पयानो कीन्ह।। [2]

2 बिहारी की वाग्विभूति–५३

राजा जयसिंह के संदर्भ में अनेक स्थलों पर हमें प्रशंसा में अनेक श्लोक एवं कवित्तादि उपलब्ध होते हैं।

चलत पाय निगुनो गुनी धन मनि मुकुता माल।
भेंट होत जयसाह सो भाग चाहियत भाल॥
प्रतिबिंबित जय साहदुति दीपति दरपन-धाम।
सब जग जीतन को कियौ कस्य-व्यूह मनुकाम।
रहति न रन जय-साह-मुख लखि लाखन की फौज।
जाचि निराखरहू चलैं लै लाखन को मौज॥ [3]

राजा जयसिंह की ही प्रशंसा नहीं की गई है अपितु मानसिंह, ईश्वरीसिंह आदि राजाओं की प्रशंसा में भी अनेक श्लोक एवं पद प्राप्त होते हैं। महाराजा मानसिंह के संदर्भ में कहा गया है —

महाराज मान सिंह पूरब पठान मारे
शोणित की सरीता अजोन सिमटत हैं।
सुकवि बिहारी अजो उठत कबंध कूदि
अजो लग रनतें रनोई ना मिटत है।
अजो लो चहेलें पेशाचनतें चौंक चौंक
सची मघवा की छतिया ते लिपटत हैं।
अजा ला ओढें हैं कपाली आली आली खालें
अजो लग काली मुख लाली ना छूटत है।

श्रीहरनाथ कवि ने भी कहा है —

बलि बोई कीरति-लता-करन करी द्वै पात।
सींची मान महीप ने जब देखी कुमलात॥

बारहठ जी ने लिखा है—

रघुवर दीन्ही दान, विप्र विभीषण जानके।
मान महीपति जान दियो, दान किसो लीजिये॥

जयपुर राज्याश्रित कवि श्री हरिमल्ल भट्ट ने जयनगर पचरंग काव्य में जयपुर-शासकों का वर्णन किया है। वर्णन करते हुए अपने काव्य में यह उल्लेख किया है —

---

3 बिहारी की वाग्विभूति —पृ० सं० १८

प्रणम्य वाणी जयपत्तनीय नृपान्वय प्राक्तन पार्थिवानाम्।
सिंहासनारोहण राज्य कृत्योर्विलिख्यते सामयिक प्रमाणम्।
बभूव राजा नृवराख्ययादौ यो वासयामास पुरी स्वनाम्ना।
तस्येश्वरीसिंह इति प्रसिद्धो वाधवयकालेऽजनि सूनुरेक।

श्रीजय नगर पवरग० ४/८

जय नगर पचरग का य के अनुसार जयपुर-आमेर का राज्य इस प्रकार रहा है–

वि० स०	९३३	श्री सोढ़देव
	९७३	श्री दुलभराय
	१००६	श्री काक्लिदेव
	१०२१	श्री हनूदेव
	१०५२	श्री जाह्नवदेव
	१०७६	श्री पजनदेव
	१११३	श्री मलयसिंह
	११६५	श्री उन्वलदेव
	११९८	श्री राजदेव
	१२३५	श्री कीलनसिंह
	१२९४	श्री कुन्तलदेव
	१३*५	श्री जवनसिंह
	१३८४	श्री उदयकरण
	१४०६	श्री नरसिंहदेव
	१४५०	श्री वनवीरसिंह
	१४७२	श्री उद्धरण महाराज
	१४९८	श्री चन्द्रसेन
	१५३३	श्री पृथ्वीराज
	१५५८	श्री पूणमल्ल
	१५७४	श्री भीमसिंह
	१५८२	श्री रत्नसिंह
	१६०४	श्री आशाकर्ण
	१६०४	श्री भारमल
	१६३०	श्री भगवतदास

१६४६	श्री मानसिंह
१६७०	श्री भावसिंह
१६७६	श्री मिर्जा जयसिंह
१७१६	श्री विष्णुसिंह
१७५४	श्री सवाई जयसिंह
१८०१	श्री ईश्वरीसिंह
१८०८	श्री माधवसिंह
१८२५	श्री पृथ्वीसिंह
१८३४	श्री प्रतापसिंह
१८५८	श्री जगतसिंह
१८७३	श्री जयसिंह
१८९०	श्री रामसिंह
१९३७	श्री माधवसिंह

इतिहासकारों की दृष्टि से जयपुर शासकों का शासन क्रम इस प्रकार रहा है –

जयपुर राज्य के नरेश

पृथ्वीराज	1503–1517	(सन्)
पूरणमल	1527–1534	
भीमदेव	1534–1537	
रतनसिंह	1537–1548	
आसकरण	1548–	
भारमल	1548–1574	
भगवतदास	1574–1589	
मानसिंह	1589–1614	
भावसिंह	1614–1628	
जयसिंह	1628–1667	
रामसिंह	1667–1689	
जयसिंह II	1700–1743	
ईश्वरीसिंह	1743–1750	
माधवसिंह	1751–1767	
पृथ्वीसिंह	1768–1778	

प्रतापसिंह	1778–1803
जगतसिंह	1803–1819
जयसिंह III	1819–1835
रामसिंह II	1835–1880
माधवसिंह II	1880–1922
मानसिंह II	1922–1970
श्री भवानीसिंह (वतमान-नरेश)	1970–

सवाई जयसिंह का शासन काल सन् 1700 से 1743 तक रहा था। इससे पूव कछवाहा शासको का राज्य आमेर था–जो वतमान जयपुर से उत्तर की ओर 10 किलोमीटर पर स्थित है। वतमान जयपुर के सस्थापक मिर्जा जयसिंह द्वितीय थे। इन के सदभ मे ही जयवश महा काव्य लिखा गया है। इस महा का य म राजा जयसिंह की वीरता एव गुणग्राहिता तथा काव्यप्रियता के सदभ में विस्तृत रुप से लिखा गया है।

कवि रसरासि ने अपनी कृति वश-प्रशसा मे जयपुर–नरेश मिर्जा जयसिंह से वश परम्परा लिखना प्रारम्भ किया है। राजा जयसिंह के महान व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए लिखा है –

समर धीर जय साहव भये नरनाह सवाई।
जिन की हे बहु जग्य, कहा कहि करों बडाई॥
तैसे ही सब भाति नृपति माधव मन मोह्यो।
रामचन्द्र को पाट हाट सब ही विधि सोह्यो।
अव हस वस अवतस नप श्री प्रताप रवि जगमगत
डगमगत अगमगत सत्रु तम, निज जन कमलन रस पगत॥

जयवश महाका य मे कवि ने जयसिंह के सदभ म कवि सब गुण सम्पन्न समस्त भूपाल महीपति दानवीर, विजेता, विद्याग्रसर एव पूज्य आदि विशेषण दिये हैं।[4]

---

4 अथाधिप प्राप्त गुण प्रकष शशास लोकाञ्जयसिंह वर्मा।
निरय श्रिया पूजित पादपद्म समस्त भूपाल न तो विनीत।
जयवश महाका यम् १०/१

इति सर्वा दिशो जित्वा निवत्त स पुर प्रति।
इति सर्वा दिशो जित्वा निवत सपुरप्रति॥
विद्यावतामग्रसर प्रतापी विद्यावता मग्रसर प्रतापी।
विद्यावता मग्रसर प्रतापी विद्यावता मग्रसर प्रतापी।
जयवश महाकाव्यम १३/२०७

राजा जयसिंह का पुत्र ईश्वरीसिंह भी विद्वान, विनयी एवं प्रतापी था। [5] श्री ईश्वरी सिंह का पुत्र श्री माधव सिंह था जिन के सदभ मे जयवश काव्य मे विस्तृत रूप से लिखा गया है। [6] कवि रसरासि ने इसी माधव के पुत्र प्रतापसिंह के सदभ मे लिखा है—

श्री माधी को नद चद सो ग्रानन्द कारी।
तेज वत मध्याह्न मान हू सो ग्रति भार
रूपवत रिझवार मार सो मन को मोहत।
ग्रजुन सौ रनधीर वीरता पर मुख पर सोभत।
चित चौज मौज को भोज सो विक्रम सो विक्रम करन।
हरि भक्त भूप प्रथिराज सो नृप प्रताप ग्रसरन सरन।।

श्री माधवसिंह के दो पुत्र थे पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह। पृथ्वीसिंह ने सन् 1768 से 1778 तक शासन किया और इसके पश्चात् सवाई प्रतापसिंह ने राज्य भार सम्भाला सवाई प्रतापसिंह का शासन-काल सन् 1778 से 1803 तक रहा। जयवश महाकाव्य मे भी इन दोनों भाईयो के सम्भ म कवि ने उल्लेख किया है। [7] रसरासि का आश्रयदाता राजा प्रतापसिंह हरि भक्त एवं कुलदीपक रहा है। राजा के दरबार म कवियो की भीड़ रहती थी और स्वय राजा भी कवि था—

---

5 अथ पण्डित ससदन्तरे नपति स स सदा सदानत।
बहुमानमनेहस सुधीरति चकास महाप्रजो बली।
(ईश्वरीसिंह) जयमहाकाव्यम १५/१

6 पदमाप्य पितु समद्धि मन्दशुभे ऽस्यमराति धमराट।
उदयाचल माश्रितो यथा परि गौराङ्गिक ईश्वरो भुव।।
१५/३५

सर्वेऽप्ययात्या पुन्मेत्तराज तथोध्वदह विविमप्य कपु
मानीय माता महगवत्ता सद्योऽजुर्ज माधवसिंह सज्ञम।
१५/४६

7 पत्न्या सतो धमयुजि स्वमतु
सुतावभूता मतुल प्रभावौ।
पृथ्वयग्रपूर्व प्रथम सुशील
प्रतापसिंह स्त्वपर प्रतापी।

जयवश महाकाव्यम् १६/६१

श्री हरि हरि गोविन्द कृष्ण श्री कृष्ण कहत नित।
निज पुरखन कीरति प्रीति प्रतीतिनीति-चित।
वृजनिधि की धरि छाप आप प्रभु सुजस बनावत।
लली लाल गुन कलित ललित अतुलित छवि पावत।
भागवत सुनत निरखत रहत वज निकुंज लीला ललकि।
भूपति प्रताप की रसिकता रही दसो दिसि मे झलकि॥

'वृजनिधि' के नाम से सवाई प्रतापसिंह ने 19-20 कृतिया लिखी हैं जो कृष्ण भक्ति एव शृगार रस से परिपूर्ण हैं। राजाओ मे यह राजा कवि शासको म अपना इस दृष्टि से विशिष्ट महत्व रखता है। 'जयवश महाकाव्य' मे कवि ने राजा प्रतापसिंह को विद्या निष्णात रसिक एव शत्रु विजयी कहा है।[2]

राजा प्रतापसिंह जितना रसिक एव विद्वज्जनों का सम्मान करने वाला सहृदय हृदय व्यक्तित्व था-उतना ही शत्रुओ के लिए विकट योद्धा भी रहा है। कवि रसरासि ने अपने आश्रय दाता राजा प्रताप की वीरता को अनेक रूपो मे प्रस्तुत करते हुए विविध विशेषणों से विभूषित किया है—

तैसोई रन रग जग मे अति ही गाढे।
धनुकवान करगहत रहत अर्जुन ज्यो ठाढे।
रूद्र रूप को धारि भारि पर दलन दवावत।
भूत प्रेत वेताल जोगिनी जाल जगावत॥
जो पीठि देत तजि खेत को ताके पर वार न कर।
रसरासि रीति रघुवश की नृप प्रताप धुरतें धरत॥

राजा प्रताप काव्य एव सगीत का अत्यधिक प्रेमी रहा है। कवि ने उसके ज्ञान के सदभ म इस प्रकार उल्लेख किया है—

सप्तक रूप विभाग भेद रागन के जानत।
अलकार के अग व्यग रस को पहिचानत।
नाटक नाट्य चरित्र चित्र मे अति विचित्र गति।
मनि मानिक परिखि लेत एती अद्‌भुत मति।

---

2 विद्याम्भोनिधिर प्रतापसिंह
सम्बद्धाज्जल निधिभिमही समन्तात्।
शत्रूणामय दलनऽधिक पटीयान
भर्ता स्वामिव वनिता पपौ सवीय।
जय महाकाव्यम १७ १

लछन बतीस चौसठि कला षट्भाषा समभत सरस।
भूपति प्रताप महिमा अतुलित छवि अगनित सुजस॥

कवि रसरासि के अनुसार राजा प्रतापसिंह सगीत शास्त्र की विविध विद्याओ का पूर्ण पडित था। अलकार शास्त्र के विविध पक्षों का मार्मिक विद्वान था। नाटय शास्त्र का शास्त्रीय ज्ञाता था। सभी शास्त्रो का यह ज्ञाता शासक अपनी राज्य-सभा म काव्य एव कलाविदो का अत्यधिक सम्मान किया करता था।

जयवश महाका य मे राजा प्रताप के सदभ मे कहा गया है कि वह अपने राज के पूवज कवि गणपति आदिको श्रद्धा के साथ सम्मान करता था और वह स्वय भी का य कला का मार्मिक विद्वान था स्वय कविता रचना किया करता था, काव्य श्रवण मे अपनी रुचि रखता था साथ ही कवियो को भूरिदान देकर अपने आपको कवि प्रेमी सिद्ध करता रहता था।[9] प्रतापसिंह की सुदरता के सदभ म भी कहा गया है कि यह अत्यधिक सुदर रमणियो का मन हरने वाला अनुपम रूपशाली था।[10] कवि रसरासि ने अपने राजा के महान गुणो का वणन इस प्रकार किया है—

सोहत सुदरता भर्यो भान समान है कूरम वस नरेश।
कीन्ह घने रन काज गुमान को जान है पूरित देश विदेश।
रीभत विक्रम भोजलो दान निदान है और भरे सब पेस।
श्री प्रताप नृपराज सुजान प्रमान है जाको सहाय अजेश॥

राजा 'प्रताप' के स्वभाव एव शौय के सदभ मे कवि रसरासि ने इस प्रकार लिखा है—

---

9 समेने गणपति पूवकान् कवीशान्
भूपाल स्वयमपि काव्यकमदक्ष।
काव्यानां श्रवणविधे व्यतीतकाल
सज्जज्ञे कविमु समर्पिताधिलक्ष्मी।

ज० म० १७/२८

10 आनन्द ददत्खिलाय शमकारी
हारीहो हरिणविलोचना मनस्सु।
सम्तन्वन्नतुलमनङ्ग गमम्बुजाक्ष
संरेजे नृप उपमाविहीन एष।

ज० म० १/२

कूरम सवाई श्री प्रतापसिंह भूप तेरी
सुनिके दुहाई प्रजापाई सुचताई है।
भाईन को भाई सेवकन को सुहाई
दुष्ट दोषिन के हिये लोन राई सी लगाई है।
तेज की तताई तावे सग सरसाई
त्योंही जस की जुहाई रसरासि अधिकाई है।
राजनीति छाई चोर चुगलन सकर वाई,
ऐसी ठकुराई तोहि दई रघुराई है।
अब बबकारैगो विलोकि बैरी वारन को
मारि के पछरियो करैगो निरमूलसो।
कवि रसरासि जासो कौन थौं जुरैगो
जग जाको है कराल काप काल के त्रिशूल सो।
महा बलवत वीर बाको है विरदधारी
अरि धर घालिवे को सदा प्रतिकूल सो।
कूरम सवाई माधव देश के तखत
सोह्यो सवाई प्रतापसिंह शार्दूल सो।

'जयवश महाकाव्य के रचयिता ने भी प्रतापसिंह को अपने मित्रों का सच्चा मित्र एव शत्रुओं का रुहारक सिद्ध करते हुए प्रताप को सूय–प्रताप के सदृश बतलाया है। इन्द्र के पराक्रम के समान तुलना करते हुए शौय को अभिव्यक्त किया है।[11]

चत्र शुक्ल द्वितीया के दिन कवि अपने आश्रयदाता के निकट पहुचा तो वहा राज्य सभा की सुन्दरता देखकर अचम्भित रह गया—

---

11 मित्राम्भोज निज नित प्रमोदकारी
भूभतु रिपुनपङ्क शोषकारी।
सवस्मिन्जगति क्र प्रचार हारी।
प्रभ्रंजे नवमुदित प्रताप सूय।
इन्द्रावप्रति भरवाजि वाह्यमाने
सत्यस्स महति रथे वरुथयुक्ते।
भूमर्ता करदृत हतिरुच्चनाद
शत्रूणामभिमुख मुञ्चचाल वीर।

जय० का० १७/६७

चैतसुदि द्वज को सवाई श्री प्रताप भूप
चाप चौज भोजन के झर वरसाये है ।
तखत सवार ह्वै के फुहारे छुटत जहाँ
हौद पर ठाडे रसरासि छवि छाये हैं ।
एक ओर नटी नाचे छटा की छटी सी
अरु तीनो ओर सेवक मिगारे मन भाए है ।
जल मे सभा को प्रतिबिम्ब झलकत
मनो भूतल के देवी देव देखिवे को आये हैं ।

सवत 1850 मे फाल्गुन शुक्ला 11 को कवि रसरासि ने पुडरीक भट्ट जगनाथ को अपनी कृति समर्पित की। श्री जगन्नाथ भट्ट जयपुर राज्य के तत्कालीन अमात्य थे। जयवश महाकाव्य के रचयिता श्री सीताराम पवर्णीकर ने श्री जगन्नाथ भट्ट के सदभ मे लिखा है कि श्रीजगन्नाथ भट्ट वृजनाथ भट्ट के पुत्र थे और राजाप्रताप के शासन काल मे प्रथम–अमात्य के स्थान पर नियुक्त थे।[12] कवि रसरासि ने इन्हीं भट्ट जी को अपनी कृति दिखाने के सदभ में लिखा है —

सवत अठारह से अधिक पचासवें की
फागुन सुकल एकादसी छवि छाई है ।
ताही समैं पुडरीक भट्ट जगन्नाथ जू को
करिके प्रणाम पोथी मस्तक चढाई है ।
रसरासि भागवत चित्रन विचित्रन मे
हरि के चरित्रन मे लगनि लगाई है ।
माधव तनय महाजान श्री प्रताप भूप
कानन को सुनी कथा आखिन दिखाई है ॥

---

12 पूर्वेषा सगुणगुरु सपीवरूपान्
सम्मेनेऽधिक भवनीपति पुरस्तात् ।
विध्वस्ताखिल दुरितौघ शुद्ध बुद्धीन्
निष्कामा मनसि तु पौण्डरीकमुख्यान् । २९ ।
योऽमात्य प्रथममभूत्पितामहोय
सवजी व्रज इति पूव नाथ शर्मा ।
तत्सूनुर्जगदिति पूवनाथ नामा
व्यासोऽयोऽजनि स पुराण वाचनेषु । ३० ।
जयवश महाकाव्य/१५/२९/३०

जयपुर नरेश कछवाहा वंशी कहलाते आये है अत कवि रसरासि ने 'कूरम नपति' का प्रयोग सवत्र किया है। रसरासि कवि अपने आश्रयदाता के सन्दभ म कहते हैं कि राजाप्रताप के मुख देखने से सब दरिद्र एव दुख दूर हो जाते हैं। सूयवश मे सूय सदृश प्रचण्ड प्रतापी प्रतापसिंह ने जन्म लिया है —

कूरम नपति प्रताप को मुख दखें दुख जाय ।
सूरज सूरज वश को प्रगट भयो है आय ।

कवि ने अपने शासक के रूप सौंदय का वणन करते हुए अनेक दोहे एव कवित्तो की रचना की है। राजा प्रताप का रूप अदभुत एव उदार है माधव तनय कामदेव के अवतार के सदृश है —

कूरम नपति प्रताप का, अदभुत रूप उदार ।
आगें हू माधव तनय, भयो काम अवतार ।

कूरम नपति प्रतापसिंह ऐसे अद्भुत प्रतापशाली थे, जिसके प्रताप की छत्र छाया मे आस पास के सभी शासक गण शरण लिया करते थे—

कूरम नपति प्रताप को अतुलित अेंड अनूप ।
चाहत जाकी बाह की छाव बडे बे भूप ।।

राजा प्रतापसिंह ने अपने जीवन काल मे मराठो के साथ युद्ध किया था। मराठो को पराजित कर अपनी विजय के घोष का निनाद किया था। राजा प्रताप जब पराक्रम दिखाते थे तो शत्रुगण भयभीत हो जाते थे और घर घर से आतस्वर की ध्वनियाँ सुनाई देती थी —

कूरम नृपति प्रताप जब, होत सहज असवार ।
तबहि सब हि अरि पुरन मे, घर घर परत पुकार ।।

कूरम नरेश प्रतापसिंह के शौय के सदभ म श्रीसीताराम पवलीकर ने अपने महाकाव्य मे राजा प्रताप को सुयोद्धा एव अत्यन्त पराक्रमी बताते हुए शत्रुओ का दिल दहलाने वाला बताया है।[13] कवि रसरासि ने भी कहा है —

कूरम नृपति प्रताप ढिग, चढि आयो पत्रसाह ।
देखि जमायातरि भई, लई सुधर की राह ।।

---

13 सघद्धानिति समवेक्ष्य सि घ्ययोद्धान्
स्वा योधानपि समनाह्यद्रवेषु ।
भूमीन्द्र सबल घर प्रतापसिंह
प्राप्तेऽरौ भवति हि कस्य सत्युत्प्रेक्षा /१७/६५

कूरम नृपति राजा प्रतापसिंह के शत्रु मित्र के संदर्भ में कवि ने कहा है —

कूरम नृपति प्रताप को, वरनत अद्भुत जाय।
सत्रु मित्र जाके ह्व दर हत सदा कलपाय॥

कवि रसरासि ने जब अपने आश्रयदाता के राज्य में आकर वहां की शासन व्यवस्था को देखा तो अचम्भित रह गया अर्थात् सम्पूर्ण राज्य समृद्ध एवं वैभवता से परिपूर्ण था।

कूरम नृपति प्रताप को वरयो चाहत राज।
थक्यो छक्यो सो ह्वै रह्यो, निरखि समृद्धि समाज॥

कूरम नृपति प्रतापसिंह विद्वान एवं कवि कलाविद तो थे ही किन्तु दानवीर भी कम नहीं थे। उन्होंने अपने राज्य के अनेक ब्राह्मणों को भूरि दान देकर समृद्ध कर दिया था —

कूरम नृपति प्रताप के दिन दिन दान नवीन।
बेऊ विप्रन को किये, रथपाल की नसीन।

जयवंश महाकाव्य में भी राजा प्रताप की दान शीलता के संदर्भ में कहा गया है कि यह अत्यन्त दान शील प्रवृत्ति का था[14] इसकी दान वीरता अनुपम थी सम्भवतः विधाता ने इसका जन्म ही दान देने के लिए किया था। इस राजा की कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी —

कूरम नृपति प्रताप की, कीरति कही न जाय।
सरद ससि की जो ह्व सी रही जगत मे छाय॥

कूरम-नृपति राजा प्रतापसिंह केवल शासक ही नहीं था अपितु कवि एवं संगीतज्ञ भी था। किन्तु इन सब से अधिक वह एक सन्त पुरुष था जिसके हृदय में सदा-सर्वदा हरि भक्ति का मंत्र मुखरित होता रहता था।

कूरम नृपति प्रताप के दिये माझ हरि हेत।
दरसनि रीझे दृगन मे, छकनि दिखाई देत॥

कवि रसरासि ने अपने आश्रय दाता को अनन्वय मानते हुए महान सिद्ध किया है—

---

14 दातारो भुविबहवो दधत्यपीमे
न ह्यस्मिञ्जनि जनिताऽपि नाधुनास्ते।
तेना सावनुपम एव भूमि लोके
भूमीन्द्र खलु निरमायि वेधसाऽपि॥

जयवंश महाकाव्य १५/८

कूरम नृपति प्रतापसो, आवत मिलन महीप।
मुख अग ऐसे लसें, जैसे दिन मे दीप।

कवि के सम्पूर्ण गुणों—दानवीरता, उदारता, सहृदयता, शौर्य, कवि कलाविद संगीतप्रेमी आदि का अतिशयता से वर्णन करता हुआ कवि अनुपम बताते हुए कहता है—

गगन गगन सम अगनि सम, अगनि पुंज सम आप।
कूरम नृपति प्रताप सम, कूरम नृपति प्रताप॥

कवि अपने आश्रय दाता से अत्यन्त प्रसन्न था और सदा अपने शासक को श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। कवि रसरासि अपने शासक की शुभ कामना चाहता हुआ कहता है—

जो लो जाहर जगत मे, रवि ससि रहे प्रकासि।
तौ लो नृपति प्रतापको राज रहौ रसरासि॥

सूर्य चन्द्र के प्रकाश की तरह प्रतापसिंह का शासन काल अजस्र गति से चमकता रहे यह कवि की कामना आज भी सत्य है—राजघरानो के इतिहास मे राजा प्रताप का यश पूर्णत प्रसृत है। राजा प्रतापसिंह की राजसवारी को देखकर भारत का बादशाह भी आश्चर्य चकित हो जाता था—

क्या फबि रहा है सज से हाथी का झूलना।
क्या तेज के तुजक पर चारो का झूलना।
अवरो का पातसाह भी ऐसा कबूलना।
परताप भूप देखा क्या गुलसन का फूलना॥

राजा प्रतापसिंह की युवावस्था मे ही कवि जयपुर आगया था—राजा के विवाह की शोभा उसने अपनी आंखों से देखी थी। प्रतापसिंह अत्यन्त रूपवान थे। श्री सीताराम पर्वणीकर ने भी कहा है—

भूपाभा निजसमविश्रमाश्रयाणां
ता कन्या परिणयतिस्मभूमहेन्द्र।
यद्रूपानुपमतया स्मराङ्गनाया—
श्चेतस्तोध्यगमदर स्वरूपगर्व॥

राजा प्रतापसिंह के वर वेश को देख कर कवि रस रासि ने उसके सौंदर्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

रधादा मे श्री प्रताप बना को निहारा है।
गोया कि आफताव ही ने रूप धारा है।
जगमग जराव जेवर अ ग-अ ग सिंगारा है।
गोया कि देव दरखत फूलन सवारा है।।
सिर सेहरे को सज कर तुररा जो धारा है।
गोया हयात आव काच दर फुहारा है।
आखो मे सुरख डोरे और सुरमा भी डारा है।
गोया किरें गासि फत, क्या सायर विचारा है।।
खुस आप खुस विरादर खुसियो का प्यारा है।
रसरासि जिसकी मिहर से सब का गुजारा है।।

राजा प्रतापसिंह के पुत्रोत्सव पर रसरासि ने मगलमय कृत्यो का चित्रण प्रस्तुत किया है।

श्री सीताराम पवणीकर ने राजा प्रतापसिंह के पुत्र जन्म पर इस प्रकार लिखा है।[16] राजा प्रताप के पुत्र का नाम जगतसिंह रखा गया—जिसका शासन काल सन 1803 से 1819 तक रहा। जगत सिंह भी अपने पिता की तरह उदार एव प्रतापी था। कवि रसरासि ने पुत्र जन्म की खुशियों के सदभ मे इस प्रकार अभिव्यक्ति की है—

अतुलित भई ओज आभा कछ वाहन की
विचलित भई गई फोज तुरकन की
उझलित भई मोद मगल दसो ही दिसा
प्रचलित भई धुनि घन से निसान की।
प्रचलित भई पल पुन को जनम भये,
नृपति प्रताप देत मोजे गुनगान की।

---

16 राज्ञी काचिदथ वसुन्धरा महेन्द्राद्
दधे श्यामलमति गर्भमभेच्छा।
इन्द्रा द्यस्टमितिदिगीश भाग पुष्ट
सर्वेषामतिशय सम्मुदे निदानम्।
सा राज्ञी समय उपस्थिते व्यसूत
प्रोत्तुङ्गस्तन भरस नताङ्गरम्या।
पुत्रन्त य इनकोरजसा निकाम
तेजोभि खलु सहसा तिरश्चकार।।

जयसिंह महा० १५/१३/१४

सफलित भई ग्रासा वेलि महारानी जू की
प्रफुल्लित भई ग्राख पुरुष-पुरान की ।।

राजा प्रतापसिंह की पूज्य माता का देहावसान कवि रस रासि के समक्ष हुआ था। कुंदन कुंवरि बाई अत्यंत धार्मिक एवं सती स्त्री थी—

पाई है बडाई जाकी बडी प्रभुताई
रीति-नीति की चलाई करी सबसों भलाई है।
भाई है गुपाल जाको जाई जसवंत की
सवाई श्री प्रताप जू की माई सुख दाई है।
कीरति सुहाई श्री देस देसन मे छाई
मनो सरद जुन्हाई रसरासि अधिकाई है।
हिये मे कन्हाई जाके रहत सदाई
एसी कुंदन कुंवरि बाई किंधौ मीरा बाई है।।

कुंदन कुंवर बाई जिसका यश सर्वत्र व्याप्त था। जो रीति नीति पूर्वक सर्वजन हितार्थ सचेष्ट रहती थी। श्री जसवंतसिंह की कुमारी एवं माधवसिंह की पत्नी और श्री प्रतापसिंह की माता कुंदन कुंवर सभी के लिए सुख प्रदान करने वाली थी—जिनके मानस मे हरक्षण श्री कृष्ण की प्रतिमा बसी रहती थी। कवि ने मीरा बाई के सदृश बताया है कुंदन कंवर के देहावसान के संदर्भ मे इस प्रकार लिखा है—

ग्रगहन मास अपनायो स्याम श्री मुखसो
ताहू माझ हरि ही को बासर सुहायो है।
निराहारव्रत करि धरि हरि ध्यान हिये
द्वादसी के भोर थूलदेह बिसरायो है।
भानु दछिनायन के बाकी दस ग्रंस रहे
सोई दस गात्र कृत्य वेद मे बतायो है।
पाय उत्तरायण को वासना शरीर तजि
माजी प्रभु माधव का निज पद पायो है।

मार्गशिर मास मे माजी साहिबा का शुभ दिन को देहावसान हुआ था। माजी ने अपने दैहिक तत्व का परित्याग करते हुए माधवसिंह के पास स्थान प्राप्त कर लिया था। माजी साहिबा के व्यक्तित्व को कवि ने मनोरम शैली मे उभारा है।

कवि ने इस कृति मे राजा प्रतापसिंह के रूप प्रताप, दानवीरता से सम्बन्धित कवित्तों एवं दोहों की रचना की है। वस्तुतः राजा प्रताप जयपुर के शासक एवं हिन्दी कवियों मे अपना उल्लेखनीय नाम लिखाने का समर्थ हुए हैं।

डा० कोलने राजा प्रतापसिंह के संदर्भ में लिखा है—महाराज प्रतापसिंह का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य के लिए बड़ा उपयोगी और महत्वपूर्ण है। उनका प्रारम्भिक जीवन संघर्षों से टक्कर लेने में ही व्यतीत हुआ। महाराजा का मन युद्धों में न लग कर भगवद्भजन में अधिक लगता था श्री गोविन्द देव जी इनके इष्ट थे।

'नेश प्रशंसा कृति यद्यपि छोटी सी रचना है किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्व है। राजा प्रताप के रूप स्वरूप, शौर्य आदि का चित्रण हमें इस कृति से प्राप्त होता है।



ससार–सार–वचनिका

ससार सार वचनिका' कृति रसरासि की एक सामान्य रचना है। यह रचना कवि ने सामुद्रिक शास्त्र एव अन्य ज्योतिष शास्त्रो से प्रभावित होकर लिखी है। इस रचना का साहित्य से कोइ सम्बन्ध नही है और न भक्ति-भावना से इसका सम्पर्क ही। यह कृति गद्य एव पद्य दोनो ही विधाओ मे सर्जित है पद्य की अपेक्षा गद्य का बाहुल्य है। कवि ने इस रचना के अन्त म यह स्पष्ट किया है कि इस कृति का निर्माण अपने आश्रयदाता राजा प्रतापसिंह की आज्ञा से किया है—

"इति श्री मन्महाराज राजराजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंहजी वचनात् रसरासि विरचित ससार सार वचनिका पूर्णतामगात।"

इस रचना म काल गति की विवेचना की गइ है। मनुष्य की मृत्यु निश्चित है अत जीव का सभी प्रकार के असद् व्यवहारो से दूर रहते हुए भगवद्भक्ति में अनवरत रूप स रत रहना चाहिये—

' यह ससार सार वचनिका है या कौं बाचि बिचारिके देखैंगे सो काल की गति जानैंगे। तब भजन तप पुन्य तीर्थ वास करि सदगति पावेंगे। या वचनिका मे सबको स्वारथ है और परमारथ है। काहू कौं सिखाईये तो वह पुन्य भजन करैं, ताम बड भाग पुन्य प्राप्ति होयगी। श्री शिवजू का बनायौ काल ग्यान और जोग के ग्रन्थनि को विचारि के श्री मन्महाराजा श्री राजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंह जू की आग्या सौं यह ससार सार हवचनिका प्रगट करिके, श्री हुजूर के निजर करी सवत् अठारह सो इकावना फागुन सुदि तीज सूमवार को मुकाम सवाई जै नगर।"

इस कृति मे य भी स्पष्ट किया गया है कि शिव द्वारा निर्मित काल ज्ञान की विवेचना गइ है। अन्य योग ग्रथो को विचार कर यह कृति कविने स० १८५१ फागुन शुक्लतृतीया सोमवार को जयपुर म सवाई प्रतापसिंह को समर्पित कर दी थी।

इस ससार सार वचनिका में सभी का स्वार्थ एव परमार्थ है जीव अपने और अन्या के सदर्भ म सहज ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। मानव कल्याण के हित ही

कवि ने इस रचना का निर्माण किया है। कृति के प्रारम्भ मे कवि ने मगलाचरण इस प्रकार किया है—

जयति कृष्ण केशव कृपाल अच्युत अनत गति।
जयति साव शिव शभु जयति शकर गिरिजा पति।
जयति गोवधन धर जयति राधा वर नटवर।
जय ग गाधर वृषभ के तन वक त्रिशूल धर।
जय लकुट मुकुट वशी वरन चन्द्रचूड त्रिपुरारि हर।
भूपति प्रताप को वसहु मनवाछित फल देहु वर॥

मगलाचरण मे कृष्ण केशव कृपाल अच्युत, साव शिव शभु, शकर गिरिजापति गोवधनधर राधा नटवर गगाधर त्रिशूल धर आदि अनेक देवस्वरूपो की वदना करते हुए कविने कामना की है कि राजा प्रतापसिंह को मनोवाछित फल दकर कृत कृत्य कीजिये। कृति का प्रारम्भ इस प्रकार है—

मनुष्य जन्म पायके प्रभु को भजन उपकार करिवो ससार मे यह सार है सो यह जीव भूलि रह्यो है और काम क्रोध लोभ मोह मे आसक्त भयौ आयुष को छीन देत है। जसे तीतर को बाज अचानक आय मार लसें काल या जीव को झपटि लेत है। जो काल को ज्ञान होय तो जसे राजा परीछत सात दिन मे प्रभु की भक्ति कथा श्रवण करि मुक्ति भयो और खट् लीव दोय महुरत ही मे मुक्ति प्रभु का भक्ति करि के भयो। तासो जोइ जन मनुष्य को काल को ज्ञान होय तौ थोरे हू रह जे दिन तिन मे जपतप उपगार करि के जीव सब गति पावें। या ते काल को ज्ञान ससार मे महासार है। सो जोगी जो कोई है सो शिव जू के बनाये जोग के ग्रथन मे कहै। सजम। नियम। आसन। ध्यान। धरणा। प्राणायाम। समाधि। ये साधन साधिके जोगी काल को जीते हैं सो तों ससारी जीव सा बने नहीं। या ते उनकी सदगति के निमित्त श्री मन्महाराज धिराज राजराजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंह जी शुभ चित करि रसरासि को आज्ञा करी। काल ज्ञान के लछलछन की बचनिका करो। यह सब को सुखदायक है सदगति की दाता है यामे स्वारथ है और उपगार है। जो कोई वाचगो विचार गो सो जानेगों। यहाँ प्रथम ही काल रूप और सुख रूप सूय और चद्रमा है सो दिन राति पख मास सक्रान्ति सवत्सर सज्ञा अनेक रूप जानिये। और मकर सक्रान्ति सूयस्थान जानिये। सो कक सक्रान्ति जा समय बठे ता समय जो चद्र स्वर तीन दिन चल। और मकर सक्रान्ति जा समय दिन तीन चद्र स्वर चल अरु कृष्ण पख के दिन स्वर चलै तो मास ६ मे मृत्यु होय। और शुक्ल पक्ष की परिवा के प्रात ही दिन तीन १, २ ३ सूय स्वर चले तो कोई विघ्न न होय।

कवि रसरासि कहता है इस संसार में सांसारिक जन भौतिकी सुखों की लालसा में माया मोह क्रोध कामादिक विसंगतियों के मोहपाश में बंधते हुए नारकीय जीवन जीने को विवश हैं—उन्हें भगवद्भक्ति की तनिक भी चिन्ता नहीं है क्योंकि वे समझते हैं कि अभी तो उम्र की लम्बी राह है। पहले भौतिकी सुख की तृष्णाओं को तृप्त करलें फिर आध्यात्मिक संदर्भ में विचार करेंगे—और इसी ऊहापोह में बेकराल काल के ग्रास बन कर इसी संसार में अनेक योनियों में अनेक जन्म लेकर भटकते रहते हैं। राजा प्रताप ने सांसारिकों की ऐसी विषम नारकीय स्थिति से चिंतित होकर उनके उद्धार की कामना से 'संसार सार वचनिका' के निर्माण के लिए आदेश दिया है। इस वचनिका में मानव के मृत्यु से पूर्व लक्षणों का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है। शरीर के विभिन्न अंगों के संदर्भ में इस प्रकार कहा है—

और देह में जीभ को अग्र अरुन्धती जानिये।
नासा कौ अग्र ध्रुव जानिये।
भौंह को विष्णु पद जानिये।
तारका मात्र मंडल जानिये।

शरीर में जिह्वा को अग्र अरुन्धती की संज्ञा दी है। इसी प्रकार नासा को अग्रध्रुव विष्णु भौंह को सम्पूर्ण देह को तारका मंडल की संज्ञा दी है।

इस प्रकार सम्पूर्ण देह के विभिन्न अंगों की यौगिक परिभाषा देते हुए मृत्यु से पूर्व लक्षणों पर विचार किया गया है—

और जा पुरुष का वीर्य जल में तरै नहीं
सो एक पक्ष मरै, तिरै जहाँ लौं
मास छः जम को भय नहीं॥

जिस पुरुष का वीर्य जल में तिरता रहे उस पुरुष की छः मास तक मृत्यु सम्भव नहीं है और जिस पुरुष का वीर्य जल में तिर नहीं सके—उस पुरुष की मृत्यु मास में निश्चित रूप से हो जाती है।

और आपके कानन दोऊ हाथन रे मुंदिय।
जो अनहद धुनि न सुनेतो
मास एक में मृत्यु होय निस्संदेह॥

कवि कहता है कि मनुष्य अपने दोनों हाथों से दोनों कानों को अच्छी तरह ढक कर प्रातः सायं अनहद की ध्वनि सुने—यदि अच्छी तरह सुनता है तो मृत्यु नहीं और न सुन सके तो उस पुरुष की एक मास में मृत्यु हो जाती है।

रोगी के नासिका नेत्र वाणी मुख
और ही रूप होय—
सो मास एक मे मृत्यु होय॥

यदि किसी रोगी व्यक्ति की नाक, आखे वाणी और मुख एक साथ ही विकृत रूप म दिखाई दे तो उस व्यक्ति की एक मास के भीतर ही मृत्यु हो जाती है।

और आपके इष्ट देव को ध्यान किये
जो विकृति रूप ध्यान में आवे जाको—
सो मास एक मे मृत्यु होय॥

कवि कहता है आप अपने किसी भी इष्ट देवता का ध्यान कीजिये—यदि ध्यान म विकृति का समावेश हो जाता है तो एक मास मे मृत्यु हो जाती है। किन्तु यह अस्वाभाविक है।

और जाकी इन्द्री नेत्र नासिका जिम्या कान
आपनी खुराक ग्रहण न करें—
सो पुरुष मास एक मे मृत्यु होय॥

यदि किसी व्यक्ति की दसा इन्द्रियां काम नहीं करे—अर्थात नेत्र, नासिका जीभ एव कान अपनी प्रक्रिया का परित्याग करदे तो उस व्यक्ति की मृत्यु एक मास के भीतर हो जाती है।

और जाका दीपक दृष्टि न आवै,
अरु इन्द्र-धनुष राति का दीखै,
जाको सो मास एक मे मृत्यु होय॥
और जाको भूमि बिना छिद्र छिद्र दीखै
और जाको सूय मे छिद्र दीखै,
जाको सो मास एक मे मृत्यु होय॥

जिस व्यक्ति को दीपक नहीं दिखाई दे और रात को इन्द्र धनुष दिखाई दे, और जिस को बिना छिद्र ही धरा मे छिद्र दिखाई दे तथा सूय मे छिद्र दिखाई दे—उसकी एक मास म मृत्यु हो जाती है।

और जाको सूय सीतल लागै,
अरु चन्द्र किरनि गरम लागै,
सो पुरुष मास एक मैं मृत्यु होय॥

जिस व्यक्ति को सूय शीतल प्रतीत हो और चन्द्रमा की किरणें उष्ण प्रतीत

हो उस व्यक्ति की मृत्यु एक मास मे हो जाती है।

इस प्रकार वर्णन करने के पश्चात् काल मुद्रा का विवेचन किया गया है—

अब काल मुद्रा लिखिये है।
दोऊ मध्यमा उलटी मिलि जाइये।
और अंगुष्ठ तजनी अनामिका कनिष्ठा
इनको सुलटी मिलाइये।
तब खट शूल होय—
या को काल मुद्रा कहिये।

दोनो मध्यमा अंगुलियों को उलटी मिलाईये और शेष को सुलटी मिलाईये इसी को काल मुद्रा कहा जाता है।

अब याको देखिवो लिखत हैं।
उलटी अंगुलीन को तो दृढ़राखें
औरन को छोड़ि छोड़ि मिलाव।
सो सब ही उठि आवे तो—
मास छ मे मृत्यु होय॥
अरु जहा ताई आवल अधिक होय तो—
अनामिका सपुट काल मुख है सो खुले नही।

कवि कहता है—उलटी की हुई अंगुलियो को दृढ रखते हुए और अंगुलियो को छोड़ छोड़ कर मिलावे-यदि सभी उठ जावे तो छ मास म मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार काल मुद्रा के सदभ मे विस्तार से चर्चा की गई है। छाया-पुरुष के बारे मे कवि अपना विचार व्यक्त करता हुआ कहता है—

अब छाया पुरुष को विचार लिखिये हैं।
प्रथम देह कृत्य करि—
छाया-पुरुष को
षोडषोपचार पूजन करै।
माखन मिश्री नैवेद्य धरै।
॥ ऊँ क्लीं नम ॥
यो मत्र वार १०८ जपै।
पाछे सूय को पीठि दै।
आपनी छाया देखै।
मस्तक कठ कधा नेत्र के पलक लगावे नही।

पाछे आकास मे एक छोर देखै—
जो सवा ग शुद्ध दीख—
तव ताई दीर्घायु जानियै ।

'छाया-पुरुष' पोडपोपचार पूजन कर नवेद्य चढाकर मत्रादिक स पूजन करे और उसके पश्चात् ध्यान से आकाश के एक छोर म देखे—यदि सर्वा ग शुद्ध दिखाई दे तो व्यक्ति को दीर्घायु मानना चाहिये ।

और मस्तक न दीख —
तो छ मास मे मृत्यु होय ।
अरु दछिण भुजा न दीखै—
तो भ्राता-मरण होय,
बायो हाथ नही दीखे—
सो पत्नी मरण होय,
उदर नही दीख तो—
पुत्र अथवा पिता-मरण होय ।।

मस्तक नही दिखाई दे तो छ मास म मृत्यु हो जाये । दक्षिण भुजा क न दिखन से भ्रातृ वियोग और वाम भुजा के न दिखने स पत्नी विछोह एव उदर के न दिखाई देने से पुत्र अथवा पिता की मृत्यु सभव है—

और स्वेत दीख लाभकारी,
रक्त दीखै रोग कारी,
कृष्ण वर्ण दीखै मृत्यु कारी ।।

यदि आकाश श्वत दिखाई देता है तो व्यक्ति को हर प्रकार से लाभ होता है और लाल रग दिखाई दने पर रोग कारी तथा कृष्ण वर्ण दिखाई देने पर मृत्यु सूचक माना जाता है ।

और रोगी के हाथ
मेह्दी की बीदी दीजै
जो रग आवै तो मरै नही ।।
और जा रोगी के—
दिन मे तो सीत लागै
और रात को दाह होय,
कफ पूरित कठ होय
मस्तक तप्त होय,

सरीर मे पसीनो होय
सो दिन तीन मे मृत्यु पावै ।।

रोगी की मृत्यु के सदभ मे कवि ने अनेक लक्षण निर्दिष्ट किये हैं—जैसे रोगी हाथ मे मेहदी की बिंदी लगाईये यदि रग आता ह तो उस रोगी की मत्यु नही गी । इसी प्रकार आयुर्वेद के लक्षणो पर भी विचार किया गया है ।

और जाको मुख ज्योति हीन होय,
अरु नेत्रन के मडल दीखै,
सो सात दिवस मे मृत्यु पाव ।
और जाको आधो सरीर शीतल होय
आधो गरम होय
अरु जलपान लघुशकादिक काय करि भूलि जाय,
सो सात दिवस मे मृत्यु पाव ।

कवि कहता है जिसका मुख ज्योति हीन हो जाये और नेत्र के मडल न दिखाई दे–उस रोगी की सात दिन मे मृत्यु हो जाती है, और जिसका शरीर आधा शीतल एव आधा उष्ण रहे स्मृति भ्रश हो जाये–उस रोगी की मृत्यु सात दिन में समव है ।

और जाको मुरदा की गध आव जहा तहाँ,
सो दिन तीन मे मृत्यु पाव ।
और जाका आकास मे नग्न पुरुष दीखे
दड धारी दीखे—
भोजन समै-सो वाही दिन मृत्यु पावै ।
और दपण के जल मे—
आपको प्रतिविम्ब नही दीखै,
दीपक न दीखै-सो मास एक मे मृत्यु होय ।

जिस व्यक्ति को सवत्र शव गध आती रहे–उसकी मृत्यु तीन दिन मे हो जाती है, आकाश मे नग्न पुरुष या दडधारी का दिखाई देना, जल दपण म प्रतिविम्ब न दिखना, दीपक न दिखना भी मृत्यु सूचक है ।

स्वप्न विचार के सदभ में कवि कहता है—

और जाको घडी दोय तडके स्वप्न मे—
आपको विवाह दीखे—
मद पान हास्य करे,

उच्छव करे
श्याम वस्त्र पहिने,
लाल वस्त्र पहरे
नग्न आपको देखे,
तेल सरीर के लगाव,
दक्षिण दिसा गमन करे,
भैंसा पर ऊंट की सवारी करे
शख, कोडी कपास छाछि देखे,
दही-भात भक्षण करे
नग्न पुरुष श्याम वर्ण
लोहदण्ड धारी देखे,
स्त्री रक्त वस्त्र पहिरे दीखै,
हास्य करती फाग खेलै,
खुला केशा नग्न विरूप दीखै,
पुरुष भयानक मुडित,
श्याम पीत हास्य करे,
विना दात को दीखै,
आपको मुडित देखे,
भग्न-लिंग देखे
खडित प्रतिमा देखे,
राज-मदिर पडतो देखे,
सो पुरुष स्त्री मृत्यु पावै ।

स्वप्न विचार के सदर्भ मे कवि रसरासि ने अनेक लक्षणो की व्याख्या की है । कवि पर सामुद्रिक शास्त्रो एव अन्य पौराणिक शास्त्रो का गहरा प्रभाव है । कवि ने इस कृति की रचना मनुष्य का काल से सतर्क रहने के उद्देश्य से की है कि मृत्यु के पूर्व लक्षणो से परिचित हो । सामाजिक अपनी कामनाओ को भौतिक जगत से सिमेट कर हरि के चरणो की ओर लगादे–जिससे वह सद्गति प्राप्त कर सके ।

राग-संकेत

कवि रसरासि राजा प्रताप सिंह के राज्याश्रित कवि थे और राजा प्रताप संगीत शास्त्र के प्रति अत्यधिक प्रेम रखते थे। मुगल साम्राज्य के शासनकाल में संगीत का विकास चरम सीमा पर था। प्रत्येक बादशाह की सभा में संगीतज्ञ होना आवश्यक था। तानसेन आदि संगीतज्ञों के नाम इतिहास में हमें मिलते हैं। जयपुर नरेशों की राज्य सभा में भी संगीतज्ञों को विशेष स्थान प्राप्त होता था। संगीत के बिना राज्य वैभव अधूरा रहता था। कवि रसरासि ने संगीत विद्या पर शास्त्रीय विवेचन किया है—रसराग संकेत में मंगलाचरण करते हुए कहते हैं—

श्री हरि हर गिरजा गिरा गनपति गोपी गोप।
इनकी मुख की लागसा भई राग की ओप।
भई राग की ओप चोप करि इनही गायी॥
वही रागिनी राग सबन को रूप दिखायौ।
नाद ब्रह्म की स्वाद प्रकट की है अमृत भर।
रसिकन मे रसरासि आदिनायक श्री हरि हर॥

कवि ने मंगलाचरण में श्री शिव पार्वती सरस्वती गणपति एवं श्री कृष्ण की वंदना करते हुए स्पष्ट किया है कि इस कृति में सब प्रकार की राग रागिनियों के स्वरूप का विवेचन किया गया है।

कवि स्वयं कहता है कि जयपुर नरेश राजा प्रतापसिंह जो एक महान् योद्धा एवं कृष्ण भक्त है वही आमेरपति सुन्दर एवं लावण्यमय हैं जिन के रूप सौन्दर्य पर भामिनियों का मान स्वतः ही ढल जाता है वे अत्यन्त संगीत प्रिय हैं—

केशव शिव की भक्ति जुत नृप प्रताप रन धीर।
रघुवंशी आमेरपति सुन्दर श्याम शरीर।
उदित दिनकर सो सोहे तजत भामिनी मान।
रूप निरखत मन मोहे चौसठि कला प्रवीन।

चित्त जाके नित उत्सव राखत टेव।
कवि विवेक एक जानत शिव केशव।।

कवि अपने आश्रय दाता प्रताप के गुणों की महिमा का वर्णन करता हुआ पुनः इस कृति में कहता है कि जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह सूर्य से कान्तिमान एवं अनुपम हैं, दानवीर, शूरवीर एवं धर्मवीर इस राजा का यश सर्वत्र प्रसृत है—

शाह जयपुर नगर मे दिनकर सो द्युति वान।
नृप प्रताप माधव तनय माधव तनय समान।
माधव तनय समान दान को करन भोजसो।
विक्रम सो रिझवार जग में अग्नि ओजसो।
सत्रु सेन पर वार करत मृग पै ज्यो नाहर।
फैलि रह्यो रसरासि सुजस जाको जग जाहर।।

राजा प्रतापसिंह संगीत प्रेमी थे अतः इनके महलो मे सदा-सर्वदा संगीत की मधुर स्वर लहरी झंकृत होती रहती थी। जिस प्रकार राजा इन्द्र की अमरावती संगीत के मधुर निनाद से आपूरित थी-उसी प्रकार प्रताप की राज सभा मधुर स्वर से मुग्ध रहती थी। शास्त्रीय संगीत विशारद इस सभा में नित नये प्रयोग करते थे तथा जन जीवन अमृत सा आनंद लूटते थे। कवि रसरासि ने यह सब देख कर शास्त्रीय संगीत की विवेचना की है।

बरसत बचन झर सरस दरसत अंग उमंग।
पुहमी इन्द्र प्रताप के छिन छिन तान-तरंग।
सप्तक रूप विभाग लाग सुरको पहिचानत।
औडवै खाडव आदि नाद के स्वाद हि समझत।
उमगि उमगि रसरासि रैन दिन धन ज्यो बरसत।।

राजा प्रतापसिंह जयपुर में सुख निवास में बैठ कर रसिकों की सभा में संगीत के माधुर्य का रसास्वादन किया करते थे—राजा प्रतापसिंह ने एक दिन कवि रसरासि को राग संकेत लिखने का आदेश दिया। कवि ने उल्लेख भी किया है—

सुख निवास मे दिवस निसि प्रताप सुख लेत।
हुकम कियौ रसरासि को रचहू राग संकेत।।

राजा प्रतापसिंह के आदेश से जिस प्रकार संसार-सार वचनिका का कवि ने प्रणयन किया, उसी प्रकार राजा प्रताप के आदेश से कवि रसरासि ने राग संकेत का निर्माण करने का विचार किया। राजा ने कवि को इस प्रकार आदेश दिया—

रचहू राग सकेत यथा ग्रथन मे गायौ ।
पारवती प्रति सभु प्रथम जिहि भाति सुनायौ ।
वहै सरस सवाद वचनिका करी पाय रूप ।
वाचन वढत विनोद मोद महिमा सपति सुख ॥

कवि रसरासि ने इस कृति म गद्य पद्य दोनो ही विधाम्रो म इस कृति का निर्माण किया है । प्रस्तुत रचना मे राग के प्रमुख छ भेद एव रागिनी के ३० भेद तथा उपरागिनी के अन्यान्य भेद किये हैं । दो अथवा अधिक रागिनी के साम्मिश्रण से नूतन रागिनी का ज म हाता है । इस पर कवि ने विशद विवेचन किया है ।

कवि ने 'शिव पावती' को प्रथम सगीत ज्ञाता मानत हुए कृति का श्री गणेश इस प्रकार किया ह —

श्री महादेव जी पारवती को राग रचना के भेद मिलाप सम्पूरण कहत हैं— अहो ! प्राणवल्लभे देखो-सरप मृग बालक इनकी पसु सज्ञा दी है । सो एकहु नाद सुनि के परवस होत है । याते नाद की महिमा कहिवे को कौन की सामर्थ है ।

नादो की सज्ञा करने के पश्चात नाद का महत्व प्रनिपादित किया हैं तत्पश्चात् रागो के विविध नामो का परिचय देते हुए वर्गीकरण प्रस्तुत किया है —

अथ रागन के नाम कहियें है —

१ भरव ।
२ माल कोस ।
३ हिंडोल ।
४ दीपक ।
५ श्री राग ।
६ मेघ मल्हार ।

राग पुरुष

एक राग की पाच पाच रागिनियाँ होती हैं—जिनका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है —

१ माधवी ।
२ भरवी ।
३ वगाली ।
४ विराडी ।
५ सैंधवी ।

भरवी की पाच रागिनी

माल कोस की पांच रागिनी

१ टोडी
२ खमावती
३ गौरी
४ गुणकरी
५ ककुभा

हिंडोल की पांच रागिनी

१ बिलावल
२ रामकरी
३ देशाख
४ पटमजरी
५ ललित

दीपक की पांच रागिनी

१ केदारो
२ का हरो
३ देशी
४ कामोद
५ नट

श्री राग की पांच रागिनी

१ बसन्ती
२ मालवी
३ मालश्री
४ धनाश्री
५ आसावरी

मेघमल्हार की पांच रागिनी

१ मल्लारी
२ देशकारी
३ भूपाली
४ गुजरी
५ टक

सप्त स्वर —

१ खज
२ रिसभ
३ [illegible]

४ मध्यम
५ पचम
६ धवत
७ निषाद

सप्त स्वरा के लक्षण देकर उनके उदाहरण दिय गय हैं। कवि न इन सप्त स्वरा का स्वरूप इस प्रकार व्यक्त किया है —

परज स्वर मयूर को जानिये ।
रिषभ स्वर पपीहा को जानिये ।
गाधार स्वर छाग को जानिय ।
मध्यम स्वर कुरज को जानियैं ।
पचम स्वर कोकिल को जानिय ।
धैवत स्वर दादुर को जानियैं ।
निपाद स्वर हस्ती को जानियैं ।

कवि ने दो या दो से अधिक मिलकर जो रागिनी बनता है उन पर अति विस्तार स विवेचन किया है—जसे—

(1) बराडी, आसावरी, गौरी, स्याम गूजरी, गधार एछ राग मिल के पटराग होत हैं।

(ii) मल्हार शुद्ध कल्याण मालश्री ए तीन मिलि के मधु माधवी नाम रागिना होत है।

(iii) नर नारायण, शकराभरण शुद्ध ए तीन मिलकर सरस्वती नाम रागिनी होत है।

(iv) मारवो, मल, गौरी, धनी गौरी, धनाश्री य पाच राग के मिलाप सो बड़हंस नाम राग होत हैं।

(v) धवल, कानरो, दोऊ मिलि के पूरिका नाम रागनी होत है, या ही काऊ मगलष्टर नाम कहत है।

(vi) मौर जहा केदारी मल ए दोऊ एक समभन्य तब तहा दहन हनुमान राग हात है।

इस प्रकार मवित्रवल्लभा, शकराभरण मननाम गांधारी विरोष्टत, बडा सामहा देशाक्ना कोमोदी पाराबती, भीम पलासनी, परमावती करोडी, बिहागडा, जउश्री मारवा, मनोहरना, हमीर नाम ध्वनि रससमगला, सोरष्ट राजनारायन,

रामहंस, श्री सम्पन्ना आदि अनेक रागिनियों का भेद विभेद करते हुए इनके लक्षण प्रस्तुत किये गये हैं।

अन्त में कवि ने फिर कहा है—या प्रकार श्री महादेवजी पार्वती सों रागन को संकेत कहे।



दोहा मुक्त-मालिका

कवि रसरासि की इस सग्रह् मे यह् प्रन्तिम कृति है। इस कृति मे १११ दोहे सकलित हैं। कवि ने प्रारम्भ मे एव प्रत मे अपना नाम का उल्लेख किया है। दोहे एव सोरठे दोनो मिलाकर १११ हैं। इस कृति मे दोहे एव सोरठे शृ गार, नीति, एव प्रेम सबधित हैं। उस युग मे दोहो की एक विशिष्ट परम्परा रही थी जयपुर नरेश के प्राश्रित बिहारी कवि ने सतसया का जो निर्माण किया था-उसका परवर्ती कवियो पर गहरा प्रभाव पडा था। कवि ने इस कृति के प्रारम्भ म इस प्रकार लिखा है —

।। श्री रामो जयति ।। अथ फुटकर दोहा मुक्त मालिका ।।

मगलाचरण के रूप में कवि का यह प्रथम दोहा है —

सिरसताई हू मे सरावी प्रीति प्रकासि
मिले हसें बिछरें पिजें श्री राधे रसरासि ।।१।।

कवि रसरासि ने इन दोहो के सदभ म प्रन्तिम दोहा इस प्रकार लिखा हैं — जिससे वह इन दोहा को अत्यधिक चमत्कृत मानता हुप्रा कठ करने के लिए कहता है —

इन फुटकर दोहा न पें वारो मोती दाम।
कठ करौ रसरासि यह दोहा मोती दाम ।। १११

कृति के प्रत मे कवि ने कृति समाप्ति की घोषणा इस प्रकार की हैं —

इति दोहा मुक्त मालिका रसरासि पूर्णतामगात।

इतना प्रमाण मिलने पर भी यह कृति कवि रस रासि की हो इसमे सन्देह प्रतीत होता है। कितने ही स्थलो पर प्रन्य कवियो के दोहे देख कर भ्रम हो जाता है। यह कृति तत्कालीन कवियो द्वारा निर्मित विविध श्रेष्ठ दोहों का सकलन हो यद्यपि इस सकलन मे स्वय कवि रसराशि द्वारा निर्मित दोहे भी हैं--और ये दो

अधिक माया म हैं। इसके अतिरिक्त विष्णुदास, हुसेन, आलम, रहीम के नाम से दोहे भी मिलते है।

बिहारी का प्रसिद्ध दोहा इस संकलन मे इस प्रकार मिलता है —

रितु वसत जाचक भयो, दान दिये द्रुम पात।
ताते फिरि पल्लव भये, दियौ दूरि न जात।।

इसी प्रकार रहीम का एक दो दोहे भी उपलब्ध होता है —

बडे पेट के भरन को है रहीम दुख बाढि।
यातें हाथी हहरि के दात देत है काढि।।
यो रहीम सुख होत है बढे आपुने गात।
बडी आखिन देखि ज्यो आखिन ही सुख होत।।

'पूरनदास' नाम से भी एक दोहा इस सग्रह में मिलता है —

भीजें धरनि सुवास होय यहि कयो पूरनदास।
सुधर सजन माटी मिले तिन की आवत वास।।

सम्मन कवि के नाम से भी अनेक दोहे हमे प्राप्त होते हैं।
सम्भव के सदभ मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है।।

" ये मल्लावा (जि० हरदोई) के रहने वाले ब्राह्मण थे और सवत् १८३४ म उत्पन्न हुए थे। इनके नीति के दोहे गिरधर की कु डलिया के समान गावों तक मे प्रसिद्ध हैं। इनके कहने के ढग म कुछ मार्मिकता है। "दिनो के फेर' आदि के सबध मे इनके ममस्पर्शी दोहे स्त्रियो के मुख से बहुत सुन जाते है। इन्होंने सवत् १८७१ मे पिंगल काव्य भूषण' नामक एक रीतिग्रथ भी बनाया। पर ये अधिकतर अपने दोहों के लिए ही प्रसिद्ध हैं। इनका रचना काल सवत १८६० से १८८० तक माना जाता है। कुछ दोहे देखिये —

निकट रहे आदर घटे, दूरि रहे दुख होय।
सम्मन या ससार में प्रीति करो जनि कोय।।
सम्मन मीठी वात सा होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिं सीख्यो बोलिवो, तेहि सीखो सब धूर।।

कवि रसरासि के ८ दोहो मे 'सम्मन' शब्द आया है सम्भवत इसी सम्मन के ये दोहे कवि ने अपने सकलन मे सम्मिलित किय हो। कवि रसरासि की रचना काल स० १८५० था और सम्मन का सृजनकाल १८६० से १८८० था। अत सम्मन के दोहे रसरासि के दोहा मुक्त मालिका म कसे सम्मिलित हुए यह शकास्पद है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी अन्य व्यक्ति ने इस सकलन म य दोहे बाद म सम्मि लित किये हो।

दोहा मुक्त मालिका में 'सम्मन' के नाम से इस प्रकार दोहे मिलते हैं —

समन रहट सुभाय यह ज्यौ कुमित्त सोइठ।
जब पाली तब सामुही जब सू भर तब पीठ॥
समन बान जू प्रेम के भेदि रहे सब देह।
मूये पाछे निकसि हे छानि छानि के स्वेह॥
सम्मन भूठे पाठ सात चिरजी जे कहें।
गनि मो सुध थाठ, पिय बिछुरत हू नामरी। (सोरठा)

इसी प्रकार आलम का भी एक उदाहरण मिलता है कवि आलम के सदर्भ में राम चन्द्र शुक्ल ने लिखा है — ये अकबर के समय के एक मुसलमान कवि थे जिन्होंने सन ९९१ हिजरी अर्थात सवत १६३९-४० म 'माधवानल कामकन्दला' नाम की प्रेम कहानी दोहा चौपाई म लिखी। पाच पाच पर एक दोहा व सोरठा है। यह शृगार रस की दृष्टि से जान पडती है।'

आलम नाम से अन्य एक कवि रीतिकाल में हुआ है— उसके सदभ में आचाय शुक्ल ने लिखा है — ये जाति मे ब्राह्मण थे पर शेख नाम की रगरेजिन के प्रेम म फसकर पीछे से मुसलमान हो गय और उसर साथ विवाह कर के रहन लगे। आलम का कविता काल सवत १७४० से सवत १७६० तक माना जा सकता है। इनकी कविताओ का एक सग्रह 'आलम केलि' के नाम से निकला है। आलम रीति बद्ध रचना करने वाले कवि नहीं थे। ये प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरग के अनुसार रचना करते थ। इसी स इनकी रचनाओ में हृदय तत्व की प्रधानता है। प्रेम की पीर या इश्क का दद उनके एक एक वाक्य म भरा पाया जाता है। शृगार रस की ऐसी उन्मादमयी उक्तिया इनकी रचना म मिलती है कि पढने और सुनने वाले लीन हो जात हैं। दोहा मुक्त मालिका म जो आलम नाम से एक छद सुलभ होता है—वह इस प्रकार है —

आलम प्रेम वियाग ते उठन अटपटी झार।
मन लाग जिय राज रे लाज होत है छार॥

'हुसेन' नाम से भी कुछ दोहे उपलब्ध होत हैं—वे इस प्रकार है —

रूप हाटि को देखि के भये जु गाहक नेन।
जिय गहने धारि लें विरह बिसाहि हुसेन॥

इस प्रकार इस दोहा मुक्त मालिका मे यत्र-तत्र-सवत्र सन्देह एव भ्रान्ति के बीज बिखरे हुए हैं—अत हम यह निश्चित रूप म नहीं कह सकत हैं कि इस कृति में कितने अथवा कौन से दोह कवि रसरासि के हैं और कौन स दोहे अन्य कवियों के।

यह भी सम्भव हो सकता है कवि रसराशि ने स्वय रोचक दोहो का सकलन कर मुक्त मालिका नाम धर दिया हो। बिहारी कवि के अनेक दोह कितने ही सकलनों में विविध कवियो के नाम से उपलब्ध होते हैं। सवाई प्रतापसिंह के शासन काल मे अनेक कवि राज्य सभा को अलकृत करते थे–हजारो दोहो का निर्माण हुआ था। स्वय प्रतापसिंह के आदेश से 'हजारो' का सग्रह कराया गया था–जिनमे प्रताप वीर हजारा' और 'प्रताप सिंगार हजारा' प्रसिद्ध है।

इस सकलन के कुछ दोहों को हम यहा उद्धृत कर रहे है —

घटन घटे की नाव लो सिसुता जोवन जोय।
चाहत उत्तर चढन को चढ्यो न उतर्यो कोय॥

वय सन्धि का चित्रण करते हुए कवि ने शैशव एव यौवन का रूप प्रस्तुत किया है, उतार-चढ़ाव के उपक्रम मे अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति व्यक्त की है।

नारियो के लोचन के सदर्भ म हिन्दी साहित्य मे अनेक दोहे मिलते है— एक दोहा इस सन्दर्भ मे इस प्रकार है —

नलिन मलिन किये नागरी, तेरे लोचन लोल।
अरु चकोर चेरि किये, लिये म मोले मोल॥

नारियो के सुन्दर नयनो का वर्णन करता हुआ कहता है इन आखो के अवशिष्ट कज्जल की स्याही से वेद लिखना चाहिए था–जिससे मादकता का समावेश हो जाता––

सरफा सु दरि दृगन मे, क्यो न होय रस-भेद।
इनके कज्जल त बच्यो तासो लिखियत वेद॥

नारि के विविध अ गा में सौदर्य के स्वरूप की स्थिति को स्पष्ट करते हुए वाणी में माधुर्य के समावेश पर आश्चर्य व्यक्त किया गया है —

सब सलोने देखियें प्यारी तेरे गात।
प्रगट कहा ते होत ए मिठी मीठी बात॥

नयनों म लावण्य का सलोनापन है और अधरों मे माधुर्य––मीठे के साथ सलौने की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है —

दृग लोने मीठे अधर इन मे घटि वढि कोन।
लौने दृग मीठे लगे ज्यो मीठे ढिग लोन॥

रमणी के सुन्दर मुख मे धवल दन्त द्युति की शोभा को व्यक्त करते हुए कवि ने उत्प्रेक्षा की है —

अधर खुलनि चौका चमक विहस बैठी बाम ।
मानहू जवाहर को डब्बा खोल रह्यौ है काम ।।

इसी प्रकार की एक उत्प्रेक्षा और है --

यह अचिरज पेपहु प्रकट कनक लता पे इदु ।
निसि उडगन बान सहित विचि विकसत अरविंदु ।।

कामिनी के पीन पयोधर के सदर्भ में कवि ने सहृदयता से इस प्रकार व्यक्त किया है --

कुच गिर पर मनमथकरी चढयौ जात इहि भाय ।
रोमावली ना हिय, सा कर पीस जाय ।।

कवियों ने नारी के 'नख शिख सम्बन्धित अनेक दोहा की रचना की है । कवि बिहारी ने नायिकाकी चेष्टाओ के सन्दर्भ में बहुत कुछ कहा है ।[1] विच्छित्ति हाव का उदाहरण देखिये

नायिका की हंसी के सदर्भ में कवि ने उत्प्रेक्षा की हैं --

छिनक ससी छिन कोकनद हसे पिजे मुख होय ।
चप चकोर अरु मधुप गनि दौरि थकित भये सोय ।।

नायिका के केश विन्यास एव अलकावलि के सन्दर्भ में कवियो ने अनेक प्रकार की उत्प्रेक्षा की है । ऐसी ही उत्प्रेक्षा देखिये --

चोवा चुपरी चुह चुही झनकत अलक उदार।
टाकि धर्‌यौ है कौर रा मनहू काम कुतवार ।।

× × ×

आनन पर अलक छुटी अरु दृग अजन पीन ।
उरज वचा जनु मात डर भागि कमल दल लीन ।।

× × ×

अलक लटके कुचन पर उपमा ऐसी देत ।
सिव तजि के नागनि चली, ससि मुख अमृत हेत ।।

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कहा है--"भाव की व्यजना में भाव से आलबन का चित्रण और भाव के आश्रय की चेष्टायें दोनो आते हैं । पहला हुआ

वदी भाल तँबाल मुहँ सीस सिल सिल बार ।
दृग आजे राज सरी एई सहज सिंगार ।।

विभाव पक्ष का निरूपण और दूसरा अनुभाव का नियोजन। विभाव पक्ष मे आलबन की चेष्टाए भी आए गी और उसके काय-व्यापार भी। ये भाव प्रेरित भी हो सक्त हैं और स्वभाव सिद्ध भी। आलबन की चेष्टाए जब आश्रय के हृदय स्थित भाव को बढ़ाने और उद्दीप्त करने मे सहायक होंगी तब उन्हें उद्दीपन कहगे।"

ऐसे ही उद्दीपन भावो एव चेष्टाओ के सदभ म अन्य कवि ने भी दोहे लिखे है। कवि ने ऐसे ही उद्दीपन की अभिव्यक्ति करते हुए लिखा है —

काली लटकारी अलक रही उरज पर आय।
मनहू उरग हर कठ सो राख्यो बोधि बनाय।।

इस प्रकार के अनेक दोहे इस सकलन मे है। कवि की उत्प्रेक्षा अनूठी हैं कुछ नये प्रयोग भी किय गये हैं। इस सकलन क कुछ दोहे इस प्रकार हैं—जो चमत्कृति को स्पष्ट करते हैं —

कुतुब कगूरा प्रेम का ऊँचा अति ही उत्तुग।
सीस दिये बिन पाय तर करन पहूचे सग।।

× × ×

ढरतन असुवा लाज ते रहे नन भरि नीर।
जैसे काती साग्सो उफन्यो गिरे न खीर

× × ×

नर नारि रोटी रटत चलते छेट।
सबै बिगारी पेट के, सब बिगारी पेट।।

× × ×

गोरे मुख पर तिल निरखि नैनन कियो प्रणाम।
मानहू चद छिपाय के बैठ्यो शालि ग्राम।।

× × ×

गोरे, मुखपर तिल निरखि लग्यो काम का सेल।
वा घायल को चाहिये वाही तिल को तेल।।

विश्लेपण

रीतिकाल के कवियो में तीन प्रकार की प्रवृत्ति दिखाई देती है—उनके अनुसार हम इस प्रकार वर्गीकरण कर सकते है —

(१) रीति सिद्ध
(२) रीति बद्ध
(३) और रीति विरुद्ध ।

रीति सिद्ध कवि भाव पक्ष एवं कला पक्ष को समान दृष्टि से देखते थे और रीति बद्ध अपनी कविता में केवल कला पक्ष को ही सर्वाधिक महत्व देते थे किन्तु रीतिविरुद्ध कवियो म भाव पक्ष की प्रधानता रहती थी और कला पक्ष की सहज-अभिव्यक्ति गौण रहती थी । कवि रस रासि रीति कालीन कवि मानें जायेंगे—और वह भी रीतिसिद्ध । कवि में भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनो ही पक्षो को व्यक्त करने की लालसा रही है । यद्यपि कवि ने अपने आराध्य की लीलाओ का चित्रण व्यक्त किया है किन्तु वह विलासिता स ओत प्रोत है न कि हृदय की शुद्ध भावनाओ का सम्बद्ध समर्पण । यद्यपि भक्ति काल मे भी ध्रुवदास छीहल, लालचदास, कृपाराम, आलम मनोहर कवि, जमाल, बलभद्र मिश्र, होलराय कादिर, मुबारक, बनारसीदास, सुदर पुहकर कवि आदि ने विलासिता से परिपूर्ण साहित्य सृजन किया है फिर भी हम इन्हे रीतिकालीन युग मे न मानकर भक्ति काल में ही मानत आ रहे हैं । भक्ति काल की सगुण धारा की कृष्ण भक्ति शाखा के अन्तगत इन कवियो की कवितायें स्वीकार करत है किन्तु इन कवियो न रीतिकाल की तरह नायिकाओं के भेद–विभेद न करत हुए कृष्ण क प्रति अपने शृगारिक भावो की अभिव्यक्ति की है । रसरासि की भी कुछ रचनायें भक्तिकाल म समाविष्ट होन के लिए निस्सन्देह सामर्थ्य रखती हैं किन्तु सम्पूर्ण साहित्य क आलोचन क पश्चात हम यह कह सकते हैं कि कवि रसराशि को रीतिकाल परम्परा मे रखना ही उपयुक्त होगा ।

समय विभाजन के दृष्टि कोण स यदि समीक्षण किया जाय तो कवि रसरासी रीतिकाल म ही आता है क्योकि स० १७०० से १६०० तक की समस्त रचनाओं को

उत्तर-मध्यकाल की रचनाओ के नाम से सम्बधित किया जाता रहा है । रसरासि भी १७००-१६०० के मध्य के कवि रहे है ।

कवि का आश्रयदाता नरेश राजा प्रतापसिंह वृजनिधि भी रीतिकालीन कवि था ।

तत्कालीन सामाजिक एव सास्कृतिक वातावरण ऐश्वय एव विलासिता से भ पूण था – कवि पर उसका स्वाभाविक प्रभ व था जो उसकी रचनाओ मे प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है ।

महाकवि बिहारी रसरासि से बहुत पहले हो चुके थे और कवि पर बिहारी की रचनाओ का बाह्य रूप से पूण प्रभाव पडा था ।

शृ गारिक-हाव-भावो को व्यक्त करने के लिए कवि ने रीति-शास्त्र की परम्परा का यत्र-तत्र सवत्र निर्वाह किया है ।

कवि रसराशि का आराध्य श्री कृष्ण और राधा नायक नायिका के रूप म प्रस्तुत किये गय हैं ।

इन सभी तथ्यो से यह सिद्ध हो जाता है कि कवि रसरासि रीतिकालीन परम्परा के कवि रहें हैं । कवि के समय शृ गारिक रचनाओं का प्रचार प्रचुर मात्रामें हो रहा था--वह युग हा विलासमय हो गया था । आराध्य को भी भक्तिभावना से पृथक करते हुए नायक नायिका के रूप मे प्रस्तुत करते हुए उनके शृ गारिक भावों का वणन किया जाता रहा है । इस सदभ में विश्वनाथमिश्र ने लिखा है —

भगवान की उपासना के जो क्षेत्र खोले गए उनम से लीला पुरुषोत्तम की उपासना में शृ गार का बहुत अधिक रग चढ गया । कवियो ने जब इस स्वरूप का निरूपण आरम किया तो वे राधा कन्हाई के सुमिरन का बहाना करके घोर से घोर शृ गार यहा तक कि विपरीत आदि के अश्लील वणन भी साहित्य भडार म ठूस ठूस कर भर दिये । उपासना का आवरण पहने जो शृ गारी कविता हिन्दी मे प्रचलित हुई उसका लगाव गीत गोविन्द कार जयदेव से माना जाता है । कहा जाता है कि यही विद्यापति और सूर आदि ब्रजबासी कवियो से होती हुई अपना प्रसार करती रही । पर नायिका भेद की दीवार पर जो चित्रकारी हुई उसका लगाव एक ओर तो प्राकृत की गाथाओ एव अपभ्र श के दूहो से है और दूसरी ओर नाटयशास्त्र के ग्र थो में निरुपित रस तथा तदतगत शृ गार के आलम्बन एव उद्दीपन से । जो बातें इस उद्देश्य से लिखी गई थी कि अभिनय करते समय नट मुद्राओ और वृत्तियो पर उन सिद्धान्तो के आधार पर शासन करे उन्हे आगे चल कर लोगों ने स्वतत्र स्वरूप दिया और हिन्दी मे नायक नायिका के भेद ही अधिकतर उदाहरण प्रस्तुत होने लगे ।"

रसराशि ने भी भक्ति भाव को शृंगार के विलास केन्द्र में लाकर बिठा दिया इसका मुख्य कारण तत्कालीन वातावरण एवं परम्परा भी थी। राजस्थान के राजघराने समृद्ध एवं वैभव सम्पन्न थे जहाँ ऐश्वर्य का मुक्त साम्राज्य विलासिता में डूबा हुआ था। वृजनिधि की कविताओं में रसकेलि की भावनाभिव्यक्ति मुक्त रूप से हुई है —

सन किरो दम्पति लपटि निपट सुखनि सरसाय।
निरखि सखी ललिता सु जय, छवि छकि जकि रह जाय ॥[1]
वृजरारी अँखियान में वस्यौ रहत दिन रात।
प्रीतम प्यारे हैं सखी ! याते सावल गात ॥

अलवर नरेश श्री बख्तावरसिंहजी की राजा का स्वरूप इस प्रकार हैं —

गहिवर वर मोहन लसै तिह मग राधा आय।
जुरि सु दृष्टि हि परस्पर 'बपन' कहत सिर नाय ॥[2]

किशनगढ नरेश भक्तकवि नागरीदास का यह दोहा देखिये —

नित केलि आनन्द रस, बिच वृंदावन बाग।
नागरिया हियमे बसो, स्यामा स्याम सुहाग ॥[3]

इस प्रकार राजस्थान के राजघरानों में भी कृष्ण का शुद्ध रूप अर्थात केवल भगवद स्वरूप इतना प्रिय नहीं था जितना कि दम्पति रूप। राधा कृष्ण की केलि एवं लीलाओं के वर्णन में शृंगार का विलासजन्य रूप उभर कर आया है। ऐसे राजाओं के समय में कवि रसरासि ने अपनी साहित्य साधना की है। इनके सृजन में शृंगार का विलास जन्य स्वरूप का समावेश स्वाभाविक था। साथ ही जन-जीवन की रुचि का दृष्टि कोण भी कवि के समक्ष महत्वपूर्ण प्रश्न रखता रहा है। उस युग में जन जीवन विलासमय जीवन जी रहा था-पुष्टिमार्गीय सखी भाव का प्रचार प्रसार सर्वाधिक रूप से प्रस्तुत था।

इन सभी कारणों से कवि रसराशि की कवितायें सहज रूप से युगानुकूल थी। कवि ने किसी भी प्रबन्ध काव्य की रचना नहीं की है अपितु मुक्तक रचनायें रची हैं। वह युग भी प्रबन्ध रचनाओं का युग नहीं था। मुक्तक रचनाओं की परम्परा सी बंध गई थी। इस परम्परा का कारण संस्कृत साहित्य का प्रभाव था क्योंकि उस

---

1 सुहाग रैनि
2 श्री कृष्ण लीला
३ जुगल रस माधुरी

समय संस्कृत साहित्य मे मुक्तक रचनाओ का बहुत सृजन हो चुका था साथ ही उन्हे जन जीवन एव राजघरानो की ओर से सम्मान भी मिला था। कवि रसरासि ने मुक्तक पदो, कवित्त, सवया, दोहो आदि की रचना कर उन्हे शतक, पचीसी आदि मे निबद्ध कर कृतियो का स्वरूप दे दिया। उस समय मे ऐसी ही प्रथा थी-जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण इन कृतियो के माध्यम से किया जा सकता है -नाथ कवित्त, अरिल्ल पचीसी, प्रताप पचीसी प्रताप सिगार हजारी, प्रीति पचीसी, बिहारी सतसई, रमक-जमक बत्तीसी, राम सुजस पचीसी, शकर पच्चीसी सग्राम सार, स्वर सागर, हित चोरासी शृ गार के कवित्त आदि। रीति युग मे कवि केशव के अतिरिक्त अन्य ऐसा कोई कवि नही जिसने समग्र प्रबन्ध काव्य की रचना की हो अत कवि रसराशि की मुक्तक रचनायें अपने युग क अनुकूल थी।

भक्ति विषयक भावना —(श्री कृष्ण का स्वरूप)

श्री कृष्ण का चरित्राकन भक्ति कालीन कवियो ने माधुर्य भाव से अ कित किया था। आराध्य की बाल लीलायें एव रासलीलायें भावनात्मक आधार पर चित्रित की गई थी। गोपी भाव एव सखी भाव मे भी माधुर्य की ही अभिव्यजना थी। श्री मद्वल्लभाचार्य द्वारा प्रसारित सखी भाव माधुर्य भाव से पूर्णत ओत प्रोत रहा—तथा अष्ट छाप के कवियो ने इस परम्परा का खरा पालन किया किन्तु रीति कालीन कवियो के समय यही माधुर्य सखी भाव से हटकर पूर्ण शृ गार का रूप लेकर विकृत हो गया। भक्ति क नाम पर प्रेम धारा प्रवाह फूट चला और इस प्रवाह मे अश्लीलता का समावेश हो गया। डा० अग्रवाल ने भी लिखा है—

'भक्ति की तल्लीनता मे इन कवियो को उस युगल केलि वर्णन म किसी प्रकार की अश्लीलता नही दीख पडी, परन्तु इस भाव के लोप होते ही श्री कृष्ण राधा के रूप वर्णन मे स्थूल एव मांसल कायिक चेष्टाओ का प्रभाव पड गया। उनके अनुभावो रूप-चित्रणों और सौंदर्यांकन में यही मांसलता जोर पकडने लगी। भक्ति काल के आलम्बन श्री कृष्ण रीतिकाल मे नायक' कृष्ण हो गये। वे अपना समस्त भक्तिपरक रूप भूल गये और नायक रूप म विभिन्न नायिकाओ की उदभावना के प्रेरक बने। ऐसी नायिकाओ से घिरे श्री कृष्ण का वैभव परक वर्णन हठी आदि अनेक कवियो ने किया। स्पष्ट रूप स इन कवियो पर दरबारी सस्कृति और वाता वरण का प्रभाव पडा। श्री कृष्ण का रसिकता देखकर वे ही शृ गार के अधिष्ठाता बनाये गये।

रीतिकाल म कवियो ने श्री कृष्ण एव गोपियो के प्रेम को गली से लेकर कुजो तक फैला दिया। श्री कृष्ण के रसात्मक वर्णन मे शृ गार का स्वर बोलन

रंगा मौर हिन्दी के कवियो ने विलासिता के साथ लीला पुरुष को साधारण प्रेमी पुरुष की तरह लाकर खडा कर दिया। चिन्तामणि के कृष्ण का स्वरूप देखिये —

वैस की उठान ठौन रूप की अनूप कान्ह,
अग अग ओरे कछू ओप उलहति है।
'चिन्तामणि' चचला विलास को रसाल मन,
मदन पै मद ओरे आभा उमहति है।
कुन्दन की वेली सो नवेली अनवेली बाल,
केतिक गरब की सौ गौरता गहति है।
उझकि झरोखें तुम्हे चाहिबे को चन्द्रमुखी,
धोस हूँ मे चन्द्रिका पसारति रहति है।।

जगद विनोद छन्द मे श्री कृष्ण को देखिये —

ऐसी मति होति अब ऐसो करो आली
वनमाली के सिंगार मे सिंगार बोई करिये।
कहै पद्माकर समाज तजि काज तजि
लाज को जहाज तजि डारबोई करिये।
घरी घरी पल पल छिन छिन रैन दिन
नैनन की आरती उतारबोई करिये।
इन्दु ते अधिक अरविन्द ते अधिक
ऐसो आनन्द गोविन्द को निहारबोई करियै।।

कवि रसखान को भी श्री कृष्ण कही नही मिला अन्तत कहाँ मिला—

ब्रह्म मे ढूढयो पुरानन गानन, वदरिचा सुनी चौगुनी चायन।
देख्यो सुन्यो कबहू न कहू वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
हेरत हेरत हारि पर्यो, रसखान वतायो न लोग लुगायन।
देख्यो दुरो वह कुज कुटीर मे वठो पलोटत राधिका पायन।।

कवि दास ने कहा है —

पीतम पाग से वारि रखो, सुघराई जनायो प्रिया अपनी है।
प्यारी कपाल के चित्र वनावत प्यारे विचित्रता चारु सनी है।
'दास' दुहु को सराहिवो, देखि लह्यो सुख लूटि घनी है।
वे कहें भामते, कसे वने, वे कहे मनभावती कैसी वनी है।।

रीतिकालीन कवियो के साहित्य मे रूप की छवि मादकता लिए उतर रही थी। श्री कृष्ण का सौन्दर्य एव रूप सुन्दर युवक की तरह उद्दाम उमगों के साथ

काव्य मे फलाव भर रहा था। 'नवरस-तरंग' मे श्री कृष्ण का सौदर्य स्वरूप इस प्रकार व्यक्त किया गया है —

सिर मोर पखा मुरली करल हगि दै गयो भोरहि भावरी सी।
कहि 'तोष' तहि जब ही त चढो 'अ ग-अ ग अनग की दावरीसी।
नट साल सी सालि रही न कढ चढि आवति है तन ताँवरिसी।
अ खिया मे समाइ रही सजनी, वह मोहिनी मूरति सावरी सी।।

कवि रसराशि का आराध्य श्री कृष्ण भी भक्ति कालीन श्री कृष्ण न रहकर रीतिकालीन नायक कृष्ण था। कवि का कृष्ण नित नये शृ गार कर गोपियो को रिझाने के लिए गलियो स गुजरता हुआ छड खानी करता पाया गया है। छल छबीला रसिक शिरोमणि कृष्ण राधा क प्रेम को केलि कु जो म राम के अक्षरो म लिखने वाला है। गोप वनितायें नायिकाओ की तरह कृष्ण से अभिसार करने क लिए कामना शील हैं— व केवल कृष्ण क सौन्य के प्रति समर्पित है। श्री कृष्ण स कु जो मे केलि करना आमन्त्रण देना एका त मे बुलाना, सौत सी डाह रखना मान कर बठना सुरत म विविध चष्टायें प्राप्ति करना उनकी सहज प्रवृत्तियां है। रसराशि का कृष्ण विलासी कृष्ण के रुप मे उभर कर आया है–जो एक धूत प्रेमी है, एक साथ हजारा नायिकाओ को रिझान की कला म अत्यन्त निपुण है, जिसे अपने भक्तों की चि ता नही है अपितु गोपिकाओ क मानस मे स्वय को आकर्षित करने की उत्कट लालसा है। रसराशि का कृष्ण सूर व न द का कृष्ण नही है अपितु चिन्तामणि, मति राम एव पद्माकर का कृष्ण है। रसराशि के कृष्ण का देखकर गोपिया कहती हैं—

घु घराली लटीन के फदन सो
सुरझे मन को उरझाय गयो।
रसराशि करारि कचा वन सो
दृग चोर चितै मुसकाय गयो।
तब ते सुधि ने सबहु नेक कु वर
लाय वियोग की लाय गयो।
बनते बनिके ईत आय गयो
तकि के छवि छाक छकाय गयो।

रसराशि का कृष्ण राधे के सग बठकर उसकी देह के सौंदय को निरखन म तल्लीन है —

स्यामा अरु स्याम बनि बठे उसीर धाम
अरस-परस दोऊ चदन चटावही ।
बूटन लगे हैं जल जन चहुँ ओर फूहो
भीजे रसराशि जीके वमन सुहाव ही ।
सीतल सुगध मद मारुत छहरि रह्यो
सारग राग सखी सुघर सुनावही ।
परसत अग अग पुलकि पसीजि भीगी
रीझि रीझि दोउ मद मद मुसक्यावही ॥

और भी —

याही ते रहत यहा नन्द को कुवर सदा ।
गोपी गोप गायन मे करत विलास हास ।
रसराशि प्रभु स्यामा स्याम का निवास ।
जहा नाचन नटी लो मुक्ति प्यारी ओर पास ।।

रसराशि न रातिकालीन परम्परा मे जीते हुए चुम्बन एव आलिगन तक की चर्चायें की है किन्तु फिर भी अपनी लेखनी पर सयम रखने म किसी सीमा तक सफल हुए हैं ।

भाषा—

भक्ति काल म साहित्य की अभिव्यक्ति क लिए ब्रजभाषा एव अवधी भाषा को अपनाया गया । ब्रज भाषा का प्रयोग साहित्य के लिए बहुत समय स होता आ रहा है । ब्रज भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृत से हुई है । इस प्रकार जिस कुल की अजी हैं—वह भाषा य काव्यभाषा का कुल है । शौरसेनी का प्रचलन सम्पूर्ण मध्य भारत में था । राजस्थान म भी इसी को महत्व दिया गया था—अत मध्य-भारत से लेकर राजस्थान तक बृज भाषा का साम्राज्य जमता गया और इन स्थानो म काव्य की अभिव्यक्ति के लिए बृजभाषा को सहज रूप स अपनाया गया । यद्यपि राजस्थान मे बृजभाषा के साथ स्थानीय बोलिया उर्दू फारसी एव पजाबी का भी उदय हुआ । ब्रजभाषा पर इन सभी भाषाओ एव उप भाषाओ का पूर्ण रूप स प्रभाव पड़ा । काव्य निर्णय म लिखा गया है —

बृज भाषा भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोय ।
मिलै सस्कृत पारस्यौ पै अति प्रकट जु होय ॥
बृज मागधी मिलै अमर नाग यवन भाषानि ।
सहज पारसी हू मिलै, षट विधि कहत बखानि ॥

काव्य निर्णय'

रीतिकाल के अनेक आचार्यों ने षडभाषा का सकेत दिया है। भिखारीदास ने भी षडभाषा की चर्चा की है। पृथ्वीराज रासा मे भी षड भाषा सम्बंधित उक्ति प्राप्त होती है किन्तु फिर भी हिन्दी के प्रमुख कवियो ने वृजभाषा के माधुर्य का ही महत्व दिया है। कवि दास ने लिखा है —

सूर केसव, मडन, बिहारी, कालिदास, ब्रह्म
चितामणि, मतिराम, भूषण सुजानिए।
लीलाधर सेनापति, निपट नेवाज, निधि,
नीलकठ मिश्र सुखदेव, देव मानिए।
आलम, रहीम रसखान, सुदरादिक,
अनेकन सुमति भए कहा लो बखानिए।
वृज भाषा हेत वृजवास ही न अनुमानो
ऐसे ऐसे कविन की वानी हू सो जानियै।

—दास"

काव्य निर्णय म कहा गया है कि हिन्दी के श्रेष्ठ कवि दो हुए—तुलसी दास और गग कवि—इन दोनो कवियो की कृतियों म अनेक भाषाओ के शब्द मिलते हैं —

तुलसी गग दुवौ भए सुकविन के सरदार।
इनकी काव्यन म मिली भाषा विविध प्रकार॥

—काव्य निर्णय-१-१७

वृजभाषा मे ललक एव माधुर्य है—जो स्वत ही रसिकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। वृजभाषा सीखने के लिए वृजभूमि म रहना आवश्यक नहीं है —

वृजभाषा हेतु वृजवास ही न अनुमानो
एते एते कविन की वानी हू ते जानिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवियो ने वृज भाषा को विशिष्ट स्थान दिया है—साथ ही वृजभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओ को भी स्थान मिला है।

रसराशि कवि की भी अपनी रचनायें वृजभाषा मे रची गई हैं। किन्तु राजस्थानी, पजाबी, फारसी, एव उर्दु के बहुत से शब्द समाविष्ट किये गये हैं मुक्त रूप से भी इन अन्य भाषाओ मे भी रचना स्पष्ट रूप से की गई है। सार रूप म हम इस प्रकार कह सकते हैं कि रसराशि कवि ने अपनी रचनाओ मे तीन भाषाओ को स्थान दिया है—वृजभाषा, रेखता और राजस्थानी। अपने इष्ट की लीलाओ से सम्बन्धित पदो की रचना वृजभाषा म अधिकाश रूप से लिखे गये हैं किन्तु इन पदो की रचना

राजस्थानी एव रेखता म भी की गई है। रसरसि जयपुर मे राजा प्रतापसिंह क आश्रित कवि थे-म्रत राजस्थानी भाषा का प्रभाव पडना स्वाभाविक था। वृजभाषा का प्रचलन उस समय सम्पूर्ण उत्तरी भारत मे तीव्र गति पर था-म्रत यों कहना चाहिये कि हिन्दी रचना के लिए वृज भाषा स्वीकृत थी। श्रृगार वणन के लिए वृजभाषा एव राजस्थानी दोनो ही भाषाओ को महत्व दिया गया है। राजा प्रताप सिंह के शौय एव सौन्य वणन करने के लिए रेखता को विशप महत्व दिया गया है। रेखता मे उदु, फारसी पजाबी और हिन्दी का सम्मिश्रण होता है। रसराशि के रेखता का एक नमूना प्रस्तुत है —

आवडे या साडी दरदी वे दरदो।
आग्या तुसि मिहर हरक हरज हरक रद करदी।
मन मोहन रसरासि कहा व दा दोस्ती कर दरस।
छुपावदा आज जवे पर चलावदा एतीवया मुठमरदी।।

राजस्थानी का स्वरूप देखिये —

सदा सिव बनडो बण्यो छ खडो।
सेस नाग रो सेहरो सोहै सीस जटा रा जूडो।
गगा जल रो लटकण तुररो सिर सोभा चादुडो।
गौर ल रे अग मोहयो सूहे रग सालूडो।
चा ध्यानी लरत नरो कठो वाको बादूडा
हथलेवो जुडता ही होसी अचल दीवटा चूडो।
रुडी रगरेली नित रहसी रिप नारद नहिं कूडो।
या सरि को राधा रो वर रसरासि कुवर बानूडो।

वृज भाषा का मधुय इस प्रकार है —

आज अति कियो मानिनी मान।
बार बार विनतो करि हारे रसिक शिरोमणि स्याम सुजान।
ताहो ममं सिंह इव बोल्या ताको सबद सु यों दे कान।
उठे कोप करि कहन लगया देखो यह कैसो बलवान।
प्यारी सुनत साच मे भूली भूलि गई सब अपनो मान।
हाय दई हो कहा करो अब लखि परयो पियारा प्रान।
उठि अकुलाय अक भरि लीन्ह उनहू कियो अधर मधु पान।
लपटि रहे रसरासि रसमसे राधा मोहन नेह निधाना।।

यद्यपि रसराशि का तीनो भाषाओ पर समान अधिकार था किन्तु कवि की

भाषा परिष्कृत एवं प्रौढ़ प्रांजल नहीं कही जा सकती है। कवि रसराशि राजा प्रताप सिंह के समय अपने आप में एक समर्थ कवि के रूप में हुआ था किन्तु प्रतापसिंह के समय अथवा अन्य परवर्ती कवियों द्वारा इस कवि का कहीं भी उल्लेख न किया जाना उपेक्षित भावों की प्रवृत्ति का सूचक है।

कविवर भट्ट श्री हरि मल्ल ने अपने जय नगर पंच रंग काव्य में राजा प्रतापसिंह का वर्णन करते हुए उसे कवि कुल गुरु बताया है किन्तु रसराशि कवि का उल्लेख नहीं किया जबकि इस काव्य की रचना माधवसिंह जी के समय हुई है।[1] इसी प्रकार डा० प्रभाकर शर्मा ने भी अपने शोध-प्रबन्ध जयपुर की संस्कृत को देन में राजा प्रतापसिंह को ब्रज भाषा का श्रेष्ठ कवि तथा कवि भक्त बताते हुए समकालीन हिन्दी कवियों के संदर्भ में संकेत दिया है किन्तु रसराशि का कहीं भी उल्लेख नहीं हो पाया है। राजस्थान का साहित्यिक इतिहास लिखने वाले भी इस कवि के प्रति मौन रहना ही क्यों उपयुक्त समझते रहे जबकि संत साहित्य के साधारण से साधारण कवि पर भी महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ लिख दी गई है।

इन सभी की उपेक्षा का कारण कवि की कृतियों का सामने न आना ही रहा होगा अन्यथा इतनी बड़ी भूल का होना स्वाभाविक नहीं है।

इस संग्रह में जो कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—वे सभी हिन्दी प्रचार परिषद् राजस्थान जयपुर के कार्यालय में सुरक्षित हैं-इसके अतिरिक्त इस कवि की अन्य रचनायें उपलब्ध होने की आशा है-जिसके लिए संस्थान शास्त्रा ■ वेषण-रत है।

---

1 चतुरिन्द्रहृति गिनि हाय नेन्तु
प्रतापसिंह कविमौलिरत्नम।
श्री तामव्रतस्याभिमान हारो
चतुर्द्विवर्गाणि बुभोज राज्यम ।

ज प ना ४।४

सृजन के स्वर

सृजन के स्वर

सृजन साहित्यकार की आत्माभिव्यक्ति हैं, इसी अभिव्यक्ति के माध्यम से वह अपने आप को व्यक्त करता है। साहित्य वही सफल है—जिसमे साहित्यकार की लेखिनी सहज एव सत्य रूप से अवतरित हुई है—क्योंकि सहजता सत्यता एव स्पष्टता तभी आ सकती है जबकि साहित्यकार स्पष्ट एव स्वतत्र रूप से अपने विचारो की अभिव्यक्ति कर सके।

साहित्यकार अपने वैयक्तिक अनुभूतिया के कारण ही साहित्य का सृजन कर पाता है, वह समाज म रहता है और समाज की सम एव विषम परिस्थितियो मे विभिन्न अनुभूतियो से साक्षात्कार करता है उन अनुभूत वृत्तियो को यदि वह साहित्य म उतारता है तो वह साहित्य सफल एव सहृदया के लिए आनन्ददायक होता है। यदि साहित्यकार अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो को स्पष्ट रूप से साहित्य में नहीं उतार पाता है तो उस साहित्य मे स्वाभाविकता नहीं आ सकती है। अपितु कृत्रिमता रहेगी और वह कृत्रिमता उस साहित्य को निर्जीव बना देती है। महाकवि बाल्मीकि न क्रौञ्च की पीडा को अनुभूत किया तो करुण रस स आप्लावित होकर महाकाव्य की सृष्टि की, और वह महाकाव्य सामाजिका के लिए सुन्दर कृति सिद्ध हुई, वैयक्तिक अनुभूतियो के कारण अमरता को प्राप्त हो गई।

साहित्यकार सामाजिक प्राणी है वह समाज म जीता है पलता है समाज की विभिन्न अनुभूतिया को ग्रहण करता है। उसन जीवन में जो कुछ जिया उस वह साहित्य म नही उतार सकता है तो वह सच्चा साहित्यकार नही है। साहित्यकार के लिए वैयक्तिक अनुभूतिया ही प्रेरणा के स्रोत होती हैं वह उन्हीं वैयक्तिक अनुभूतियों के माध्यम से साहित्य का निर्माण करता है।

कल्पना के माध्यम से लिखा जाने वाला साहित्य स्थायित्व को प्राप्त नहीं कर सकता है—उसमें रागात्मकता नहीं आ सकती है, वह सुन्दर कृति नहीं कही जा सकती है। काल्पनिक साहित्य शब्दों की गठरी हो सकती है, बुद्धि के लिए व्यायाम सिद्ध हो सकता है न कि सामाजिका के हृदय के लिए आनन्द की वस्तु। यह भी है कि साहित्यकार मानवीय भावनाओ और इच्छाओं की अवहेलना करता है किन्तु इ—

सभी इच्छाओं पर साहित्यकार की रुचि का प्रभाव होता है—इन इच्छाओं पर साहित्यकार के व्यक्ति की छाप होती है।

साहित्यकार का व्यक्तित्व विशद उदार एव महान् होना चाहिए। जिस दृष्टि से वह अपने जीवन का विकास करता है अथवा देखता है—उसकी पूर्ण छाप उसके साहित्य पर बिना पडे नही रहती। आज तक वे ही कृतिया सफल हो सकी है जिनम साहित्यकार का चरित्र एव व्यक्तित्व पूर्ण रूप से कृति म उभर कर आया है। साहित्य के माध्यम स हम साहित्यकार को पढ सकते हैं, प्राचीन सकल कृतिया क सफल अध्ययन और मनन के पश्चात् हम उनके रचयिताओ के सम्बन्ध म तथा उनके व्यक्तित्व के सदभ म बहुत सी जानकारी प्राप्त कर सके हैं। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्यकार का जिस प्रकार का व्यक्तित्व होगा अथवा रुचि होगी—उसी प्रकार के साहित्य का निर्माण होगा।

गीति काव्य के लिए वयक्तिकता आवश्यक है कविता बिना अनुभूति के प्रगट ही नही हो सकती है—क्योकि कविता मूल म जीवन की आलोचना है अनुभूतियो के लय म विचरन वाला एव उन्माद की वृत्ति है। साहित्यकार की वयक्तिक भावनाए ही साहित्य म रागात्मक एव स्वाभाविकता का उत्पन्न करन म सहायक सिद्ध होती है अत हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि साहित्य साहित्यकार की आत्माभिव्यक्ति होती है।

साहित्य और समाज एक दूसर के पूरक हैं समाज क एक दूसर क पूरक है, समाज के बिना साहित्य का प्रसव सम्भव नही और साहित्य के बिना समाज म चेतना नही। साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। साहित्यकार सामाजिक प्राणी है उसके व्यक्तित्व का निर्माण उसकी अनुभूतिया और कल्पना सभी सामाजिक देन है। व्यक्ति का विकास भी समाज स ही सम्भव है और समाज के विकास का आधार—शिला साहित्य ही है। मनुष्य की सामाजिक अनुभूति परिवर्तित समाज के साथ—साथ चलती है और मनुष्य रूढि ग्रस्त परम्पराओ का विरोध करता हुआ एक नया युगीन वातावरण प्रस्तुत करता है।

साहित्यकार समाज का एक मुख्य अग है—वह युग द्रष्टा एव युगसृजक है वह समाज को मोड दन वाला मुख्य व्यक्ति है। वह अपने विचारो के माध्यम स समाज की विभिन्न परिस्थितियो को परिवर्तित कर सकता है, यद्यपि साहित्यकार के व्यक्तित्व का निर्माण और उसकी अनुभूति तथा कल्पना भी एक सामाजिक देन है तो हमे यह कहना होगा कि साहित्य और समाज का सम्बन्ध सदियो स चला आ रहा है।

समाज में चली आ रही मान्यताओं और व्यवस्थाओं को वह ज्यों की त्यों स्वीकार करे अथवा उन सामाजिक त्रुटियों का भान करता हुआ उनमें सुधारवादी दृष्टिकोण रक्खे अथवा वह एक क्रान्तिदृष्टा तथा परिवर्तनवादी बनकर कार्य करें। कुछ साहित्यकार प्राचीन मान्यताओं को स्वीकार कर उन्हें मान्यता देते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं जो प्राचीन मान्यताओं का विरोध करते हुए उनमें सुधार का दृष्टिकोण देते हैं।

साहित्यकार का कल्पना के माध्यम से भावों का चित्रण कर सामाजिकों के हृदय को बहलाना ही नहीं है—अपितु उनका प्रधान लक्ष्य दिशा बोध करना है, युग बोध तो मानव समय के साथ स्वयमेव ग्रहण करता ही है। बंकिमचन्द्र ने लिखा भी है —

"कवि संसार के शिक्षक हैं किन्तु वे नीति की शिक्षा नहीं देते, वे सौन्दर्य की चरम सृष्टि करके संसार की चित्त शुद्धि करते हैं यही सौन्दर्य साधन सृष्टि काव्य का मुख्य उद्देश्य है।'

अतः हम यह निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि कवि का मुख्य उद्देश्य सौन्दर्य सृष्टि का सृजन करना है। सत्रहवी शताब्दी के प्रारम्भ में जन—जीवन का वातावरण परिवर्तित हुआ। विदेशी शासक भारत को अपना देश समझने लगे। इतिहास का मध्यकाल हिन्दू—मुस्लिम जाति के लिए सामञ्जस्य बिठलाने वाला सिद्ध हुआ। सामरिक—संघर्षों के अनन्त अध्यायों की समाप्ति के पश्चात विश्रान्ति—युग का श्री गणेश हुआ। छोटे—छोटे राजदरबारों में भी शृंगार का उद्दीपन दिखाई देने लगा। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है —

जिस समय बिहारी का अविर्भाव हुआ उस समय राजबाटों की क्या स्थिति था यह तो उनके उस प्रसिद्ध दोहे "अली कली ही सौ बिंध्यो" से ही स्पष्ट लक्षित है। परिस्थितियों का पंचामृत पीकर जो लोकरुचि हुई उसमें सतसैया के अत्यधिक प्रचार में सहायता पहुँचाई। सतसैया के सृजन से प्रभावित होकर अनेक स्वरों ने जन्म लिए रीतिकालीन परम्परा में जीने वाले अनेक साहित्यकारों ने अपने आराध्य नन्द—नन्दन को मधुवन की कुंज—गलियों में विलासी के रूप में प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया। शृंगार की भिन्न—भिन्न-परिस्थितियों का वर्णन कलात्मकता के साथ किया जाने लगा। प्रेम और सौन्दर्य का उद्दाम चित्रण प्रस्तुत किया जाने लगा। ऋतु-वर्णन नायक-नायिका भेद नायक—नायिका-नख शिख वर्णन आदि किये जाने लगे। शृंगार की वासनात्मक सूक्ष्मतम रसों का चित्रण सजीवता से होने लगा। ऐसी ही स्थितियों में महाकवि रसरासि का प्रादुर्भाव हुआ। महाकवि रसराशि ने जो सृजन

क्रिया—उस सृजन के स्वर कवि के आत्मवक्तव्य को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सक्षम है।

कवि रसरासि राज्याश्रित थे—अतः आवश्यक था राज्य—परम्परा के अनुसार अपनी अभिव्यक्ति को स्वरूप दें।

कवि का आश्रयदाता ब्रजनिधि स्वयं एक श्रेष्ठ कवि था अतः अपने आश्रयदाता का पूर्ण प्रभाव कवि पर लक्षित होता है।

सम-सामयिक लोकरुचि की भावनाओं का व्यक्तिकरण कवि के स्वर में सन्निहित है।

अपने आश्रयदाता के आराध्य नन्दनन्दन की उद्दाम लीलाओं का चित्रण करना ही कवि का सहज स्वर है।

रीतिकालीन-परम्पराओं से कवि का स्वर अनिबद्धित है।

प्रणय एवं शृंगार की विभिन्न मानसिक—संवेगों का विश्लेषण सृजन के स्वर में समाहृत है।

कवि का मूल चिन्तन भक्तिमूलक है किन्तु अभिव्यक्तिकरण रीतिकालीन दृष्टिकोण से सम्वर्द्धित है।

कवि के स्वरों ने बृजभाषा की उस शैली को स्वीकार किया है जिसमें मूल उपादान को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है।

कवि रसरासि ने अपने जीवन में जिन अनुभूतियों को स्वर दिये उन सभी स्वरों में विभिन्नता है अर्थात विषयानुसार वर्गीकरण किया जावे तो शृंगार वर्णन भ्रमर-गीत, संगीत शास्त्रीय ग्रंथों की रचना, तात्विक एवं अनासक्ति पूर्ण लक्षणों की विवेचना आदि भागों में विभक्त किया जा सकता है। अन्यान्य विषयों की रचनायें कवि के पांडित्य का सूचक हैं। मूलतः शृंगार एवं भक्ति प्रधान रचनाओं का ही हमने विशद विवेचन प्रस्तुत किया है।

सृजन के स्वर' शीर्षक से इस द्वितीय-सभाग में हम कवि की कुछ प्रमुख रचनाओं को उपलब्ध-क्रमानुसार प्रस्तुत कर रहे हैं—जिन के माध्यम से पाठक गण कवि के स्वर तथा उसकी अनुभूतियों की मार्मिकता का स्पर्श कर सकें। कवि स्वयं रसिक है रसिकों की सभा ही उनका निवास है, रसिक शिरोमणि ही उसका मूल उपादान है। रसिक-गण उन रसपूर्ण स्वरों का रसास्वादन कर सकें—अतः उनकी प्रमुख रचनाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है—

१ रसिक पचीसी ।
२ रसरासि–कवित्त–शतक ।
३ पद ।
४ दोहा मुक्त–मालिका ।

प्रारम्भिक तीनो रचनायें कवि के पूर्ण स्वर हैं किन्तु अंतिम रचना कवि का सहज स्वर नहीं कहा जा सकता है अपितु समसामयिक वातावरण के अनुसार लोक–रुचि का प्रतिनिधित्व करती है। यही लोक–रुचि कवि की आत्म रुचि के साथ ढलकर सकलन की प्रवृत्ति में ढलगई। 'मुक्त–मालिका मे युगीन एवं सशक्त स्वरो का आकलन है।

'सृजन के स्वर' का समीक्षण कर लेने के पश्चात पाठक–गण कवि के प्रति पूर्ण आश्वस्त होता हुआ उसकी अनुभूतियो का स्पर्श करने में स्वत सक्षम हो सकेगा।

रसिक-पचीसी

(१)

परम पवित्र तुम मित्र हो हमारे उधौ।
श्रतर विथा की कथा मेरी सुनि लीजियै
वृज की वे वारा जपे मेरी जपमाला
बढी विरह की ज्वाला ता मे तन मन छीजियै
मेरा विसवास मेरी श्रास रसरासि मेरे
मिलिवे की प्यास जानि समाधान कीजियै।
प्रीति मा प्रतीति सो लिखि है रसरीतिनसा
पत्रिका हमारी प्रान प्यारिन का दीजियै।

(२)

मोहि तुम दीना तन मन धन प्रान जसे
तसें ही समाधि साधि ध्यान धरि ध्यावौगी।
श्रलख श्ररूप घट घट को निवासी
मोहि जानि श्रविनासी जोग जुगति जगाश्रोगी।
प्रानायाम श्रासन श्रसन ध्यान धारना त
ब्रह्म की प्रकास रसरासि दरसावौगी।
श्रैसे चित लावौगी सुख मे समावौगी
श्रन्त मुक्ति पद पावौगी हमारे ढिग श्रावौगी।।

(३)

कौन की लिखी है पाती कौन यै पगई
तुम कौन हो? कहा त श्राये? काके मिजमान हो?
ताकी पहिचानि रसरासि वा निरजन सो
कौन सौम तान कहा भूले श्रवसान हो?

कौन साधे पौन अरु मौन धरि बैठे कौन
काके नैन थोन भये अजहूँ अजान हो ?
अब हम जानी तुम हो दिवान कूबरी के
कपछ करि आये हो प मछर समान हो।

(४)

आपनें करन जिन कीने हैं करन फूल
कौन भांति कहते वे मुद्रा कान धारे की।
आप ही अतर चोवा चदन लगायौ जिन
क्यो करि कहैं वे क्या कथा कडवारे की।
वै तो अग-अग लागें पागे रसरासि
रग भसम कहानी कढी वाणी मुखयारे की।
बडे धूत, दूत काहू करी करतूति यह
नाही वहतूति या हमारे प्रान प्यारे की।।

(५)

हाथ जोरे हाजर हजूर मे रहत जा की
मरजी को राखे बात भाखे इक रगी जू।
वाही को हुकम पाय करत अन्याय-न्याय
भयौ रसरासि वाकी प्रीति को प्रसगी जू
याही ते वियोग माहि जोग राज-रोग हमे।
सोग दे पगयौ आय सग अरधगी जू।
अब हम जानी लिखि वाके मन मानी
उहा साहिब है कूबरी मुसाहिब त्रिभगी जू।

(६)

आयौं आयौ भयौ उधौं आय व्रजमडल मे
राग मे कुराग जोग कौ गीत गायौ है।
सेली सीगी माला मृगछाला झोली कूडा
डडा मूदरी भसम मुद्रा स्वाग लै दिखायौ है।
सजम नियम ध्यान धारना द्रढावत है
ब्रह्म को प्रकास रसरासि दरसायौ है।

कूवरी पै पढि आयो पैंज करि काढ आयो
रथ चढि आयो अनरथ गढि ल्यायो है।

(७)

भलो भई सुधि आई हमारी कहाई जू को,
भलो दूत आयो सबहिन मार्यो भूरि भाग।
अब ये सदस मे करन उपदेश लागे
जाने परे कोई लसे भले बनि आये काग।
रूप के उपासी रसरासि बृजवासी
कसे होत वे उदासी लगी जिनकी निसग लाग।
देषो री अनीत बात आधरे या उद्धव की
लगावत जोग बेलि प्रेम को कटाय बाग ॥

(८)

रह्यौ प्रेम नेम रह्यौ बूझि वो कुसल खेम
रह्यौ चित चाड—लाड गुन गरवाई का।
रह्यौ मुख बोल रह्यौ गयो सब तोल
कढि आयो अब मोल लाज लागी सुघराई का।
सरवस चाख्यो ता पै गीता ज्ञान भाख्यो
रसरासि ने कहू न राख्यो रग रसिकाई को।
कारे काह डारे है अथाव के नवारे
देखो बूडे वहे जात तापै आग उतराई का।

(९)

दस ही दिना को भयो नयो जस धारि जिन
मारि डारी नारी अ सौ निठुर निहारयो है।
बछा मार्यो बका मर्यो अजगर हू को मार्यो
पर हू को मारि हमहू को मारि डार्यो है।
मनी माहि भूल्यो फूल्यो फल्यो रसरासि
इहा एसो कृत की हा सब ही विसार्यो है।
मामा मारिबे को पाप प्रगट उतारिबे को
कूउरी त्रिवेणी ता मे तन को पसार्यो है।

(१०)

दासी दास दोऊ महल माझ भोर साझ
रहने रमडि सेवा सोज सेज त्यारी में।
दौरे—दौरे टहल टकोरे भव झोरे
अ ग, स ग—सग जाते रसरासि बागवारीमे।
पखी पीकदानी पान दानी की निसानी
लिए पाछे—पाछे आवते गरर खोई गारी मे।
बस मरि गयौ जा मे सब ही सुधरि गयौ
जो पै वह जीवतो तौ घात होते यारी मे॥

(११)

जाकी कोखि जायौ ता को कैद करवाय आयौ
धाय करि मारी नारि निठुर मुरारि है।
और नृजनारी तिन्हे मिलि—मिलि मारी
फेरि अमिल ह वा मारी जो मिलैगी ताहि मारि है।
एरी सुनिचेरीलेरी तेरो सी कहत हैं री
तू ही रसरासि आखें अ सुवन ढारि हैं।
परी यै पकारि है तू फेरि न सभारि है री
नारि मारिबे को तौ कन्हैया तरवारि हैं।

(१२)

पति हू ते पिता हू ते मुसि मुसि-ल्याय-ल्याय
सवम हमारौ हम सौंप्यो तन-मन प्रान।
कल हूँ की सपत्ति समेटि हम भेट भई
लोभ सों लपेटि लई करि के सुजस गान।
अब रसरासि उधो ले के वह लौटिगयो
कहै बिन रह कैसे सुन तुम दे के कान।
भयौ हौ सगाती सोतौ निकस्यो मेवाती
देखो थाती दाबि छाती तरै पाती मे पगयौ ज्ञान॥

(१३)

लोचन हमारे सदा रहत उघारे, कहो,
कैसे रहैं मूदे, जिन रूप-रस चाख्यौ है।

मन हू हमारो मान काहू सो करन वारो
कैसे मन माने जोग, भोग भरि राख्यो है।
काहू हू हमारे रसरासि रीझ तान सो
कौन सुने ज्ञान, इन गान अभिलाख्यो है।
रसिक-सभा को तेरे कसक न लागी
या ते खीर माहि मूसर सो मुक्ति पद नाख्यो है।

(१४)

उधो! कहि,को है? जदु नाथ द्वारका को नाथ
कौन वसुदेव कौन पूत सुखदाई है?
कौन है निरजन अलप अविनासी,
कौन ब्रह्म हू कहावै कौनजा की जोति छाई है?
इनसो हमरी कहो कासो पहिचानि, जानि
या ते रसरासि बाते मन मैं न भाई है।
प्रीतम हमारो मोर मुकट लकुट वारो
नद को दुलारो स्याम सुदर कन्हाई है।

(१५)

खरक मे खोरिन मे खेलिवे की गैरन मे
मोर को मुकुट दिये मुरली बजाये है।
चटक-मटक भर्यो हाथ मे लकुट लै के
पीत पट कटि बाधे लटक सोभा ये है।
जमना के तट वसीवट के निकट, रसरासि
नटवर वेप बछरा चरावै है।
चित्त के चुरावै मुरि-मुरि मुसकाव, देखो
साथ-साथ धावै है के हाथ नहीं आव है।

(१६)

मकरी मसीद करि गठरी ठगाय ल्यायो
ठगिवे को आयो काम मान सा कहत है।
तोल-मोल विमन हू करत अपावन
सो ऐसे रसरासि जपा बंग के लहत है।

वृज की ग्रहारी हम पो तिको परखि
जाने गु ज हार सो हियो हरस्यौ रहत है।
जोग के जवाहर को गाहत कन कोऊ
इहा ग्रनाहक उधो गरं डार्यो ही चहत है।

(१७)

बसन मलीन बन वन तन छीन डोले
मोन ही सो बोले, वेनी जटा पद पायी है।
ग्राठो जाम जागी रहे ध्यान ही सो लागी
देखो भूख प्यासभागी मन सून्य मे समायौ है।
विरह दवाग्नि हू नो धूनी धधकाय राखी
एक रस, एक रसरासि दरसायो है।
उधौ ग्रब ग्राय कहा जोगतें सुनायौ इहा
सावरौ सिघायौ तब ही तें जोग छायौ है॥

(१८)

कौन भाति जायबो बनत ब्रजमडल मे
नई प्राण प्यारी इहा ग्रति ग्रकुलावैगी।
जौ पै रसरासि को सग लिये जैयेतो
उनके हिय मे यह कैसे को समावगी।
ग्रैसे—ग्रैसे करत ग्रदेसे वह कारो
कन्हैया ही तिन ग्रायो जानि दास दुख पावोगी।
कचन की वेली ग्रलवेली कूबरी को कोऊ
गूजरी गवेली उहाँ निजर लगावगी॥

(१९)

एक वेरि फेरि ब्रजमडल मे ग्रावौ कान्ह
ग्रब सब सूधी भई मान हू न करेगी।
मन हू मे ये कहत वहू न झगरेगी
ग्रौर मासन मलाई हू छिपाय कैं न धरेगी।
नई प्राण प्यारी हू की कानि हम मानि लेह
वाकी ह्वै रहेगी, रसरासि वासो डरेगी।

दोऊ कर जोरि—जोरि करि कोरि चाइन सो
दौरि दौरि कूवरी के पाइन में परौगी ।।

(२०)

व्याकुल विकल महाविरही विचारे वौरे
अलबल बोले ताकी चूक माफ कीजे अब ।
काहू भांति काहू प्यारे को हमारे वृजल्यावो
हिलि मिलि जल जमुना कौ पीज अब ।
पाती हू में आयवो जरूर मजकूर लिख्यौ
उघो रसरासि कोइ को सें जाय दीजै अब
विनती हमारी करो सावरो बिहारी सो
तिहारी मारी मरी है, जिवाय जस लीज अब ।।

(२१)

कहा हम गोकुल के गोपी-गोप ग्वाल बाल
चचल चवाई चोर ख्या कठोर ही के हैं ।
कहा वे कमल—दल नन कमला के नाथ
एक साथ लाये खारे खाटे मीठे फीके हैं ।
तीनो लोक माहि धन्य धन्य वृजवासी भये
जीवन मुकति रसरासि प्राण पीके हैं ।
उधो जू हमारे इहा दोऊ हाथ लडुवा हैं
आव तऊ नीके जो न आवे तऊ नीके ह ।

(२२)

उधो अकुलाय धाय पाय गहे गोपिन के
कह्यो धन्य धन्य तुम वडी वडभागी हौ ।
आठो याम नन्दको नवेलो रसरासि
तुम घेरि राख्यौ पास वाके अग सग लागी हो ।
तिहारे दरस ही सो नीर सरस होत
कहियै कहाँ लौं जस प्रेम रसपागी हो ।
लोक लीक त्यागी सदा जोग ही में जागी
तुम भरम सो भागी, सावरे सो अनुरागी हो ।

(२३)

इत बृजवासिन कौ विरह वियोग उत
माधौ के विरह उधौ प्रति अकुलायौ है।
दोऊ ओर दोऊ मुख वारौ नाग डसै
तैसे रसरासि रोम-रोम विष छायौ है।
राधे कृष्ण, राधेकृष्ण एक रट लागिरह यौ
रोवत हसत पुलकित छवि छायौ है।
ठकनि छकायौ वा कौ चित चिकनायौ
देखि कान्ह कौ सुहायौ दौरि गले लगायौ है।

(२४)

आयौ हो इहा ले तौलौं निरखत आधौ
सग जोरी रसरग बोरी मोरे मन भाई हैं।
अव यो अकेले देखि आवें अकुलाई परे
देखें कहा गोरी विन श्यामताई है।
तुम अरू वे तौ सदा रहत हिलेई मिले
सो तौ रसरासि कथा रसिकन गाई हैं।
कहा मन भाई यह सावरे कन्हाई
उहा आप छिपि रहे इहा राधे को छिपाई है।

(२५)

भले मिले दोऊ सुख—स्वारथ के लोभी
तुम सलिल तरग जसे एक-अेक ह्वै रहे
कहा गति विरही विचारे ब्रजवासिन की
व्याकुली विकल परे अ सुवनि च्वै रहे।
जाय सुधि लीजियै कै लीजियै बुलाय
उन्हे रसरासि प्यास त्रास सो त्वै रहे।
कान्ह कह्यौ अव तुरतँत वो चलेंगे
तव सव सो मिलेंगें चलिवि के दिन ह्वै रहे।

राधे जू रसिक महा रसिक गुव्य द जू के
रस के सदसन में भरो रसिकाई है।
रस के ही ऊतरसीले वृजवासिन के
सुनि सुनि उधो हू रसिकताई पाई है।
रसिक सुजान महाजान श्री प्रताप भूपतिन की
कृपा तें यह बात वनि आई हैं।
रसिक-सभा में रसरंग वरसाय वै को
रसिक-पचीसी रसरासि हू बनाई है।

रसिक-कवित्त-शतक

(१)

सोधि सहस्रास्य भास्य वेद-व्यास सूत्रन को
श्रुति के स्मृति हू के समत विचारे हैं।
सब ही को सार हरिसरन बताय जिन-
कलि के मलिन-मूढ जीव निस्तारे हैं।
सतचक्र-माला रसरासि दास छाप दै के
भक्ति के प्रताप शिष्य सगरे सिंगारे हैं।
निज सम्प्रदा को धम दृढ करिवे के काज
श्रीजू श्री आचारज ह्वै प्रगट पधारे हैं॥

(२)

श्री मनारायण जू के चरण को सेवक
श्री रामानुज सम्प्रदा को शिष्य पद पायौ है।
रसिक-सभा मे बैठि बोलिवे को चाव मेरे
वे हू मोहि चाह ईहि लाभ-लोभ छायौ है
विप्र बस रामनारायण नाम नीको
कविता मे छाप रसरासि हेरि ल्यायौ है।
सबको सुहायौ लली लाल गुन गायौ
भयौ मेरो मन भायौ सबही के मन भायौ है।

(३)

विमुख सुरेश हू से ठाढे जिह गैर हो हि
तिह ग्रोर की पवन तें टरत हो।
हरि—पद—पकज—पराग रसलीन तिहे
दूरि ही तें देखि महा मोद सो भरत हो।

(२६)

राधे जू रसिक महा रसिक गुन्यद जू के
रस के सदेसन में भरी रसिकाई हैं।
रस के ही ऊतरसीले वृजवासिन के
सुनि सुनि उधो हू रसिक्ताई पाई है।
रसिक सुजान महाजान श्री प्रताप भूपतिन की
कृपा ते यह बात बनि आई हैं।
रसिक-सभा में रसरग वरमाय वै को
रसिक-पचीसी रसरासि हू वनाई है।

रसिक-कवित्त-शतक

(१)

सोधि सहस्रास्य भास्य वेदव्यास सूत्रन को
श्रुति के स्मृति हू के समत विचारे हैं।
सब ही को सार हरिसरन बताय जिन-
कलि के मलिन-मूढ जीव निस्तारे हैं।
सखचक्र-माला रसरासि दास छाप दै के
भक्ति के प्रताप शिष्य सगरे सिंगारे हैं।
निज सम्प्रदा को धम दृढ करिबे के काज
श्रीजू श्री आचारज ह्वै प्रगट पधारे हैं॥

(२)

श्री मनारायण जू के चरण को सेवक
श्री रामानुज सम्प्रदा को शिष्य पद पायो है।
रसिक-सभा मे बैठि बोलिबे को चाव मेरे
है हू मोहि चाहे इहि लाभ-लोभ छायो है
विप्र वस रामनारायण नाम नीको
कविता मे छाप रसरासि हेरि ल्यायो है।
सबको सुहायो लली लाल गुन गायो
भयो मेरो मन भायो सबही के मन भायो है।

(३)

विमुख सुरेश हू से ठाढे जिह गैर हो हि
तिह ओर की पवन तें टरत हो।
हरि—पद—पकज—पराग रसलीन तिहे
दूरि ही तें देखि महा मोद सा भरत हो।

ऐसो रसरासि कछु पर्यो है, सुभाव मेरो
रसिकन सग सदा रग सो ररत हो ।
सोभा-सिधु दीन वधु रघुनद जू के
चरन सरन पर्यो कविता करत हो ॥

(४)

तीनो काल तीनो लोक तीनो ताप दूरि करें
भूरि हैं प्रभाव जाके गुन गाथ को ।
पावन-प्रताप दर्प दले दुष्ट दोपिन के
दानव दहन कारी वाण जाके हाथ को ।
धनधारी राम की दुहाई कलि-काल मे
छाई रसरासि है निवास साचे साथ को ।
औरन के राज की वडाई दिन-च्यार ही लो
अविचल राज महाराजा-रघुनाथ को ।

(५)

जनक विदेह जू की भूमि पटरानी तहाँ
स्वय जोति जानकी अनूप कन्यका भई ।
उमासी रमासी दासी सची शारदासी
जाकी करत खवासी और को ने समता लई ।
राघव दिनेश की प्रभा सी ह्वै प्रकासी
रसरासि रूप सपत्ति सुहाग भाग सो छई ।
महिमा अपार, कहि पावै कौन पार,
वेद गावै इकसार तऊ कीरति नई-नई ॥

(६)

सोहत गोरे किसोर सावरे कुवर दोऊ
कसे कटि कथा मुनि कौसिक के सग हैं ।
दोऊन के रूप माझ होड सी परत
देखि आख चकचौंध जात कोमल सुअग हैं ।
दोऊ चाप वान लिए आए ह्वै अनग
मनौं तारि हैं धनुप एई असे जोर जग हैं ।

रसरासि प्रभु की निकाई सुनि
जानकी के नन मे लाज छाई मन मे उमग हैं।

(७)

धसकि मसकि गई धरनि चमू के भार कम की
कमठ पीठि सेस हू को लच्यौ सीस।
छिपि गयौ भान छाये भूमि आसमान
धाये भाल वलवान, महाकाल से अवलकीस।
रसरासि प्रभू जू के हुकम ते हू वरिजू
हजू हसि पर उपारि वाध्यो वारि-ईस।
लका भई सकाडका वज्यौ वका
राधव को हुका कियौ तोरिवे को रावन की भुजा बीस।

(८)

रामचन्द्रजू के चन्द्र चूडजू की भक्ति सदा
चन्द्र चूडजू के मुख रामचन्द्र आठो जाम।
एतो धरें गगा वे प्रसादी बील-पत्र धरें
राम कहे रामेश्वर, ईश्वर कहत राम।
आपस मे ऐसी है रसरासि प्रणति प्रीति
सेवक सेव्य सखा सोह तन गौर श्याम।
एक अधिकाई भूप रूप रघुराई यह
जोगी है जुगादी महा मृत्यु-ञ्जय जाको नाम।

(९)

गगाजू के जल की विमलता कहीन जात
हरि-पद कज तें चलत जाको स्रोत हैं।
याही महिमा तें ईश सीस पे चढाय
राखी सेवें सुर सिद्ध साधु विप्रन के गोत हैं।
रसरासि धन्य धन्य भागीरथी भूरि-भाग
जगत मे जाके उपकार उदोत हैं।
पावर-पतित पीन पातकी प्रचड तेऊ
न्हाय-न्हाय प्रभुजी के पुरवासी होत हैं।

(१०)

पावन-प्रवाह देखें दुख-दोष दुख-दाह
होत हिय मे उछाह होत पातक नसत हैं ।
न्हान किये ध्यान किये जाको जलपान
किये पुण्य अनेक देवलोक मे हसत हैं ।
रसरासि मो से महा अधम उधारिवे को
देव धुनी धारा तीनो लोक मे लसत हैं
सदासिव सगा सोहै गौरि अरधगा
देखो गगा गुन रासि ईस सीसपै बसत है ।

(११)

जो ई ढिग जाय जाकी जाति-पाति खोय डारै
माथे पर मोर के पखो वाले धरत है ।
सावरौ सौ अग करै गायन के सग करै
तन को त्रिभग करै धूरि-धूसरित है ।
रसरासि कबहू गवावत मजीक लै कै
कबहूँ नचायबे कै अयौत वितरत है ।
कबहू भुजग हू कै सीस पै चढाय राख
जमुना को जल इन्द्रजाल सो करत है ।

(१२)

पकज प्रफुल्ल सोई सुन्दर-मुखारविंद
चचल ये मीन सोई अखियाँ उमगनी ।
सोहत सिवार सो तौ वासर सकुमार महा
करत कटाक्षि अक बीच भ्रुव सगिनी ।
चक्रवाक वसत लसत सोई पीन कुच
रसरासि प्रभु घनश्याम अग-सगनी ।
भूमि हरियारी सोई ओढि रही सारी
देखो सावरी सखी हे किधौं जमुना तरगिनी ।

(१३)

गायलै रे गोव्यद गरुड गामी गोकुलेस
गुरु-पद-पकज सो सीस ही छुवाय लै ।

न्हाय लै सरीर को सु-गगाजू के नीर
नित गायत्री को जपि गोपी-चदन लगाय लै।
लायलै रे गल्ल की श्री गौमती सिलासो
प्रीति हियँ रसरासि गीता-ज्ञान सरसार लै।
छाय लै रे गोरज चराय लै रे गायन को
श्री गुव्यद-गीत को तू सुनिलै वंगायलै।

(१४)

करि लै सुकृत सुमिर लै रे नरहरि
पर हरि श्रोढ रे ढरनि मोह-जाल की।
रसरासि तेरें हाथ चितामनि है रे
यात श्रोट गहिलै रे प्रहलाद प्रति-पाल की।
करत कहा है, कहा करिवे को श्रायौ
कहि को है तू कहाँ है, यह कैसी गति काल की।
गई सौ तो गई श्रव रही सो तो राखि मूढ,
एक-एक लव जान लाख लाख लाल की॥

(१५)

ए रे मन मेरे मेरी साख मानि ले रे
मोह माया तजि दे रे, तेरे पायन को धोकियै।
तौ सौ श्रौर को रे याते करत निहोरे
कहा भटकत भौरे नेक चचलता रोकियै।
श्राज लौ तौ तेरी रसरासि चौंप हेरि
श्रव लोक-लाज भाग सव भार हो मे भौंकियै।
घरि-घरि पल-पल, हल चल दूरि डारि
गोकुल के चद्रमा को वदन विलोकिय।

(१६)

पावत न पार दृग-सोभा को समूह लखि
श्रै परि वदन छवि दौरि दरस्यो करो।
वरनें न जात क्यो हूँ रावरे श्रमित-गुन
तऊ जस रावरो रसनस रस्यो करो।

आठो जाम जो पै रसरासि तेरे सग रहैं
तऊ इन पाइँन की रज परस्यौ करौ।
नैनन अधिक नीर निचुर्यो परत है
पै रावरो सनेह-मेह झर बरस्यौ करौ।

(१७)

देखि तुम्हे रसरासि कृपानिधि
मो मति की गति को गहि गैरो।
रावरी पार न पाय है तौ
इत वार के आय वे हू न हि फेरौं।
जो तरि हेत तौ चाहे कहा
अरु बूडि है तौ कहो कौन हि टरो।
तो सौ कहू नही दीख परै
अब हेरि दसो दिस त तन हैरो।

(१८)

जानत हौ तुम सब ही पै तऊ
कहि आपनी अब जनावत।
रावरे द्वार हू भूप भरयौ
जिय रूप अहारी घिर्यौ घबरावत।
जानता क्यो हू कहू रसरासि
सु-प्यास मर्यौ इत ही बिरमावत।
दीन महा गुन हीन पै रावरी
पौरि पर्यौ प्रतिहार कहावत॥

(१९)

दीन दुखी दूजहू वरो दास
दया करि कै दुख दोष हरौजू।
ग्राह्य गह्यो गज त्यो कलि काल
विहाल कियौ कर चक्र धरौजू।
जो पै कहावत हौ रसरासि
सो नदकुमार सुढार ढरौ जू।

भारतवत पुकारत है कै तौ
सोच करौ न तौ मोच करौ जू ।।

(२०)

तीर ही पर्यौ हो तन पीर तें मर्यो हो
निज भूल तें टर्यौ हो परि कैसे टरि जाय हो ।।
जो लो घट सास तौ लो यहै बिसवास
ढरि मैं है रसरासि प्यास भिलि के मिटाय हो ।
जीवन की जीव मूरि काहे को करत दूरि
तिहारौ सुजस भूरि निसि दिन गाय हो ।
याते हित ठाय मीन लीजियै रचाय दीन
रावरौ कहाय अब, कौन कौ कहाय हो ।

(२१)

तेरी है आस उपासना तेरी है
तेरौ बिसवास निवास तिहारौ ।
तू धन जीवन प्राण तू ही
औ तू ही इन प्रानन को रखवारौ ।
तेरौ कहावत है रसरासि
सुनेक तौ आपि उधारि निहारौ ।
कीच के बीच पर्यौ तरफै
अब कसे जियें यह मीन विचारो ।

(२२)

दीनबधु दीनानाथ कृपानिधि सुनि सुनि
धुनि-धुनि सीस गुनि-गुनि अकुलात हैं ।
तरसि तरसि तर्पे सरस दरस-काज
बरसि बरसि नीर पीर तें पिरात हैं ।
ए हो रसरासि तुम निरगुन या ही तें
जु दीन हीन द्वार परे खोन होत जात हैं ।
कबहूक प्रान ये दीन चपि चूर ह्वै हैं
रावरी बडाई तें इष्ट देव दवे जात हैं ।।

काहू की सहाय करी वावन वराह ह्वै के
कहूँ नरसिंघ रूप धारि के सुधारे काम ॥
कहू मच्छ कच्छ भये भये हरि-हंस
कहूँ रामकृष्ण कहूँ राम श्री परसराम ।
पूत भये पिता भये सेवक-सुहृद् भये
कहिये कहा लौ रसरासि हो कृपा के धाम ।
औरन के भाग की वडाई कौन वियौ करै
हमारे हू भाग से भये हौ प्रभु सालिग्राम ॥

(२४)

भये मच्छ कच्छ औ वराह हय-ग्रीव हंस,
सेवक सहाय काज के वल कृपा पढे ।
केऊ वपु धारि-धारि, दीन-दुख टारि-टारि
राक्षसन मारि-मारि निपट मनी चढे ।
भक्त प्रह्लाद को दुखायौ दुष्ट-दानवन
देखि रसरासि दौरे महारिस सो मढे ।
आधि निज देह रही एतीन विलवगही ।
आधे सिंघ होत, होत पभ फारिके कढे ।

(२५)

प्रकट भयौ है वृज चंद नंद जू के घर
जसुदा को सेज प्राची दिसा छवि छ्वै रही ।
सज्जन चकोरन क परम विनोद भयौ
मोह चहूँ कोद मैं पीयूष-जोति ज्वै रही ।
बाढयौ रसरासि वसु अगनित असु
देपि नविन की मति मनि चन्द्रकांति च्वै रही ।
भादव की आठें अंधियारी आधी राति हो त
पुयोई प्रतच्छ तीनो लोकन में ह्वै रहो ।

(२६)

वृज रज देवन को दुलभ सुनी है परि
या हू त सहस-गुनी मेरी सुनि लीजै बात ।

नद के सदन सोहे आनद वे कद लला
वाल मुकुन्द महा सुदर सलोने गात ।
दृढ करि वारि वारि उतरत गोद मे ते
रसरासि प्रभु मन माहि डरपत जात ।
दूरि दूरि दौरि-दौरि कोरि-कोरि चायन सो
मारि मोरनी को मुख चोरि-चोरि माटी खात ।

(२७)

तीनो ही लोक की पडे अढाई करी
जिन सोई है वाल मुकुन्द जू ।
नद के आगन मे रसरासि करे
वहु साहस वोकुल कद जू ।
हाथ तें पाय ते घुटन त हिय–
सीस ते नापत है नदनद जू ।
पार न पावत आगन को तव
भूमि को चूमत हरि-गोव्यन्द जू ॥

(२८)

मकर-सुरेस ध्यान धरि धरि ध्यावे तऊ
ध्यान मे न आवै वेद गावे कहि नेत नेत ।
सोइ सिसु रूप स्याम-सुदर अनूप
सदा विलसत मोद भर नदराय के निकेत ।
आरसी मे निज प्रतिविम्व का विलोकि
ताहि भया भैया कहि मुग्ध माखन के कौर देत ।
रसरासि प्रभु की ललित लीला देखि देखि
जसुमति रानी तीन वारत वलैया लेत ॥

(२९)

विजै दसमी की कथा कहे रसरासि मिश्र
सुनत जसोदा स्याम पलना मे सुवायौ है ।
कह्यो आज दुष्ट दस सीस ताके दसो सीस
छेदिवे को राम कपि-कटक चढायौ है ।

काहू कह्यौ लछमन ल्यावरे धनुष मेरौ
कहा है निषग वह सर सुधि ग्रायौ है।
चौंकि उठि मात गुरु गग हू सटपटात
कौने कही बाल तात गरे सौं लगायौ है।

(३०)

मैया तें कह्यौ कालि लाल तेरौ व्याह करौ
दूलहन बनाय कै उछाह करौ कोरिकारि।
जैसा लोना लाल तैसी लोनी सी दुल्हैया
लखि ल्यायहो लला के सग रग गठि जोरि-पोरि।
फिर वह मैया गठजोरौ छूटि हौ किनाहि
साची कहि कौ लौं हौ फिरौंगो सग खोरि-खोरि।
रसरासि प्रभुजू के वचन विचित्र सुनि
नद श्रौ जसोदा दोऊ हसे तृण तोरि तोरि ।।

(३१)

भादो की उजारी ग्राठैं ग्राधी राति वाजे बजे
जसुमति रानी सुनि खवरि मगाई है।
ग्राय रह्यौ ग्राज वषभान कै कुवरि भई
बाटत बधाई दान भरी सी लगाई है।
नद श्रौ जसोदा सुनि गुनि कै कहन लागे
प्रीत की प्रतीति रीति जुगति जगाई है।
एकै मास तिथि प्रगटे है रसरासि दोऊ
जात ग्रागिले सनेह की सगाई है।

(३२)

भादो मास उजियारी ग्राठे तिथि सामवार
लगन छत्र सुभ जोग सरसत है।
कीरति की कूप कुल-मडन कुवरि भई
जा कौ नाम लिये वृज चद दरसन है।
हरद दही सो रगें गावत-नचत गोप
यह सुख देखि देखि देव तरसत हैं

रसरासि बाटत बधाई वृषभान-भूप
आज बरषाने माहि रग बरसत है।

(३३)

जगमग जोति दिपें दीपक नक छत्र नीके
त्योही महातव जोति ससि की सुहाई है।
जटित जराय भीत सोहत विबुध सभा
तसी ये अनूप रभा नृत्यत हवाई है।
नगर—बगर-बन—बीथी—पुर—पौरि—पौरि
जहा-तहाँ दीपति दिवारी छवि छाई है।
मनो रसरासिया रगीले वृज मडल मे
ईन्द्र की अकस-अमरावती बसाई है।

(३४)

कोपि कें सुरेस पे ले प्रलै के पयोदन को
लोपि वृज-मडल को चाहत बहायो है।
जागी गिरिराज कहा मूते ही नचित ह्वै कै
ऐसे कहि नेंक बाये हाथ सो छुवायो है।
हाथ ही मे सग उठि चल्यौ जग जुरिबे को
रीझे रसरासि यात बन्न को चलायौ है।
गिर को चरन धरि रहे गिरधर देखो, तोरे
वृजवासी कहे कर प उठायो है ॥

(३५)

मोट मोटे थभ जैसी धारा घर धराधर
वृज बन बोरि वे को वारिधि सो फूट्यो है।
मान की कृपाण तैसी चचला चहकि रही
त्योई प्रबल पौन एक सथ छूटयो है।
रसरासि प्रभु गिरधारी गिरवरधारी
सात दिन राति लौ सनेह सुख लूटयो है।
वदर ज्यो वेऊ नाच नाच्यौ हैं पुरदर प
वज्रपात हूँ ते नख-पात हूँ न टूट्यो है।

(३६)

लगर लाल नित प्रति व्रज-वालन पै
मागे दधि-दान आनि करत अनेक-फद।
गोपिका हू आज एक गोपी को वनाय गोप
पाछे राखि आई सवै विहसत मद-मद।
देखि रसरासि दौरि रोकत है तौ लौ
ताहि दूरितें दिखाय कही, भली भई आये नद।
चलौ री कहो री कहे ज्यो ज्यो वृज गोरो
त्यौ त्यौ होरी रहोरी कहि करत हहा गु‍ंमद॥

(३७)

भभट करत भकभोरि कै मरोरि वाह
तोरत है मेल हार ढोरत दही के माट।
मोरत चुरी को नहि अचल को छोरत
हौ टटोरत अग-अग निपट-कपट-ठाट।
रसरासि क सो दान कसे तुम दानी भये
हौ तो भली भई भाग के खुले कपाट।
दूरि ही त दान की हवे च्यार कौडी मागि लेहु
सुन्यौ है कि नाहि वनिता न हू की वाकी वाट॥

(३८)

सहि-सहि आतप प्रचड हिम वात घन-वन मे
तपी है पाय रोपि मिलिवे के काज।
सोचि कै सु कानी देह कुल हू सो तज्यो
नेह अग-भग हवे के वढी सव ही की सिरताज।
एते पर आगि की सलाका सो न मोरयो
अग छाती छिदवाई तव पायो वर वृजराज।
तऊ रसरासि देखो अधर वियोग ही सो
प्राण हत भई जानी नेह को लगेगो लाज॥

(३९)

एकै पाय ठाढौ करि राख्यौ है रगीलौ लाल
आप ही को अति अधिकार सो जनायो है।

अधर सुरग भूमि बैठी है उमग भरो
वोभिल कहायत्र को कटि ते नवायौ है।
रसरासि देखो वडे ग्रादर सो वोलत है
छाति छोलि-छौनि नोकें वृज को नचायौ है।
थिर-चर जीव जड-जगम की कौन चली
वासुरी तो हरिहू पै हुकम चलायौ है।

(४०)

वसुरी रसरासि ठग्यौ, ठगिया सु ठगाय
गयो गुन गायन सो ।
अरु ग्रोठन के पर ग्राप ही छाप ह्वे
चाचि रही कर पायन सो।
हम कोरि उपाय उ पावत हाय कछु न
वसायक सायन सो।
धुनि कान लो ग्रान की ग्राय वे
देत न ग्रैंचि रही चप चायन सो।।

(४१)

सावरो वरन मन-हरन वडे नडे नैन
तसी ये चितोनि उर ढुरकनि माल की।
तैसी ये हसनि तैसी भोह की कसनि
तैसी नेह बरसनि विकसनि गज-चालकी।
कहा कहा कहौं रसरासि महालोनो रूप
तैसी ये मधुर-धुनि मुरली रसाल की
ग्राठो जाम रहियै जो गोहन गुपाल की
तो एक-एक लव जात लाख-लाख-लालकी।

(४२

सोभा सिंधु सावरो सलोनो रसरासि एरो
उमहि उमहि ग्राय ग्राखिन मैं घुरि जात।
तानन की गाज सुनि वधिर भई री
वीर को सुनै चवाय क्या न ग्र यन ला जुरि जात।

चदन की पौरि अग वाढी है तरगता की
फैटन सोपति पन पारि लो निथुरि जात
विलगी हलत सुतो पूतरी सिक दर की
वरजत लाज कीजि हाज क्यो न मुरि जात ॥

(४३)

घुघरारी लटीन के फदन सा
सुरझै मन को उरझाय गयौ।
रसरासि करोरिक चावा सो
दृग-कोर चित मुसकाय गयौ।
तवत सुधि ने स यहू न कहूँ
उर लाय वियोग की लाय गयौ।
वनतें वनिकें इत गाय गयौ
तकि क छवि छाक छवाय गयौ ॥

(४४)

मन लागि रह्यौ जिनसो, तिन के
मन की गति हाय कासो कहा।
निठुराई को पुज महारसरासि
निहारत चाह प्रवाह वहौ।
छवि दीपक दगि पतग भई
झुरसी हो तऊ झुरि वाई चहौ।
जिय आवत यो अब तौ सब भाति
निसक ह्वै अक लाय गहयो ॥

(४५)

जुग सो यह वासर ता वि तयो
अब तो वन तें वनि आय हेरी।
सगरे दिन की दुखिया अखिया
मुख देखि महा सुख पाय हरी।
रसरासि रिझा ही तरगन छाय
हितु मा मीत रनाय हुरी।

अपने घर गाय दुहावन के मिस
लालची लाल को ल्याय हैं री।

(४६)

आज बने वन ते हरि आवत
गावत गायन बीच रहे लसि।
रीझ तरग छ्ये रसरासि
रचाय लियो मन मीन हरें हसि।
ता छिनते उत ही उराझ्यौ इत
राखि रह्यो हठि हारि कि तौकसि।
चाखि लियो रस कौ चसको तव
कौन रहै कुल-कदरा मे धसि।।

(४७)

जमुना तट वीर गई जब तें
तबतें जग के मग भाभन हो।
वृज मोहन गोहन लागि भटू
हो लटू भई लूटिसी लापल हो।
रसरासि लला लचाय रहे
गति आपनी हो कहि कसे कहो।
जिय आवत यो अब तो सब भांति
निसक ह्वै अक लगाय रहो।।

(४८)

जब रीझ सवाद भरी अखिया
तब रूप भलो अरु पोच कहा।
अपने अग व्याधि असाधि उठी
तब बद है तासा सकोच कहा।
रसरासि मिलाप अभी अचयो
तब जाति औ पाति को सोच कहा।
छवि लौडी भई हित ढोडी बजाय
बनौटी भये अब लोच कहा ?।।

(४९)

ठाढी हती कहू बाल वधू पिय
आयवे की कछु सन सो पाई।
चौंकि भजी ससिकी भरि के
रसरासि कहा कहियै सुखदाई।
पौढि रही दुरि भौन के कोन मे
काहू दइ सुपने मे दिखाई।
पौरि लौ रोगि परि खिलकार को
दौरि के पौरि के बाहिर आई॥

(५०)

ढर्यौ ढर्यौ पर धर्यौ वयाह्न आवत
न पावत ठौर वाही ठौर मडरात है।
रूप रसरासि भर्यौ चेटक तरग सो
मीन बिछुरे लौं नन लाभी ललचात है।
कपित अमित चित्तनि भर्यौ परत धूलि
पुलकि ललकि सियलत भयो गात है।
जसें गर ओरो सो री पानी माझ तें
स तन गोरी गोरी देखि मन गर्यौ गरयौ जात है।

(५१)

आज हौ गई वृप भान के भवन तहा
राधि का कुवरि की अनूप छवि छन रही।
चकी सी जकीसी उझकीसी बिझुकीसी
फिरै वने वन अगन अनग जोति जव रही।
तहाँ रसरासि छल वसी मे करत फल
आयो तिह गैल चोप चटकीली च्वै रही।
लाल कर फून छरी देखि-देखि पीरा परी
पीरे पीरे पान देखि पानी पानी व्है रही।

(५२)

मिलो को मोद है मयक जसो मृगनैनी
चाहिय अनूप रूप राका सरसात है।

भावी वलवान भयौ राहू के समान भान
पक्र्यौ है आनि याते अति अकुलात है।
जो पै रसरासि काया ग्रँसो क्रुर
.
....
५३ से ६२ तक १० कवित्त नष्ट हो चुके हैं।

(६३)

नद के कुवर रसरासि तुम्हे वाकी सोह
साची कहो रावरी एक वक हैं लगवारि।
ऐसी कौन ही कहा की हैं जू हाथन
सवारी मनो मनमथ सचे ढारि।।

(६४)

जब तुम आय ललचाय हाहा खाय केक
विनती सुनाय धर्‌यौ पायन मे भाल है।
मुरली बजाय कबहुक उठे गाय विन मोल के
कहाय गुथि ल्याये फूल-माल है।
मे हू रीझ छाय दियौ मृदु मुसक्याय तुम
वलि-वलि जाय रसरासि राखी चाल है।
अब तुम डीठ को दुरावत कहा हो हाय
रावरे तो ख्याल मे औरन को काल है।

(६५)

अखिया करि प्रीत प्रतीत भरी
पहले ललचाय निहारिये क्यो ?

बरसाय महारस बूंदन को
रसरीत भरे तरु तोरिये क्यो
रसरासि रिझोही तरगन छाय
हितू जन मीन मरोरिये क्यो ?
अरु राखिन जानत हो तो कहो
मन मानिक काहू को चोरिये क्यो ?

(६६)

जिनके रट देखन ही की सदा
अरु चेरी भई इन पायन की।
निरमोही तिन्हे तरसावत क्यो
जिनकें सुधि नाहिं चवायन की।
रसरासि हम पहिचानो कहा
तुम जानत हौ गति गायन की।
रस मे रसरीत रसायन की
जु करी तुम नीत कसायन की।।

(६७)

हम देखे कहा जो दिखात न आप
सतापन तें निस-घौस कसे।
इन आखिन होत उजारी अजू
तुम कौन सो देस बसाय लसे।
रसरासि तिहारी यै आस भरे
हम तो विसवास अवास बसें।
निरमोही अबें तुम जो अरसे तो
सनेह की धार न काहे धसे।

(६८)

ब्रज-नर-नारिन के चितवित चोरिबे को
जोरि-जोरि जमा करि राखी उरमानि
गायबे-बजायबे की बनि ठनि आयबे की
चेटक लगायबे को सीखो सरसानि है।

मन के हरन रसरासि जो भये तौ भले
परि एक और सुनो अद्भुत् वानि है।
आप बसि ह्वै के रीझि सरवस वारि
दीवौ वह तोहि लग की विलग पहिचानि हैं।

(६६)

कोऊ करौ जप-तप पवन निरोध कोऊ
कोऊ धरि बोध काया सोध करिवौ करौ।
क्यो न कोऊ जाय कै हिवारे मे गरावौ तन
कोऊ धन-धरा धाम धूम धरिवौ करौ।
हमारी तौ लाज है न वेद की मरजाद
कोऊ काहू सो न काज दोषी देखि जरिवौ करौ।
अंप रसरासि व्रजचद प्रान प्यारे तेरी
नेह भरी हेरनि हिये को हरिवौ करौ।

(७०)

पल-पल वदन विलोकि हो बलैया हों
एक रस रै हो रसरासि रोस हासी मे।
पाय सहराया हो सुवीजन डुराय हों
न क्यो हु अरसाय हो न आय हो उदासी मे।
कहा जानो मोहि कछु लगी है ठगौरी भई
बौरी फिरो दौरी या उरझि इकलासी मे।
मोहन कहायवे को मोहनी जो डारी है तो
मोहन रगीले मोहि राखियै खवासी मे।

(७१)

तुम तौ रसरासि रसीले उदार
सर्वं विधि नेह कसोटी कसे।
निम घौस वियोग जरे हिय हू मे
भलाई भरे तुम आनि बसे।
वह अैसे गवेल रे गाव की ग्वारिन
प्रीन की रीत मे प्राणन से।

छिन हू तुम्हरे अति सीरे हिये
थिर वैन बसी अरु लाग हसे ।।

(७२)

बरन-बरन के बसन सोहे पल्लव से
मुसक्त मद कु द-क्ली विक्सत सी।
पुहुप पराग सो उडावत अबीर आछें
अनके रलकि अलि-माला दरसत सी।
फूली अ ग-अ गन अनग अनुकूली
सदा गावें गरि औघ मारि कोकिला लसत सी।
रसरासि प्यारे बनवारी के विनोद को
बसत लैं के आई व्रज-वनिता वसत-सी।

(७३)

फूलन की पाघ सीस च द्रिका हू फूलन की
फूलन के कानन करन फूल कैं रह्यौ।
फूलन की कठमाल वन माल फूलन की
फूलन की छरी गेंद फूलन की लैं रह्यौ।
फूले रसरासि अ ग अगनित फूल भरे फूले
दृग-कजन तें मुसकि चितै रह्यौ।
फूलि फूलि आई व्रजवनिता वसत लै के
फूलि फूलि सावरो वसत रूप रह्यौ ।।

(७४)

फागुन महीना लग्यौ जा ही दिन भोर ही तें
नद के वगर आय गाय कै सुनाई गारि।
तनक-भनक सुनि सावरो कु वर कह्यौहो
हो ललकार मची रची है रगीली रारि।
उडावत लाल रग-रग की गुलाल लै-लै
दसो दिसि दी है दिन ही मे परदा से डारि।
लपटि गई है रसरासि प्यारे प्रीतम सो
गुन गर बीलो ग्वारि गो की समुझि निहारि ।।

छिन ही छिन सावरौ देत दिखाई
महारस–रग–तरग भर्यौ ।
जियरा तरसाय रह्यौ मिलिवे कौ
पे लाज ही मेरौ अकाज कर्यौ ।
मन ही मन माहि मसोसन चूर ह्वै
आज लौ सोच-सकोच घर्यौ
अब तौ रसरासि बसत के खेल कौ
भाग सो औसर आय पर्यौ ।।

(७६)

स्यामा अरु स्याम बनि बैठे है उसीर धाम
अरस-परस दोऊ चदन चढाव हीं ।
छूटन लगे है जल जत्र चहु ओर फुही भीजे
रसरासि नीके बसन सुहाव हीं ।
सीतल सुगध मद मारुत छहरि रह्यौ
सारग राग सखी सुघर सुनावही ।
परसत अग अग फुलकि पसोज भीजि
रीझ–रीझ दोऊ मद मद मुसकावही ।

(७७)

कोपि करि काढी हैं सहस समसेरन को
सब ही कौ तन मन त्रास तें तचायो है ।
तरल तुरग चढयौ सूर ताके सग सोहै
दस [illegible] दिसान देखौ दावानल लायो है ।
भागि भागि दुरे नर-नारी तहखानन मे
तऊ च्यारो ओरन रहत मडरायो है ।
प्यारे रसरासि तुम कितहू सिघारो जिन
ग्रीषम विषम वट पार ह्वै के आयौ है ।

(७८)

काहे को इतौक दुप सहते विचारे
प्रान तब ही निकसि जाते छिन हून छीवते ।

छिन हू तुम्हरे अति सीरे हिये
थिर नैन वसी अरु लोग हसे ।।

(७२)

वरन-वरन के वसन सोहे पल्लव से
मुसकत मद कु द-कली विकसत सी।
पुहुप पराग सो उडावत अवीर आछें
अलके रलकि अलि-माला दरसत सी।
फूली अ ग-अ गन अनग अनुकूली
सदा गावें गारि औघ मारि कोकिला लसत सी।
रसरासि प्यारे बनवारी के विनोद को
वसत लै के आई ब्रज-वनिता वसत-सी।

(७३)

फूलन की पाघ सीस च द्रिका हू फूलन की
फूलन के कानन करन फूल कै रह्यौ।
फूलन की कठमाल वन माल फूलन की
फूलन की छरी गेंद फूलन की लै रह्यौ।
फूले रसरासि अ ग अगनित फूल भरे फूले
दृग-कजन तें मुसकि चितै रह्यौ।
फूलि फूलि आई व्रजबनिता वसत लै के
फूलि फूलि सावरो वसत रूप रह्यौ ।।

(७४)

फागुन महीना लग्यौ जा ही दिन भोर ही तें
नद के वगर आय गाय कैं सुनाई गारि।
तनक-भनक सुनि सावरौ कु वर वह्यौहो
ह्वौ ललकार मची रची है रगीली रारि।
उड़ावत लाल रग-रग की गुलाल लै-लै
दसो दिसि दीन्हे दिन ही मे परदा से डारि।
लपटि गई है रसरासि प्यारे प्रीतम सो
गुन गरबीली ग्वारि गो की समुझि निहारि ।।

(७५)

छिन ही छिन सावरो देत दिखाई
महारस—रग—तरग भर्यो ।
जियरा तरसाय रह्यो मिलिवे को
पे लाज ही मेरो अकाज कर्यो ।
मन ही मन माहि मसोसन चूर ह्वै
आज लौं सोच-सकोच घर्यो
अब तो रसरासि वसत के खेल को
भाग सो औसर आय पर्यो ॥

(७६)

स्यामा अरु स्याम बनि बैठे है उसीर घाम
अरस-परस दोऊ चदन चढाव ही ।
छूटन लगे है जल जत्र चहु ओर फुही भीजे
रसरासि नीके वसन सुहाव ही ।
सीतल सुगध मद मारुत छहरि रह्यो
सारग राग सखी सुघर सुनावही ।
परसत अग अग फुलकि पसोज भीजि
रीझ—रीझ दोऊ मद मद मुसकावही ।

(७७)

कोपि करि काढी है सहस समसेरन को
सब ही को तन मन त्रास तें तचायो है ।
तरल तुरग चढ्यो सूर ताके सग सोहै
दस हू दिसान देखो दावानल लायो है ।
भागि भागि दुरे नर नारी तहखानन मे
तऊ च्यारों ओरन रहत मडरायो है ।
प्यारे रसरासि तुम कितहू सिधारो जिन
ग्रीपम विपम घट पार ह्वै के आयो है ।

(७८)

काहे को इतोक दुप सहते बिचारे
प्रान तब ही निकसि जाते छिन हून छोवते ।

उमगि अगाऊ ह्वै के रग मे रचाऊ
हो ते एक पेड पाछें रहि पानी हू न पीवते।
प्रीतम पियारे रसरासि कौ सिधारे
सुनि साथ ही सिधारते न क्यो हू थिर थीवते।
कहा करो कठ मे ते विष की मी घूट
हाथ निकसन लागी न तो ने हो सदा जीवरो ॥

(७९)

जिनके तजे हैं प्रानप्यारे रसरासि विन
रोय–रोय ग्रासुन उसासन सो पीवते।
रैन—दिन रहत उदेग ग्रदसामे भूले
भूले खान—पान वास वसन न छीवते।
मार की मरूरन मरोरि मारि मीडि डारे
डवा डोल डोले कैसे हू न थिर थीवते।
ग्रौसी हैं असाधि व्याधि ग्र ग मे ग्रनेक
एक ग्राहि जौन होती तो वियोगी कैसे जीवते।

(८०)

चेटक चोप ग्रचभ भरी छवि
देखत सग लग्यो ललचावत।
जो छिन को नहि दीखि परौ
तौपरोई गरौ भरि नीर वहावत।
कौरिक भातिन सो रसरासि
मिलाप के केऊ बनाव बनावत।
हाय इते परहू निरमोही हरे
हसिवे कौन ग्रौसर पावत ॥

(८१)

मुख रावरो चद कहैं परिचद मे
नैनन क उर—झोनी कहा?
ग्ररु फूले सरोज समान कहै
परिवा में यहै मुसकोनी कहा?

सब भांति अनूप महो रसरासि
कही उपमा सम होनी कहा?
छवि देखत स्वाद सुधा सो लगै
परिवा मे दत्त मिठलोनी कहां?

(८२)

एरे मन मीत जो तू प्रीत कियो चाहत है तौ
तौ सुनि सीख मेरी मति सो विचारिलै।
रसरासि प्रीतम पियारे की अनोखी छवि
रीझ भरी आखिन सो निडर निहारिलै।
लाज औ बडाई तन मन धन प्राण वारि
सरवस हरि नीके नेह को सम्हारिलै।
प्रीतम की प्रीत को परखो तू करत काहे
तू तौ तेरी प्रीत पोयो सोधि कै सुधारिलै।

(८३)

सूरेपन पूरे टेक है तेग तीरनसा
तिल तिल ह्वै क तनरन मे जरेई हैं।
कवि रसरासि ते वैन ही रिझवार होत
प्रीत रसरीत भरे जोभ सो जटई है।
याही ते कटाक्षि तर वान के वारन सो
कटि-कटि जात तऊ नेव न हटेई हैं।
कटेई कटेंगे टूक—टूक ह्वै है इक—टूक
नेव न कटे हैं ते तौ नेव न कटेई हैं।

(८४)

जाके अक आठों जाम रहत छवीलो लाल
वाकी रूप रीझ सग या को डगडोलना।
ठौर—ठौर लागन सो भर्यो अनुरागन सा
दौरि—दौरि सी मत सनेह पट चोलना।
कहुँ मुसकात ललचात लपटात कहुँ
छाक्यो बतरात कहुँ कछुक अबोलना।

देखत फिरत रसरासि ने ही लोगन को
मेरो मन प्रीतम को उडत खटोलना ॥

(८५)

ब्रज वैकुण्ठ दोऊ तोले हैं तुला मे धरि
एक पला भूमि रह्यो एक चढिगो अकास ।
याही ते रहत इहा नन्द को कुवर सदा
गोप गायन मे करत विलास—हास ।
जोई प्राय रहै तासो नेक हू न न्यारो होत
प्यारो होत प्रानन को कोऊ क्यो न करो वास ।
रसरासि प्रभु स्यामा स्याम को निवास जहा
नाचत नटी लो मुक्ति च्यारो ओर पास ॥

(८६)

गुग बिना रसना सु पढै रचि
पाच ये वेद के भदे अलेखै ।
वाझ को पूत बिना आखिया सू
कहू की निसा ससि पूरन पेख ।
पागुरो दौरि के पीवै मृगजल
यो रसरासि सबै अवरेखै ।
पै हरि नाम विना विसराम कहूँ
कबहूँ कोऊ नेक न देखै ॥

(८७)

चली जात सासा तेरी विनसै अवासा
तू बनावत अवासापै न तेरो इतवासा है ।
लावत सुवासा चाहै तन सुख सासा
तूतौ मानत भवासा भूलि गयो जय-त्रासा है ।
पाये नैनन नासा कहा खले सारि पाशा
रसरासि विषै-प्यासा जामे हारि हैरु हासा है ।
झूठी यह आसा तासो होऊ रे उदासा
देखि पानी का पताशा तैसा तन का तमासा है ।

(८८)

जौलो रहै सासा तौ लौं दीसत उजासा
बठि साधन के पासा जहा काहू को न त्रासा है।
मानि विसवासा तू कहा यह हरिदासा
करि प्रभु की उपासा, मैं बतायौ मत खासा है।
वृदावन वासा करि जप उपवासा
रसरासि अनयासा पायो प्रगट मवासा हैं।
झूठो यह आसा तासो होऊ रे उदासा
देखि पानी का पतासा तैसा तन का तमासा है।

(८९)

मुंदि मुंदि नासा रोकि रोकि रहे सासा कोऊ
नापत उसासा त्यों त्यों छीन होत सासा हैं।
करै तप दासा कोऊ वन मे निवासा कोऊ
आन देव दासा कोऊ सबसो उदासा है।
पै न मिटै प्यासा योही करत प्रयासा
रसरासि अनयासा पायो प्रगट मवासा है।
बज भूमि वासा करि विपन विलासा
देखि पानी का पतासा तसा तन का तमासा है।

(९०)

खवायौ माल खासा ओढिवे को दये ग्वासा
औ हमारे विसवासा चल्यो करिबे कौ रासा है।
मारि हमे वासा करै काहू की न त्रासा हरै
मनुज की सासा तौ हमारे मुख नासा है।
होय रहे दासा येत छाडे होत हासा
काम आये अनायासा रसरासि स्वर्ग वासा है।
जस कौ उजासा तौ मरे को कहा सासा
देखि पानी का पतासा जैसा तन का तमासा है।

(९१)

तेरी छवि प्यासा तो सो करत विलासा
आज हू वै करि उदासा पौढे ओढि पट खासा है।

या ते तजि आसा ह्वै हूँ सबसो उदासा
यह आगि को अवासा प्यारे संग घर वासा है।
डारि हैं उसासा तौ तौ होय है री हासा
तू लगायलै सुवासा रसरासि की उपासा है।
अंत तौ विना सांजिन छाड पतिपासा
देखि पानी का पतासा जैसा तन का तमासा है।

(६२)

भूत कैसो माया है कि धूम कैसी छाया है
कि मोर कैसी काया है कि रंग ज्यों अकासा है।
नट कैसो नाग है कि नटी को सो राग है
बिस ती को सुहाग है कि दामिनी विलासा है।
ओस को सो ग्राप है कि इन्द्र को सो चाप है
कि फूस को सो ताप है कि सपने की आसा है।
झूठी यह आसा तासा होऊ रे उदासा
देखि पानी का पतासा तैसा तन का तमासा है।

(६३)

न्यारे-न्यारे बारन सवारि अलबेली अली
अतरति लोछि पोछि—पछि मोहियत है।
अगर छुपायें वर गुहे हैं सुढार तिंहे
हेरि—हेरि सौतिन के वृंद छोहियत हैं।
कुंदन—खचित नील—मनि को लसत नीको
सीस सीम फूल उपमा को जोहियत है।
भरा रसरासि काली व्याली पैठि राजि रह्यौ
पीरे पटवारो कारो कान्ह सोहियत है।

(६४)

अब तौ यह ऐसीय आनि बनी
गुरु—लाज समाज विदा करि हैं।
ढरि है' चित—चौर की ओर नही
विरहागिन तें तन क्यो वरि है।

सरि है कुल कानि विना सजनी
रसरासि पति वृत ते टरि हैं।
लरिहै भिरिहैं इन लोगन सों
पै गुपालहि अकन सो भरि हैं॥

(९५)

रस के उपासी दृग मग त्यों निहारि हारि
अंसुवन टारि-टारि पारिय तु प्रीत-पन।
उमगि-उमगि प्रान निकसे चहत अँधि
लालच लुभाय रहे पायवे को सोभा घन
भट भटी आथ रहें मुरझाय छाय लीजियै
रचाय रसरासि हितू मीन—मन।
देखियै विचारियै मिलाप के अहार विन
भूखे प्रान कौ लौ रूचि पाय जी है आसकन॥

(९६)

तन धाम के धाम तज्यो अब तौ
यह घेर ही के घर माझ छिरौ।
रसरासि की प्यास भर्यौ जियरा
चुनि चाह—प्रवाह वहाँ थितिरौ।
मन भावती औ अनभावती भीर में
नेक हू भग भिरौ न भिरौ।
परिये अखिया वृज—वीथिन मे
व्रज मोहन गोहन नागि फिरौ॥

(९७)

कलि के कितेक नर अति मति कूर भये
पूरि अभिमान मोस-मासि के कवित्त छद।
अरिवे को आवे क्यों हू समुझि न पावे
झूठ उक्ति ठहरावें ऐसे मुढ महा मति मद।
कवि रसरासि देखौ इतै पे अचम्भो एक
एक और ओर एक ओर वे अकेले स्यद

थोरे गुन मुदी होत मुदी होन चन्द्रिका लो
फुदो ज्यो उडत तऊ रहत पुदीप सद ॥

(९८)

जिनके हिये कवित्त सीखिवे को सिप्य होत
सेवक सुहृद् होत अति दीन हैं।
अदेम के सग वडी ठौर पहिचानि वहै है
यहै लोभ जौं लौं तौ लौ रहत अधीन है।
जव रसरासि वा को मतलब सिद्ध होत
तव ही ते जायो जात निपट नवीन है।
फेर तिनही सो गुरदेव भयो वातें करै
एसो दुप्ट जीवन को हृदय मलीन है।

(९९)

घटि घटि वढे है रसातल के राहगीर
लोभ के लुभाये जे ववरु धाक—वाक हैं।
काहू को सुरेस कहैं काहू को महेस कहैं
देवन के दोषी वडे जीभ के चलाक हैं।
कवि रसरासि जिन्हे लोक—परलोक को
सकोच है न सोच महा कपटी कजाक है।
कायर हैं क्रोधी हैं कुबुद्धि है कुसगी
कामा कुछित कुचील वेकू कवि कारे काग हैं।

(१००)

हो तो मदछद रस—भेद को न जानौं
कछु जानो व्रज चद जा के हार गुजा को गरै।
मुरली वजावै गाव चाह वरसावै
तीखे नैननचाय मुसकाय फल सो झरै।
रगीलो छवीलो छकयो छैल रिझवार
सदा लाडिली के सग अग उमगि भरै ढरै।
जैसे दुर्यो वादर—प्रकास सविता करै
त्यौं हिये माझ दुर्यो रसरासि कविता करै।

———

पद

(१)

(राग बिलावल)

मन मे यह कीनो उनमान ।
सूझत नाहि जतन जीवे कौ बिन छाडे कुलकान
कहा करो ले लोक लाज को जा मे हित की हान ।
जप—तप—सयम को फल सजनी ! मोहन सा उरमान ।
अब रसरासि कु वर गिरधर सो किये बन पहचान ।।

(२)

हरि छवि कबहु न देखन पाई ।
अपनी हित अनहित न विचार्यो भली बात बिसराई ।
बिना काज की लोक—लाज मे हो बौरी विरमाई ।
दुरि—दुरि रही भोन के भीतर गुरजन सीख सिखाई ।
दिना द्वैक तें बसी धुनि सुनि उझकि झरोखे आई ।
देखि—देखिमिठ लोनी मूरति सब ही विधि सर साई ।
वे हू रीझ छके से ह्वै के माहे कु वर कन्हाई ।
सोरि—तोरि तृण मोहि निहारत मनो रक निधि पाई ।
तब तै कल न परत पल एको देखन को तरसाई ।
अब रसरासि रगीले सो मिलि हो अब तौ यह बनि आई ।

(३)

(राग रामकली)

आज सखी बसीवट ठाडो मोहन वेणु बजावे री ।
मधुर—मधुर—धुनि—तान रसीली रामकली मे गावेरी ।
चलो सखी ! दुरि देखन जइयँ जीवन को फल पावेंरी ।
हिलन मिलन रसरासि कु वर को तन-मन प्रान रिझावेंरी ।।

(४)

(राग भैरू)

सखी री ऐसी नेह की नीत।
हसि-हसि सरबस हारि रहे हू मन मे मानत जीत।
विरह-वियोग महा दुख ता में सुख कैसी परतीत।
मनमोहन रसरासि पियारे की निपट अटपटी प्रीत॥

(५)

[लहरण

आज भोर री उमडि-घुमडि घन घोर्‌यो री
मेरे तन का मे नत पाय मरोरयो री।
तसी यै चहकत चपला चित चख चोंध्यो री।
बडी—बडी बु दन की झरतै सोई ओध्योरी।
तैसेई चातक—मोर करेजो कोरें री।
करि—करि दादुर सोर सुकानन फोरे री।
तैसी य बैरिन बसी मन बौरायौ री।
तैसोई गिरधर छैल रहत मडरायौ री।
तैसी य ननद जिठानी जिय की प्यासी री।
कोन कोन दुख भरो मरो अरु हासी री।
होनी होय सु होऊ जाहु यह लाज री।
लपटोगी रसरासि कु वर सो आज री॥

(६)

[राग पूरबी]

निहारें बिन आज भई बडी बेर।
रूप-सुधा-रस प्यासे दृगन को लागि रही अो सेर।
पलकन हू के ओट भये ते सब ठाँ होत अधेर।
अब रसरासि कोन विधि सहियै विरह-विथा को मेर॥

(७)

[राग झझोटी]

साडडे तो सावलडा मिझमान।

मिम्मानी की को करॉ वारा फेरा प्रान।
जीव जिवाँवा दरसन पावा ये ही खुस गुजरान।
मनमोहन रसरासि दी प्यारी लगदी ग्रान।
इसी सब वसें नाले बरा गुलामी ग्यान।

(८)

सदपणी मे तुझ नू की की ग्रपा।
साडे सजणानू ग्राण मिला मीठ सी दरसनू रूपा।
वे कदरो दी नाल मुहब्बत रेण दिहाडे दपा।
तौ भी उ सर रसरासि कु वर पर वारि फेरि जीनपा॥

(९)

[राग धना श्री]

जाती नेह की मोप तमकि न तोर्यो जाय।
सुन री सखी यह बात मरम की तोसो कहत सुनाय।
होरी के रगराती मातो निक्सेगो इत ग्राय।
तब मो सो या सूने घर मे रह्यो कौन बिधि जाय।
सुघर कु वर के सन्मुख हो हूँ खेलोगी रग-फाग।
लोक—वेद-मरजाद छाडि हो करिले हो ग्रनुराग।
जिना लाग के इन लोगन सो कौन करै बकवाद।
मनमोहन के हिलन—मिलन को निपट ग्रनोखो स्वाद।
कहा करगे दुरजन मेरो पुरजन नन नचाय।
जाय निसक ग्र क भरिल हो लाल गुलाल उडाय।
ग्रव तो यह ग्रैसे बनि ग्राई प्रीतम के सग प्रान।
महारसिक रसरासि कान्ह सों निव हौं नेह-निदान॥

(१०)

[राग भैरु]

मेंडा दिल वे कदरो दे दस्त।
नाले—नाले फिर लटक्दा पुसी जमाजे पग्म्त।
इस्क सराब पियाला पीकर हाये रहा ग्रवमस्त।
पाया हैं रसरासि जदूरा जिन पेग दे गस्त॥

(११)

[राग कनड़ो]

आपड़े या साड़ी दरदी वे दरदी।
आडग्रा तुसों मिहर कहर जहर करद करदी।
मनमोहन रसरासि कहा वदा दोस्ती करदी।
कर दरस छुपावदा आज जके पर उजरदी।
एचलावदा एती क्या मुठभरदी॥

(१२)

[राग बिलावल]

लाल तुम कहिवे ही के लाल।
जैसो स्याम बरन तन तैसौ मनहू स्याम तमाल।
पहले प्रीत प्रतीत बढ़ावत डारि प्रेम को लाल।
फिरि तिन को सुपने न सभारत सीखे अनोख स्याल।
नित-नित इत—उत चितवत ग्रोलत नये नेह की चाल।
भये रहत रसरासि कृपानिधि अत ग्वाल के ग्वाल॥

(१३)

[राग रामकली]

चंद चकोर की प्रेम सराहत।
का जाने यह कया विधा की जिहि विधि तुम सो प्रीत निवाहत
वाको एक स्वाद नैनन को अमिल मिल्यो मन माहि उमाहत।
हम तुम सो हिलो मिलि रस पियो वैसे ही चोप चुहन चित चाहत।
वह तौ नित्त निहारत निसि को हम निसि दिवस दरस बिन दाहत।
मनमोहन रसरासि पियारे विरहा ढास को गढस ढाहत॥

(१४)

[राग विभास]

तुम सम मोरा मनवा लागीलो रे मितवा
देह गेह सुधि-बुधि विसराई उपजि पर्यो कछु ऐसोई हितवा।
तुमरे दरस विन कल न परत छिन निस-दिन हिनन मिलन चहै चितवा।
मनमोहन रसरासि पियारे तुम घो लागि रहे हो कितवा॥

(१५)

[राग कनडी]

सानू तेडे नाल रहणा।
ज्यु भामी त्यु जाण वे ना दाण्या।
जोई करदा सोई सिर पर सहणा।
किता दिल दरवेस तुसी पर
दरद मस्त हालो दाग हणा।
वे रसरासि नद दे नोगर
तो भी तुझ सो हाल न कहणा।।

(१६)

[राग धनाश्री]

तिहारी चेरी भई होरे निरमोहिया क्यो तरसावत प्रान।
घर-घर करत चवा चवैया उधर परी उरमान।
तेरे हित के काज जगत के सहे करोरि अपमान।
तुम रसरासि एक हू न जानी यह कमी पहिचान।।

(१७)

[राग लूहर]

काहा जी म्हाने कु जा मे ले चालो।
म्हे तो राज रे काध चढि चालस्या पग मैं छ ाली।
रिम झिम—रिमझिम मेह वरषै मारग छै आलो।
भीजैरी म्हारी सुरग चूनडी दीज राज दुसालो।
रासाला म्हे था पर छायारी म्याठा देखि दुमालो।
हर्या कदम री भामा मा ही लाल हिंडोनो घालो।
वाहा जोडो हीड मचास्या पीस्या रग री प्यालो।
सरस सुहावणा सावण मे जी म्हारो मनडा हुवै छै मतवालो।
साथ लै रसरासि सखी ने थे तो लटक मटकता हालो।

(१८)

[राग कनडी]

जावा दे हठीला काह म्हारे घर काम छै।
थारो मन हू तो थे आवजो जमुना री तीर म्हारो गाम छै।

चपा री रप पिछोकडे म्हार निपट अकेलो ठाम छे।
नहि जाणों तो पूछे ने पधार जो रसरासि सखी म्हारो नाम छ।

(१८)

कद काई जोवा थारी वाट रे। कानूडा नीठि मिल्या छा।
वागा चाला छोगा मेला छावली निरपा।
दूजो तो कोई म्हारी दाय न आव म्हे तो थार हेत हिल्या छा।
अमला उपरि ओप चढावा हमि वाला हरपा।
नणा थो तो नेण मिलावा हाथा जोडी हाथ।
उदमाद्या रसरासि कुवर थे म्हे रिण थारे साथ।

(१९)

सावरिया प्रीति नियाहे बनेगी।
लाज तजे की लाज राखि हो तो रस—रीत सनेगी।
जो तुम करिहो आनाकानी तो यह बात छेंदि छनेगी।
गरज भरी रसरासि हमारी प्यारी अरज मनेगी।

(२०)

[राग कालगडो]

म्हारे लारे लाग्या लाग्या काई आवा छो।
देसली म्हारी सासू नणदल घर म राखि मवावा छो।
ब्यात पडया तो हाजर होस्या नाहक हा हा खावो छो।
मन मोहन रसरासि कु वर थे कु आ मे क्या न जावो छो।

(२१)

[राग गौरी]

मन मोहन के रग रगी व्रजनारी हो।
व्रजनारिन के रग रगे वनवारी हो।
मोहन वसी-वट तर वाट निहारे हो।
कोरिकलप सम पलक नीठि निखारे हो।
वे ऊ उतकुल वानि घिरी घर बैठी हो।

]

रहि न सक्यौ मन उठी सुप्रेम अमेठी हो।
तोरि चली गुरलाज सकेलाग ाढी हो।
अंग अनग-तरग-विथा अति बाढी हो।
हरि छवि प्यासे दृगन चपलता छाई हो।
उमकत देखत कुंज इतें चलि आई हो।
नूपुर धुनि सुनि चौंकि उठे गिरधारी हो।
दौरि सामुहै आय कह्यौ बलिहारी हो।
दोऊ हाथन पर हाथ प्रिया को लीने हैं।
मद मद मुसकात चले रग भीने हैं।
फूलन के हरि भूषन वसन बनाये है।
श्री राधेजू के अंग अंग पहिराये है।
रीझि प्रिया दइ हैं माल लाल हिय लावे हो।
चूमि दृगन सो लाय सीस पधरावे हो।
अपने हाथन कुसुम सेज रचि राखे हो।
हाथ जोरि करि सैन बेन कछु भाखे हो।
हौं तो तुम्हारे रग रग्यो नवरगी हो।
जनम जनम जहा तहा तुम्हारो सगी हो।
सुनत रसमसे बचन समझि मकुचानी हैं।
टला टली करि चली अली मन मानी हैं।
हिलि मिलि बठे कुंज पुंज सुख लूटे हो।
छूट छबीले बार हार उर टूटे हो।
नसे मातरे अंग स्वेद कन बूंदे हो।
ललना निरखि जाय दृगन को मूंद हो।
कुंज रघु मग हेरि सब मुख मोरे हो।
निरखि सखी रसरासि रीझि तृण तोरे हो।

(२२)

[राग विभास]

भोर ही जागे जुगल किसोर।
ललकि ललकि लपटात परसपर रग-भरे सावल गौर।
कबहुक उठि बठत अलसाने कबहुक भुकत मेज की ओर।
हुलसत हसत करत हित बातें, बढत सुगध—भकोर।

दंपति सुख संपति के लोभी उरके जोबन—जोर।
दोऊन के मुख चंद निहारत दोऊ चतुर—चकोर।
दोऊ रसिक रसमसे दोऊ, दोऊ चित्त के चोर।
दुरि देखत रसरासि सखी वहां बड भागी पिक मोर।

(२३)

[राग काफी]

गुजरीया लाग भरी यह मोहन की लगवारि।
अरवीली गरवीली अखियन आई अंजन सारि।
फागुन मास लख्यौ ताही दिन रची ख्याल धमारि।
गायत गीली अति उरझीली गास गसीली गारि।
वारहि वार पौरि जसुदा की रहत निहारि-निहारि।
अपनो बोल सुनाय बुलावत अंसी चतुर खिलारि।
तनक भनक सु सुनि स्याम सुन्दर वर घेरि लई ललकारि।
कहि न परत छवि मो पै रची रसीली रारि।
लाल गुलाल उडाय चहुँ दिसि दीन्हे परदा डारि।
लपटि गई रसरासि कुंवर सो जा कि ममझ निहारि।

(२४)

[राग सारंग]

हम संगी गिरधर लाल क।
दधि माखन के लूटन वारे अंडो वडी चाल के।
जानत घात जगति दान की निपट परखवा माल के।
नोक मजाखन के अतिगाढे वाके जवाब मवाल के।
रस गोरस के राते माते समुझैया सुरताल के।
मना मनसुखा सुवल सुदामा सब ही सखा गुपाल के।
वहुरंगी वृंदावनवासी कान भरोरत काल के।
साचे सूरे सुघर सनेही टूटे एक ही डाल के।
तुम्हारे सीस मथनिया दधि की चमकत वेंदा भाल के।
दान दिये विन कित जैहो वसि परि गई लो ग्वाल के।
लिये लकुटिया माहन ठाढे स्वादी नई रसाल के।
तनक तनक दधि देंउ लाल को आओ वोट तमाल के।

क्या सब ही तुम सटपटाति हो देहु लेहु सुख नेह जाल के।
मिलि चलिये रसरासि कुवर सो खुले मनोरथ ख्याल के।

(२५)

(रेंपता) (ईमन)

तेरे मिलन के चाव सो प्यारा हुआ है प्यारी।
क्या खुली है गीसू ही सजीली सारी।
चस्मो मे सुरमा देने की कसरन् मे कजा कारी।
भाहो के खमूनें हसने मे करता है जुलम जारी।
वाला के भार लक की लचकन् प वारी वारी।
चनि चलि मचलि न मु डिन की तुमसा भी न्याज न्यारी।
उसकी अदा यु देखि के दिल होगा बेकरारी।
रसरासि वशी वाले सा तू करि जरूर यारी।

(२६)

[रेंपता] [मलार]

ह रो मिहर तरफ से आम्रा के मिलती है।
खिलवत के खुश चिमन मे कलिया सी खिलती हैं।
चुनियो सी चिमकती है रमकती भमकती है।
जर जेवरा से जगमग भल सी भलकती है।
रायजादी राधिका सें रल मिलि के चलती हैं।

(पृष्ठ स० ४१ से ४८ तक के पद उपलब्ध नहीं है)

(२७)

[राग ललित]

मिलण रो बाणक आज बण्यो छजी।
दौराणी-जिठाणी धधा मे लागी नणदल पूत जण्यो छै जी।
सासू कर छै पातिय जी री पटदों बीच तण्यो छै जो।
आछी विरियां रसरासि पधार्‌या हिये हत उफण्यो छै जो।

[राग काडो]

ए जी तुम मान कर्‌यो सो तो
दीजे प्रीति हमारी हमको जो हम तुम
आलिंगन चुंबन हू दीजै जो तुम ले
सुनि रसरासि रसिक की बातें पु अ

(३६)

l

वार-बा
ताही सम
उठे कोप न।
प्यारी सुनत
हाय दई हो न
उठि अकुलाय
लपटि रहे

[राग कनडो]

छोटे मुख सो बड व।
कहि-कहि माखन चोर
क्यो मेरे लाल मोहन
दौरि दौरी पकरत क्यो न।
वार-बार क्यो आवत मेरे
तुम सब ही जोबन माती रस

(

[राग विलावल]

मेरे मन को म
निपट निसक

कहा जानो उन कहा कियौरी।
सुंदर मुख को मृदु मुसकनि मे
मदिरा सौ कछु घोरि दियौरी।
रूप लालची लोचन मेरे इन
आछें रुचि मानि पियौरी।
तब ही ते चित चढी खुमारी
खान-पान हू नाहि छियौरी।
देह गेह की सुधि—बुधि
बिसरी अैसे-वैसे जात जियौरी।
अब मो कु या सुख स्वारथ को
सूझत नाहि उपाव बियौरी।
मनमोहन रसरासि कुवर सो
उमगि लोगी खोलि हियौरी।

(३९)

[राग बिलावल]

घेरि लिये घर मे घनश्याम।
मुंदि किवार द्वार सब रोके
बाके वचन कहत बृज वाम।
लाखन गायन को दधि माखन
खवाय—खवाय लुटायो धाम।
अब कहो कौन भांति निकसोगे
आछे आय फसे इह ठाम।
नद जसादा हाथ जारि रहे
आय पाय परि है बलराम।
तो ऊ तुम को जान न देहो
बिना लिखे चौरी के दाम।
यह सुनि कान्ह कवर हसि
बोले मोहन है मेरो नाम।
सब ही वृज मेरो तुम मेरो
मेरे गोप गाय अरु ग्राम।
तुम मो कु तन मन मेरो।

[

(३५)

[राग काडी]

ए जी तुम मान कर्यो सो तो भली करी।
दीजे प्रीति हमारी हमका जो हम तुमको सोपि धरी।
आलिगन चु बन हू दीजै जो तुम ली हो धरी धरी।
सुनि रसरासि रसिक की वातें कु जविहारनि विहसि परी ।।

(३६)

[राग धनाश्री]]

आज अति कियौ मानिनी मान।
वार-वार विनती करि हारे रसिक सिरोमणि स्याम सुजान।
ताही सम सिंघ इक बोल्यो ता को सवद सुन्यो दे कान।
उठे कोप करि कहन लगे यो देखौ यह कैसो बलवान।
प्यारी सुनत सोच मे भूनो भूल गई सब अपनो ज्ञान।
हाय दई हो कहा करो अब लरि वेचल्यो पियारो प्रान।
उठि अकुलाय अ क भरि ली हे उनहू कियो अधर मधुपान।
नपटि रहे रसरासि रसमसे राधामोहन नेह निधान ।।

(३७)

[राग कनडी]

छोट मुख सो बड बोली अ सी जिन कबहू बोलो री।
कहि-कहि माखन चोर का ह को कथा मेरी छतिया छोलौरी ।।
क्यो मेरे लाल मोहन की गोहन लागी डोलो री।
दौरि दौरी पकरत क्यो या को क्या गहि-गहि भक भोलारी।
वार-वार क्या आवत मेरे वात हिये की खालोरी
तुम सब ही जीवन मातो रसरासि कु वर मेरो भोलोरी।

(३८)

[राग विलावल]

मेरे मन को मोहि लियौरी
निपट निमक वेक चितवनि मे

कहा जानो उन कहा कियौरी।
सुंदर मुख को मृदु मुसकनि में
मदिरा सौ कछु घोरि दियौरी।
रूप लालचो लोचन मेरे इन
आछें रुचि मानि पियौरी।
तब ही तें चित चढी खुमारी
खान-पान हू नाहिं छियौरी।
देह गेह की सुधि—बुधि
बिसरी अँसे-कैंसे जात जियौरी।
अब मो कु या सुख स्वारथ कौ
सूझत नाहि उपाव बियौरी।
मनमोहन रसरासि कुवर सो
उमगि लोगी खोलि हियौरी।

(३६)

[राग बिलावल]

घेरि लिये घर मे घनश्याम।
मुंदि किवार द्वार सब रोके
बाके वचन कहत बृज वाम।
लाखन गायन कौ दधि माखन
खवाय—खवाय लुटायो धाम।
अब कहो कौन भांति निकसोगे
आछे आय फसे इह ठाम।
नंद जसोदा हाथ जोरि रहे
आय पाय परि है बलराम।
तो ऊ तुम को जान न देहो
बिना लिखे चौरी के दाम।
यह सुनि कान्ह कवर हसि
बोले मोहन है मेरो नाम।
सब ही बृज मेरो तुम मेरो
मेरे गोप गाय अरु ग्राम।
तुम मो कु तन मन मेरो।

क्यो घर हू मे मेरो विसराम।
जो मागो सोई हम दे हैं
नाहिं उहा औरन को काम।
मेरो हू मन चोरि लियो
तुम ताहू को करि दीजे माम।
सनि रसरासि रगीलो बोली
खोली प्रेम रयाल की धाम॥

(४०)

[राग विलावल]

कहिये कहा कृपानिधि ये सब
तुम कलि जुग को जोर जमायो।
जो कोऊ मग-हीन हो या को
सो सब ही कियो सबायो।
तुम तो प्रगट भये प्रभु पाछे
पहले कूर कपट प्रगटायो।
उग्रसेन राजा सुभकर्मी ताको
पकरि के कैद करवायो।
माता—पिता वसुदेव—देवकी
तिनको तन—मन त्रास तचायो।
सात पुत्र बध आखिन देख्यो
ता पाछे तुम दरस दिखायो।
जनम लियो ताहि छिन निकसे
मात– पिता सो मोह मिटायो।
नद जसोदा के ठगिवे को—
झूठ मूठ ही हरष दिखायो।
झूलन लगे पालने जब ही
तब ही बाको विरद बनायो।
कौन करी नारी की हत्या
यह जस पहले तुम ही पायो।
अपने घर मैं चोरी सीखे
पर घर जाय चोर कहवायो।

दई सिखाय सवन को चोरी
सब ही भाति सुजस बढायो।
परनारी के तन—मन चोरे
ता मे उज्ज्वल रस दरसायो।
तब ही ते विभचार बढ्यो
यह अति ही अनाचार उरझायो।
चीरे कौन चीर नारिन के
सो प्रभु तुम ही पथ चलायो।
निरखि नगन भगन होय मन मे
या मे कहा भयो मन भायो।
निसि मे ' गयो।

———

इस प्रकार के कुछ पद और भी है किन्तु मूल प्रति में जगह-जगह अस्पष्टता होने के कारण यहा उल्लेख कर पाना असम्भव है।

———

दोहा-मुक्त-मालिका

(१)

सित्सताई हू मे रसास राची प्रीति प्रवासि
मिले हसे विछुरे पिर्जे थी राधे रमरासि ॥

(२)

घटन घट की नाव ला सिसुता जोवन जोय।
चाहृत उत्तर चढन को चढ्यो न उतर्‌यो कोय ॥

(३)

गुन जुवन सिसु सूत मो खच्यो साठि अनग।
वह निम्स वह सचरे वाला माला-अग ॥

(४)

नलिन मलिन किये नागरी तेरे लोचन-लोल।
अरु चकोर चेरे किये लिये अमोल—मोल ॥

(५)

सरफा सु दरि दृगन मे क्यो न होय रस—भेद।
इावे कज्जल ते वच्यौ ता सो लिखियत बेद ॥

(६)

अरुन सि दूर भरे खरे सकुच वाग वसि हेन।
जिन जाने तित परत हैं ए गज पुनी नन ॥

(७)

अति मति वारे मदन मद हृदन रहत चित्त चौज।
दारा के दृग दुरद द्वै फारतजत सत फौज॥

(८)

सबै सलोने देखियै प्यारी तेरे गात।
प्रकट कहा ते होत ए मीठी—मीठी बात॥

(९)

अरुन पात रेको वरें विद्रुम जिय लजात।
को सुकृती पीवै सदा इन अधरन अधरात॥

(१०)

दृग लौने मीठे अधर इन मे घटि बढि कौन।
लौनि दृग मीठो लगे ज्यों मीठे ढिग लौन॥

(११)

अधर खुलनि चौका चमक विहसति नैठी वाम।
मनहु जवाहर को डबा खोल रह्यो है काम॥

(१२)

यह अचिरज परे व हु प्रगट कनक लता पैं इंदु।
निसि उडगन बानन सहित विचि विकसत अरविंदु।

(१३)

कुच गिर पर मनमथ करी चढ्यो जात इँहि भाय।
रोमावलि नाहिन हियै साकर पौसे जाय॥

(१४)

छिनक ससी छिन कोकनद हुसे पिजें मुप होय।
चप चकोर अरु मधुप गनि दौरि थक्ति भये सोय॥

(१५)

चोवा चुपरी चुह चुही झलक्त अलक उदार।
टाँकि धरयौ है कौर गम न हु काम कुनवार ।।

(१६)

आनन पर अनक छुटी अरु दृग अ जन—पीन।
उरग बचा जनु मात डर भाजि कमल दल लीन।।

(१७)

अलक लटके लगि कुचन परि उपमा अैसी देत।
सिव तजि के नागिन चली ससि मुख अमृत होत।।

(१८)

कारी सरकारी अलक रही उरज पर आय।
मनहु उरग हरवठ सो रास्यो बाधि वनाय।।

(१९)

गोरे मुख पर तिलक निरखि नमन कियौ प्रणाम।
मानहु चद छिपाय के धर्‍यौ सालिग्राम ।।

(२०)

गोरे मुख पर तिलक निरखि लग्यौ काम की सेल।
वा घायल का चाहिये वाही तिलको तेल।।

(२१)

जगिन समे जरि अग्नि मे तिल कीनो लपसार।
तिय—कपोल ता पुय तें आय लियौ अवतार।।

(२२)

तिय—कपाल अनतोल दुति मुनि वरनत मन मोद।
गई रूहु धरि आपनो कुवर इदु की गोद।।

(२३)

उर—सलिता विच तिल बयो जोवन लहरे लेत।
विरही बूड्यो जात है सीस दिखाई देत॥

(२४)

मज्जन करि सुखवति ग्रलक चिकुर चलन जलधार।
मानहु ससि के त्राम तें रुदन करत ग्र धियार॥

(२५)

नवला निकसत तीर जब नीर द्रवत वर चीर।
मनु ग्र सुवन रोवत वसन तनु विछुरन की पीर॥

२६)

मोती वरण भरण के देखौ गरे कपाहि।
तिरछी चितवनि सो डरें मति फिरि बेंधे जाहि॥

(२७)

मो हिय मे तो दृगन कीयो वढि गयो उगेत।
ज्यो सुदान करपेत में दिये सहस गुन हेत॥

(२८)

मक भरत सकुची लिया चाहन चितै चकोर।
दई लाल वगराय के लाल—माल तिहिं ग्रोर॥

(२९)

कर छुटाय लचकाय कटि दृग नचाय वह वाल।
ससकि ससकि हसि कै कह्यौ यो न कीजिये लाल॥

(३०)

लै वैकुण्ठ कहा करो कलप वच्छ की छाह।
ग्रीषम ढाक सुहावनो जो सज्जन गरवाह॥

(३१)

तूल सुफेदी झार, चुभै अकेले सरल तन।
पाट समान पयार, जो सज्जन संग सोइय।

(३२)

एक जोति द्वै लोयनां एक वात द्वै कान।
एक प्रीत द्वै सज्जना, द्वै घट एकै प्रान॥

(३३)

रमि मुरली मन मे रह्यो प्रीतम की इह माया।
जैसे अम अकार सो न्यारो कह्यो न जाय॥

(३४)

सज्जन प्रीति सराहिय ज्यों पुर द्रनि दन नीर।
जग जाने परस नही ता विन तजै सरीर॥

(५)

रुप नरेपन गुन कछु सब देख अवगाहि।
समन जासो मन मिल्यो सो कछु और आहि॥

(३६)

जदपि दोऊ इक ठौर है निरखत एक हि पास।
जा चाहै तो सीखिलै आखिन प इक्लास॥

(३७)

पिय-तिय के जिय एक है यहै जान परमान।
गये अतहु ढुढिये नारी ही मे प्रान॥

(३८)

बसतो का हू ना करी पुरुष है वसती होय।
वसती जब ही जानिय बसती करै जू कोय॥

(३९)

मन गयदन है करत मदनमत्त गभीर।
दुहरे-तिहरे चौहरे परे प्रेम—जजीर ॥

(४०)

आली सकुच सनेह के बढ्यौ दुहु दिसि—दद।
को जानो किह फर चढै मन मद मत्त गयद ॥

(४१)

रत्ता रत्ती ना घटै कोटि करै ज्यौ धोय।
नेह नीर ज्यो सज्जना रोके गहरो होय ॥

(४२)

रूप हाटि कौ देखि के भये जु गाहक नैन।
जिय गहने धरि ले चले विरह बिसाहि हुसेन।

(४३)

मो नैना मेरे मनहि बेचत हैं परसम्य।
ज्यो पथी को पथ मे ठगवे चत्त ठग हृथ्य ॥

(४४)

अजन पीक प्रसेदकन भेप त्रिवेनी पाय।
डरपत है मो मन अली मति सु मुकति हो जाय।

(४५)

उठी अनूठी रुठि कै ठगी दृगन की जोति।
मानस में असी कहु मानस मे छवि होति ॥

(४६)

तू तौ रस मे रसिक को रिसहू निपट सुभाय।
ज्यू सरवतनि वू दिय अधिक स्वाद सरसाय ॥

(४७)

करौ मान अवमान सु बढौ नेह सो नेहु।
उन तुम कौ दोहा लिखें दोहा उत्तर देहु॥

(४८)

मान कियौ जिहि माननी बचन कपट जिय लाय।
सुनि रीति हि पिय आपनो सौतिन दियौ मनाय॥

(४९)

अति गति कै जिहि माननी की हौ मन निबाह।
तिहि असु वन जल छिरकि कै सौतिन सौंप्यौ नाह॥

(५०)

मत्र जत्र टोना टमएान जिन सीखौ कोय।
प्रीतम की रुचि राखियें सहजे ही बसि होय॥

(५१)

तारा इन चिनगें भई चद भयौ खरसान'
बाला तो परकट कई काम सवारत बान॥

(५२)

नैन श्रवत मन ढुरि मिले रही न अग सभार।
रसन हारी एक है सबै मनावन हार॥

(५३)

काहे मीत सुहावने क्यो दुख दीनो मोहि।
तू तो माहि मे हु तो पीर न आई तोहि॥

(५४)

पच अगनि सहिवो सुगम और सुगम रुग धार।
इक रस प्रीति निवाहिवो महा कठिन व्योहार॥

(५५)

कुतब कगूरा प्रेम का ऊँचा अति ही उत्तुंग।
सीस दिये विन पाय तर करन पहुचैं सग ॥

(५६)

सलिल चलत अजन ढर्‌यो पिय वियोग जब कीन।
मानो करवत दैन को विरह सूत धरि दीन ॥

(५७)

ढरत न असुवा लाज तें रहे नैन भरि नीर।
जैसे कातीसार सों उफनै गिरै न खीर ॥

(५८)

मुख गीषम पावस नय नहियैं माहिजडकाल।
पिय विछुरत तन तीन रितु कबहु न मिटै भाल ॥

(५९)

बार—बार कह्‌यो बावरी तनक पीर नहि तोहि।
जरी जात हो जोंह मे ले परछाहि मोहि ॥

(६०)

सम्मन बान जु प्रेम के भेदि रहें सब देह।
मूयें पाछे निकसि हैं छानि छानि के खेह ॥

(६१)

सीत काल जलमध्य तें निकसत बाफ सुभाय।
मानहु कोई विरहिणी अब ही गई म्हाय ॥

(६२)

तो लों सज्जन दूरि रहें जो लो नैनन दिच्च।
विछुरे ते यह गुन भयो हियर माहि पद्दच्च ॥

(६३)

विरह सकति लंकेश की हिये रहि भरि पूरि।
को ल्यावै हनुमत ज्यो सजन सजीवन मूरि॥

(६४)

विरहिन को जारत निलज करत वादि वेरग।
तू कहा जानें तन—तपन रे नीरदई अनग॥

(६५)

घटत-घटत तन घटि रह्यो रही जु पिय—मगचाहि।
तनक जु सासा घटि रही घटा घटावत ताहि॥

(६६)

जब सुमिरौ पिय नाम नगर सन अग्रधरि वन।
हिय समुद्र ते आनि मनु मुकता वारत नैन॥

(६७)

नीद देखि जलपूरि दग उलटि अपूठी जाति।
याते आवत नाहिं ने बूडन त जुड राति॥

(६८)

विरह अगनि नैना नदी दोऊ एकै टाव॥
बहे बचो तो जरि मरो जरे बचो वहि जाव॥

(६९)

अन भावत नियरे वसे भावता परदेस।
इन देखे उन दरस विनि द्वै दुख बडत गनेस॥

(७०)

और जात खोयी कछू ढूढे लीज्त पाय।
विरही—मानस अटपटो ढूढे खोयो जाय॥

(७१)

आलम प्रेम वियोग तें उठत अटपटी भार।
मन लागैं जियराजरैं लाज होत है छार॥

(७२)

या दिन वाके चैंन नहिं वा विन याही न चैंन।
ना वह मिलै न यह मिलै वेदन अधिक दुसेन॥

(७३)

सम्मन झूठे पाठ सात चिरजो जे कह।
गनि मो सुधा आठ पिय बिछुरत हूं ना मरी।

(७४)

आये पिय परदेश तें मिटी जरनि जिय-जोर।
जीरयो क्यों न निसक अब घन दादुर पिक-मोर॥

(७५)

कोट उदधि मधि विपम गिर तापर मित्त वसत।
जो नेही निहचौ धरै तो मन कुम त्चन मिलत॥

(७६)

वलया पीव उगार नही, पर्यो सेज के पास।
विरहा मारयो सो पर्यो लोहू पजर मास॥

(७७)

सुनि ससि वाहन थाकि रहे तजहु वीन किन आप।
चाहत हौं आजहि हिल्यौ मब चक्वन कौ पाप॥

(७८)

दिल दिल की बात को जे जानत समरथ्य।
तिनसा मुहा वनाय के कहिवो सबै अकथ्य॥

(७६)

जिन रहीम तन मन दियो कियो हिय मे भौन।
तिन सु सुख-दुख कहन की कथा रही है कौन।

(८०)

हाड सगाते ना सगा सगो सनेही होय।
मा देखै मंहि लाज लै यहै पटतर जोय।।

(८१)

यह तन फूल गुलाव को धरै न सवी ग्रास।
जम धानी ससार तिल वासी सकै तो वास।।

(८२)

मन चाहे महबूब को तन चाहे सुख-चैन।
एकै घर मे द्वै मता कैसे वनै हुसेन।।

(८३)

होस धरे हरि मिलन की अरू सुख चाहै अग।
पीर सहे विन पद्मनी पूत न लहैं उछग।।

(८४)

फलै होय मुहव्य स हव्या होय सुदेहु।
आगे हाट न वानिया लेना होय सो लेहु।।

(८५)

नर नारी रोटी रटत चलते ठाढे छेट।
सवै बिगारी पेट मे सवै जिगारी पेट।।

(८६)

सम्मन मच अधियार मे कीनें बहुत उपाय।
सेत चिकुर की चादनी चोरी करो न जाय।।

(८७)

अनचौरे चौरी लगे कारे कच अंधियार।
सेत चिकुर की चादनी चारो साहुकार ॥

(८८)

सेकु रावत मुरि चले विरचे कारे खेत।
एरन पलट देखिये ढारें ढलको सेत ॥

(८९)

कुसल कुसल मिलि के कहे ससारी सब कोय।
बात जगत की कुसल है कुसल कहा ते होय ॥

(९०)

हितू अहित सब होत है रजना दुर्दिन पाय।
बध बधिक मृग बान सो रुधिरो देत बताय ॥

(९१)

छीन छपाकर होय जब निकट मित्त के जाय।
बढ़ि पूरो दूरे गयो भयो कर्म को न्याय ॥

(९२)

सज्जन रहट सुभाव यह ज्यो कुमित्त सो इठ।
जब खाली तब सामुहो जब सू भर तब पीठ ॥

(९३)

भलो बुरो नही होत हैं कीने कोटि उपाय।
ज्यों हग छाडी बेत हरि लीनो उरलाय ॥

(९४)

पथरन पाहन दूरि ते देखि निवाइ आम।
उचिन लगे वो चित्त कोलु बच कोर समि पाम ॥

(९५)

मन सों नहिं रहीम प्रभु दृग से नाहिं दिवान।
दृगन देखि जिहि आदर्‌या मन तिहि हाथ बिकान॥

(९६)

तुरसी भूपति भान सो पुजा भाग बसि होय।
बरषत हरषत सब लखें करषत गनें न कोय॥

(९७)

रक लोह तरु कीट जा परसित पलटौ अ ग।
कहा नृपति पारस कहा कहा चदन कहा भ्र ग॥

(९८)

मुखिया मुख सौचा हियैं सकल अ ग मे एक।
पाले पोषे सबन को तुरसी सहित विवेक॥

(९९)

राजन प अधिकार लहि जेन करे उपगार।
ता नर के अधिकार मे रहत न आदि अकार॥

(१००)

भीजै धरनि सुवास होय कहि क्यो पूरनदास।
सुध रस जान माटी मिले तिन की आवत आस॥

(१०१)

रितु बसत जाचक भयो दान दिये द्रुम पात।
ताते फिरि पल्लव भये दियौ दूरि न जात॥

(१०२)

धात ढरत मन समुहो सो कामी सो दानि॥
ना तों सकर छाडि दे दत्त सुरत दोऊ बानि॥

(१०३)

मथत मथत माखन रह्यो मह्यो गह्यो महराय।
सकर सो वह मोल को भोर परे ठहराय॥

(१०४)

कहि सकर कायर कुलहि क्यो करि उपजै सूर।
थर थर कर कांपत कदलि भाजत फीरत कपूर॥

(१०५)

बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढ़ि।
या ते हाथी हहरि के दात देत है काढ़ि॥

(१०६)

या रहीम सुख होत है बढ़े आपुने गोत।
वडी माखिन देखि के ज्यो आखिन ही सुख होत॥

(१०७)

सम्मन उर अभिलाप जो एक हि पूरन करै।
तौ वह एक हि लाख, लाख मिलें एकौ नही॥

(१०८)

यो रहीम हमसो करी ज्यो कर सरन भरपूरे।
खेंचि आपनी ओर को फिरि ले डारि दूरि।

(१०९)

अरज सुनत गजराज की या ध्याये वृजराज।
ज्यो गोला पहले लगे पाछै होत अवाज॥

(११०)

मोहन जू मो सु हरपि अगु को पलटो लेहू।
उन उर मे एकै दई यो उर दोऊ देहू।

इन फुटकर दोहान पै वारो मोती दाम।
कंठ करो रसरासि यह दोमा मोती दाम॥

नामानुक्रमणिका

ग्रंथानुक्रम

श
